श्रीकरपात्रप्रिया ग्रन्थमाला : पुष्प ०१

# श्रीदेवीभागवतपीयूष

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्वविनोदिनि नन्दिनुते गिरिवरविन्ध्यशिरोधिनिवासिनि विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते।
भगवति हे शितिकण्ठकुटुम्बिनि भूरिकृते जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्य कपर्दिनि शैलसुते॥

: प्रस्तुति :

॥ त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्यः ॥
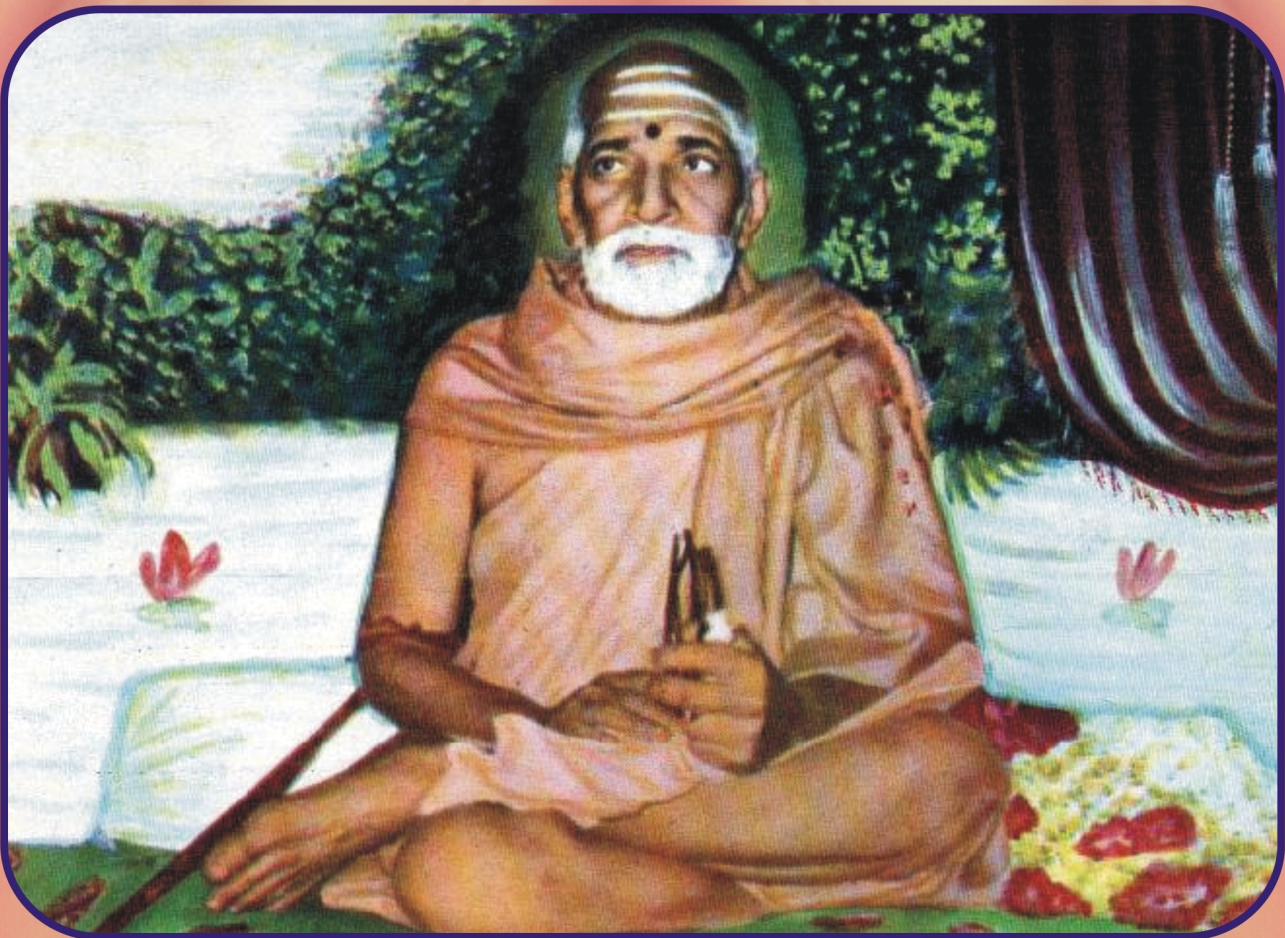
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य निगमागमपारावारीण सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र भारतीय-सनातन-वैदिकधर्म-संस्कृति-सभ्यतोद्धारक जगदाचार्य पूज्यपाद अभिनव शङ्कराचार्य प्रातःस्मरणीय श्रीश्री १००८ श्री

॥ धर्मसम्राट् श्रीस्वामी हरिहरानन्दसरस्वतीजी (श्रीकरपात्री) महाराज ॥

प्रादुर्भाव : श्रावण शु. २, श्रीसम्वत् १९६४ विक्रमी, ११.०८.१९०७ ई० (ग्राम भटनी, जिला प्रतापगढ़, उ.प्र.)
शिवसायुज्य : माघ शु. १४, श्रीसम्वत् २०३८ विक्रमी, ०७.०२.१९८२ ई० (केदारघाट, वाराणसी, उ.प्र.)

**यो दण्डिवर्योऽतियतीन्द्रचर्यः श्रौताऽध्वनोऽभूद्भुवनेषु धुर्यः ।**
**श्रेयो भृतां शश्वदपीह चार्यो धार्यः स चित्ते करपात्र आर्यः ।।**

जो दण्डी–संन्यासियों के शिरोमणि थे; बड़े–बड़े यतिराज भी जिनकी जीवनचर्या को जीवन में चरितार्थ (उतारकर जिनकी तुलना या समानता) नहीं कर सकते, जो देश–विदेश में श्रुतिमार्ग के एकमात्र रक्षक थे और जो यहाँ श्रेयभाजन और श्रेयप्राप्त सुजनों के स्वामी थे – वे श्लाघ्य श्रीकरपात्रीजी महाराज हमारे हृदय (सिंहासन) में धारणीय हैं ।।

श्रीकरपात्रप्रिया ग्रन्थमाला : पुष्प ०१

॥ श्रीः ॥
॥ हर हर महादेव ॥
॥ श्रीधर्मसम्राट् विजयते ॥

# श्रीदेवीभागवतपीयूष

## (SRI DEVI BHAGAVATA PIYUSH)

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके सकलशब्दमयी किल ते तनुः ।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिःप्रसरासु च ॥
इति विचिन्त्य शिवे शमिता शिवे जगति जातमयत्नवशादिदम् ।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे ॥

: प्रस्तुति :

॥ त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्यः ॥

: प्रकाशक :

श्रीधर्मसम्राट् प्रकाशन

PRESENTED BY : TRYAMBAKESHWARA CHAITANYA
PUBLISHER : SRI DHARMASAMRAT PRAKASHAN

प्रधान सम्पादक
**डा. गुणप्रकाशचैतन्य**
(www.facebook.com/gunprakash.sharma)

सहसम्पादक
**अंकुर नागपाल**
(www.facebook.com/ankur.nagpal.108)

ग्रन्थ-प्रकाशनस्वरूप यज्ञ के प्रधान यजमान
**श्रीरामानुजदयाल शर्मा (मेरठ)**

**प्रकाशक :**

**श्रीधर्मसम्राट् प्रकाशन**

श्रीअन्नपूर्णा शक्तिपीठम्, व्रजघाट, हापुड
उत्तरप्रदेश - २४५१०१ (भारत)
सम्पर्क सूत्र : ९८९२९३४७१३, ९४५६६५१३६१
९८७१७४०७६२

**प्रकाशन तिथि :**

**चैत्र नवरात्र, सं. २०७२**
(प्रथम संस्करण, ईस्वी सन् २०१५)

**मुद्रण :**

**सिटी कलर स्कैन**

69/86, Jatan Street, Baniya Para Lisari Gate,
Meerut, Uttar Pradesh - 250002 (INDIA)
Ph: 09359903310, 0121-2404466
Email: citycolourscan@yahoo.co.in

**पुस्तक प्राप्ति स्थान :**

१) श्रीअन्नपूर्णा शक्तिपीठम्, व्रजघाट, हापुड
उत्तरप्रदेश - २४५१०१ (भारत)
सम्पर्क सूत्र : ९८९२९३४७१३, ९४५६६५१३६१
२) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,
३८ यू.ए. बँग्लो रोड, जवाहर नगर,
दिल्ली - ११०००७ (भारत)
सम्पर्क सूत्र : ०११-२३८५६३९१

काल विनाशिनी काली जय जय।
दुर्गतिनाशिनी दुर्गा जय जय।
उमा, रमा, ब्रह्माणी जय जय।
सीता, राधा, रुक्मिणी जय जय।
गंगा, यमुना, तापी जय जय।
कृष्णा, रेवा, सरयू जय जय।
सुख में जय जय, दुःख में जय जय।
पल-पल, क्षण-क्षण माँ की जय जय।
काल विनाशिनी काली जय जय।
दुर्गतिनाशिनी दुर्गा जय जय।
उमा, रमा, ब्रह्माणी जय जय।
सीता, राधा, रुक्मिणी जय जय।
ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आवें।
मन से माँ तब ध्यान लगावें।
हरती कष्ट सभी के पल में,
जय माँ जय माँ जय जय गावें।
राम, कृष्ण, असुरों से हारे।
आकर दर पै तुम्हें पुकारें।
काल विनाशिनी काली जय जय।
दुर्गतिनाशिनी दुर्गा जय जय।

**Twitter : trymbkeshwra, Email: trymbakesh@gmail.com**
**Facebook : www.facebook.com/SamarthShree, Blog : http://shreesamarth.blogspot.in/**

# मायाविशिष्ट ब्रह्म ही भगवती है

## [ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज]

अधिष्ठानभूत ब्रह्म से युक्त होकर ही माया रहती है, अतः भगवती को मायारूपा कहकर वर्णन करने से भी फलतः उनकी ब्रह्मरूपता ही सिद्ध होती है।

**पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः । चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा ।।**

(देवीगीता ०१.०५)

अर्थात् जैसे पावक में उष्णता रहती है, सूर्य में किरण रहती है, चन्द्रमा में चन्द्रिका रहती है; वैसे ही शिव में उनकी सहज शक्ति रहती है। इस तरह विश्वस्वरूपभूता शक्ति के रूप में भगवती का वर्णन मिलता है। जैसे अग्नि में होम करने पर भी अग्निशक्ति में होम समझा जाता है, वैसे ही अग्निशक्ति में होम करने से अग्नि में होम समझा जाता है। इसी तरह माया को भगवती कहने पर भी ब्रह्म को भगवती समझा जा सकता है, अतः ब्रह्म की ही उपासना समझनी चाहिए। जो वाक्य माया को मिथ्या प्रतिपादित करते हैं, उनमें तो केवलमाया का ही ग्रहण होता है, क्योंकि ब्रह्म का मिथ्यात्व नहीं है, वह तो त्रिकालाबाध्य सत्स्वरूप अधिष्ठान है। उपास्य मायापदार्थान्तर्गत ब्रह्मांश मोक्षदशा में भी अनुस्यूत रहेगा, अतः मुक्ति में उपास्य स्वरूप का त्याग भी नहीं होगा।

अन्तर्यामिब्राह्मण में पृथ्वी से लेकर मायापर्यन्त सभी पदार्थों को चेतन सम्बन्ध से देवता बतलाया गया है। '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' (छान्दोग्योपनिषद् ०३.१४.०१) इस श्रुति के अनुसार भी सब कुछ ब्रह्म ही है, ऐसा कहा गया है। सूतसंहिता में कहा है –

**चिन्मात्राश्रयमायायाः शक्त्याकारो द्विजोत्तमाः । अनुप्रविष्टा या संविन्निर्विकल्पा स्वयम्प्रभा ।।**
**सदाकारा सदानन्दा संसारोच्छेदकारिणी । सा शिवा परमा देवी शिवाभिन्ना शिवङ्करी ।।**

अर्थात् चिन्मात्र परब्रह्म के आश्रित रहने वाली माया के शक्त्याकार में अनुप्रविष्ट स्वयंप्रभा निर्विकल्पा, सदाकारा, सदानन्दा संविद् ही शिवाभिन्न शिवस्वरूपा परमादेवी हैं अथवा भगवतीस्वरूप प्रतिपादक वाक्यों में जो माया, शक्ति, कला आदि शब्द हैं, वे सब लक्षणा से मायाविशिष्ट-कालविशिष्ट ब्रह्म के बोधक समझने चाहिये। तथा च मायाविशिष्ट ब्रह्म ही 'भगवती' शब्द का अर्थ है। यही बात शिव ने कही थी –

**नाहं सुमुखी मायाया उपास्यत्वं ब्रुवे क्वचित् । मायाधिष्ठानचैतन्यमुपास्यत्वेन कीर्तितम् ।।**
**मायाशक्त्यादिशब्दाश्च विशिष्टस्यैव लक्षकाः । तस्मान्मायादिशब्दैस्तद् ब्रह्मैवोपास्यमुच्यते ।।**

यहाँ एक-एक पक्ष में केवलचैतन्य ही मायादि शब्दों से उपास्य कहा गया है, द्वितीय पक्ष में मायाविशिष्ट ब्रह्म मायादि शब्द से कहा गया है। साकार देवता विग्रह सर्वत्र ही शक्तिविशिष्ट ब्रह्मरूप से ही उपास्य होता है। भगवतीविग्रह में भी भाषण, दर्शन, अनुकम्पा आदि व्यवहार देखा ही जाता है, फिर उसमें जडत्व की कल्पना किस तरह की जा सकती है?

विराट् हिरण्यगर्भ अव्याकृत ब्रह्म विष्णु रुद्रादिकों के स्वरूप में एक-एक गुण की प्रधानता है, माया गुणत्रय की ही साम्यावस्था है, वह केवलशुद्ध ब्रह्म के आश्रित है। मायाविशिष्ट तुरीय ब्रह्म ही भगवती की उपासना में ग्राह्य है, यह दिखलाने के लिये माया, प्रकृति आदि शब्दों से कहीं-कहीं भगवती को बोधित किया गया है। मैत्रायणी श्रुति में कहा है –

**तमो वा इदमेकमास तत्पश्चात्परेणेरितं विषयत्वं प्रयात्येतद्वै रजसो रूपं तद्रजः**
**खल्वीरितं विषमत्वं प्रयात्येतद्वै ... सत्त्वम्**

(मैत्रायणी उपनिषद् ०४.०५)

इन वचनों से स्पष्ट कहा गया है कि तीनों गुणों की साम्यावस्थारूपा प्रकृति परब्रह्म में रहती है, उसी के अंश सत्त्वादि गुण हैं, तत्तद्गुणों से विशिष्ट ब्रह्म के अंशभूत है, मूलप्रकृति-उपलक्षित ब्रह्म शुद्ध तुरीयस्वरूप ही है। **'त्वं वैष्णवी शक्तिः'** इत्यादि स्थलों में ब्रह्मरूपिणी भगवती का ही शक्तिरूप से वर्णन किया गया है। उपासनास्थलके अतिरिक्त माया आदि शब्दों से भी कहीं-कहीं शक्ति का ग्रहण किया गया है अथवा यह समझना चाहिये कि जगत्कारण परब्रह्म माया-ब्रह्म उभयरूप हैं। जहाँ मायोपसर्जन ब्रह्म की उपासना का निरूपण है, वहाँ शक्ति सहायभूता है -

**तस्मात्सहतया देवं हृदि पश्यन्ति ये शिवम् । तेषां शाश्वतिकीशान्तिर्नेतरेषां कदाचन ।।**

(शिवपुराण)

कहीं पर ब्रह्मोपसर्जन माया की उपासना है। इसीलिए माया, प्रकृति आदि शब्दों से भगवती की उपासना का विधान मिलता है। यह पक्ष सर्वतन्त्रों को मान्य है।

**शिवेन सहितां देवीं भावयेद्भुवनेश्वरीम्**

(भुवनेश्वरीपारिजात)

दोनों ही पक्ष में ब्रह्म का चिदंश ही उपासना में आता है। इसीलिए माया पर मुक्ति के अनन्वयी होने का या अश्रद्धेय होने का कोई भी दोष लागू नहीं होता। यद्यपि **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (छान्दोग्योपनिषद् ०३.१४.०१) इत्यादि श्रुति के अनुसार सब कुछ चिन्मात्र ब्रह्म ही है, तथापि भक्तों के चित्तावलम्बन के लिये अनेक प्रकार के स्वरूपों का उपदेश किया गया है। मलिन, शुद्ध, शुद्धतर, शुद्धतम आदि उपाधियों का उपदेश किया गया है। जैसे पात्र, मणि, कृपाण, दर्पणादि में शुद्धि के तारतम्य से प्रतिबिम्बित प्रतिफलन में तारतम्य होता है, वैसे ही उपाधियों के तारतम्य से ब्रह्म के प्रसाद, प्राकट्य में भी तारतम्य होता है। इसी अभिप्राय से विभूतियों की उत्कृष्टता, उत्कृष्टतरता आदि का व्यवहार शास्त्रों में प्रसिद्ध है। एक-एक गुणों की अपेक्षा गुओं की साम्यावस्था उत्कृष्ट है। इसीलिये भगवती की उपासना परमोत्कृष्ट है। इसके अतिरिक्त ब्रह्म का प्रथम सम्बन्ध माया के ही साथ है। गुणों का सम्बन्ध माया द्वारा है। इसीलिये साम्यावस्था में ब्रह्म का अव्यवहित सम्बन्ध है। अतएव सूत्रसंहिता में कहा गया है -

**परतत्त्वप्रकास्तु रुद्रस्यैव महत्तरः**

फिर भी ब्रह्मतत्त्व सर्वत्र ही समान है। इसीलिए सभी में परमकारणत्व का व्यपदेश सर्वत्र मिलता है। कामार्थी, मोक्षार्थी सभी के लिये भगवती की उपासना परमावश्यक है। वही ब्रह्मविद्या है, वही जगज्जननी है, उसी से सारा विश्व व्याप्त है। जो उसकी पूजा नहीं करता, उसके पुण्य को माता भस्म कर देती है -

**यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्त वत्सलां । भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी ।।**

(वैकृतिकरहस्य ३८)

देवीभागवत के प्रथम मन्त्र में ही भगवती के सगुण-निर्गुण उभयविधरूपों का संकेत इस प्रकार मिलता है -

**सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि । बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ।।**

(देवीभागवत ०१.०१.०१)

अर्थात् वह भगवती सर्वचैतन्यरूपा अर्थात् सर्वात्मस्वरूपा है, सबका प्रत्यक् चैतन्य आत्मस्वरूप ब्रह्म वही है, वह स्वतः सर्वोपाधिनिरपेक्ष तथा अखण्ड बोधस्वरूप आत्मा ही है। ब्रह्मविषयक शुद्धसत्त्वान्तर्मुख वृत्ति पर प्रतिबिम्बित होकर वही अनादि ब्रह्मविद्या है। एक ही शक्ति अन्तर्मुख होकर विद्यातत्त्वरूपिणी होती है, तदुपाधिक आत्मा तुरीय कहलाता है। बहिर्मुख होकर वही अविद्या कहलाती है, तदुपाधिक आत्मा प्राज्ञ है। मायाशबलब्रह्म ही ध्यान का विषय है, वही बुद्धिप्रेरक है। शाक्तागम मत के अनुयायियों की दृष्टि से अत्यन्त अन्तर्मुख होकर शक्ति-शिवस्वरूप ही रहता है। वेदात की दृष्टि से सर्वोपाधिविनिर्मुक्त स्वप्रकाश चिति ही रहती है। वे ही परब्रह्म, आदि आदि शब्दों से लक्षित होती हैं ।। * * *

**( भक्तिसुधा से साभार उद्धृत )**

## [प्रेरणा-प्रसूत-प्रीति पयोधि]

प्रातः जगने के उपरान्त जिन महापुरुषों के स्मरणमात्र से हृदय को उनकी ओर आकर्षित पाता हूँ, (भले ही उनके दिव्यस्तर के अनुरूप कुछ कर नहीं पाता, परन्तु) मन को उमंग से भरा-भरा पाता हूँ। उन

सनातन धर्मोपवन के संरक्षक ब्रह्मलीन पूज्य श्रीजीवनदत्त जी महाराज

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र पूज्य श्रीषड्दर्शनाचार्य ब्रह्मलीन श्रीस्वामी विश्वेश्वराश्रमजी महारज

ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीस्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज

ब्रह्मलीन यतिचक्रचूडामणि धर्मसम्राट् श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज

ब्रह्मलीन गोवर्धनमठ-पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीस्वामी निरंजनदेवतीर्थजी महाराज

परमविरक्त श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ पूज्य स्वामी श्रीलक्ष्येश्वराश्रमजी महाराज

सारल्यमूर्ति पूज्य स्वामी श्रीवेदान्तीजी महाराज

परमोपासक सदाचारनिष्ठ पूज्य श्रीनन्दनन्दानन्दसरस्वतीजी महाराज

गौ-द्विज-हितकारी परमपूज्य श्रीस्वामी भूमानन्दतीर्थजी महाराज

## [श्रद्धावनत]

उत्तराम्नाय श्रीमठ-ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीस्वामी माधवाश्रमजी महाराज

यतिकुलतिलक पूज्य श्रीस्वामी विमलानन्दतीर्थजी महाराज

जगद्गुरु श्रीस्वामी दिव्यानन्दतीर्थजी महाराज (भानुपुरापीठ)

अनन्तश्री स्वामी राजराजेश्वराश्रमजी महाराज, पूज्य श्रीस्वामी अच्युतानन्दतीर्थजी महाराज,
पूज्य श्रीस्वामी परानन्दतीर्थजी महाराज, पूज्य श्रीस्वामी महादेवाश्रमजी महाराज,
पूज्य श्रीस्वामी रमेशाश्रमजी महाराज, पूज्य श्रीस्वामी निगमबोधतीर्थजी महाराज

पूज्यपाद गुरुवर्य वीरव्रती श्रीप्रबलजी महाराज

## [प्रणामांजलि]

पूज्य श्रीश्यामबाबा गुरुजी, पूज्य श्रीसर्वेश्वरचैतन्यजी महाराज, पूज्य श्रीनारायणस्वरूप ब्रह्मचारीजी,
पूज्य श्रीमहानन्दजी, पूज्य श्रीशंकरस्वरूपब्रह्मचारीजी, पूज्य श्रीश्रीधरप्रकाशजी,
पूज्य श्रीइन्दुस्वरूपब्रह्मचारीजी, पूज्य श्रीप्रखरजी महाराज

## [अभिनन्दन]

पूज्य श्रीनिर्मलस्वरूपजी, पूज्य श्रीराजेश्वर चैतन्यजी, पूज्य श्रीमहेशस्वरूपजी,
महन्त श्रीशिवानन्दगिरिजी, पूज्य मधुब्रह्मचारीजी, पूज्य श्रीदेवीस्वरूप ब्रह्मचारीजी,
पूज्य श्रीअनन्तबोधजी, श्रीव्रजेशचैतन्यजी, श्रीरामचैतन्यजी, श्रीअनूप ब्रह्मचारीजी, श्रीसर्वेशस्वरूपजी

धर्म की जय हो
प्राणियों में सद्भावना हो
गौहत्या बन्द हो

श्रीहरिः
हर हर महादेव
श्रीज्योतिरीश्वरो विजयते

अधर्म का नाश हो
विश्व का कल्याण हो
गौमाता की जय हो

## उत्तराम्नाय श्रीमज्ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्री समलंकृत
# श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीमाधवाश्रमजी महाराज

शंकराचार्यमठ, नृसिंह मन्दिर मठस्थली, बदरीनाथ मार्ग, जोशीमठ, जिला चमोली, उत्तराखण्ड
पत्राचार हेतु पता : ७, शंकराचार्य मार्ग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-११००५४ (दूरभाष: ०११-२३९१४५७९)
**Phone : +91-11-23914579, +91-9810849047, Email : jyotishpeeth108@gmail.com**

।। श्रीहरिः ।।

सजातीय-विजातीय-स्वगतभेदशून्य मनोवचसातीत भूमापुरुष देव्युपासकों की दृष्टि में भगवती जगज्जननी के रूप में परिलक्षित होता है। गायत्री आदि श्रुतियाँ जिन परमतत्त्व का प्रतिपादन करती हैं, वह तत्त्व भगवती महामाया से इतर कुछ अन्य नहीं है। वही परमशक्ति भगवती चतुर्दश-भुवनात्मक अनन्तब्रह्माण्डों को सदा अपने उदर में धारण किये रहती हैं तथा तृण से ब्रह्मापर्यन्त जीवमात्र को पुष्टि-तुष्टि प्रदान करती हैं।

उन्हीं भगवती आद्या के अभिव्यञ्जकसंस्थान श्रीमद्देवीभागवत का हमारे पूर्वाचार्य भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन महामुनीन्द्र व्यासजी के द्वारा प्रकाश किया गया। इस दिव्य ग्रन्थ का संक्षिप्त सद्गृहस्थभोग्य संस्करण हमारे परमप्रिय स्नेहभाजन ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाभाग के द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। आप परमादरणीय यज्ञसम्राट् वीरव्रती श्रीब्रह्मचैतन्यजी (श्रीप्रबलजी) महाराज के सुपात्र शिष्य हैं तथा अपना अधिकांश समय तपश्चर्या में व्यतीत करने वाले महानुभाव हैं। आपके सत्कार्यों को देखकर हमें विशेष हर्षानुभूति होती है।

आपके प्रस्तुत ग्रन्थ के सफलप्रकाशनार्थ एवं आपके सर्वविध कल्याण हेतु भगवान् बद्रीनारायण एवं भगवती पूर्णाम्बा से प्रणिपातपूर्वक प्रार्थना है। नारायणस्मृति ।।

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य निगमागमपारावारीण सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र
भारतीय-सनातन-वैदिकधर्म-संस्कृति-सभ्यतोद्धारक अनन्तश्रीविभूषित
पूज्यपाद श्रीस्वामी हरिहरानन्दसरस्वतीजी (श्रीकरपात्री) महाराज के परमकृपापात्र

---

# यज्ञसम्राट् वीरव्रती श्रीप्रबलजी महाराज
## [अनन्तश्री विभूषित ब्रह्मचारी श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज]

---

श्रीधर्मसंघ महाविद्यालय, वार्ड नं १३, भादरा, जिला हनुमानगढ, राजस्थान - ३३५५०१
सम्पर्कसूत्र - ०१५०४-२२२५४९ , ९८९२९३४७१३, ९७२०४४६३११, ९४१४५७८९३८ , ९४५६४४२३५२

ॐ

## ।। शुभाशीर्वचांसि ।।

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं संविभ्रतीं शाश्वतीं सौम्यां रत्नघटस्थमध्यचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम् ।।

।। श्रीहरिः ।।

अतीव प्रसन्नता का अवसर है कि हमारे परमप्रिय स्नेहभाजन ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्य महाभाग के माध्यम से अनादि एवं मंगलमयी कथा 'श्रीदेवीभागवतपीयूष' के रूप में प्रकट हो रही है। निश्चितरूप से यह मुमुक्षुजनों के परमसौभाग्य का विज्ञापक है। विमुक्ति साधक सम्पूर्ण ज्ञानों की मूल उत्स तथा प्रवर्तक वस्तुतः भगवती ही हैं, तथापि उन्हीं की प्रेरणा एवं शक्ति से निरन्तर उनका ज्ञान तथा उनकी कथा विभिन्न उत्सों से प्रवाहित होता रहता हैं, जो महत्त्वपूर्ण एवं श्लाघनीय है।

ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्य सरस कथा प्रवाहक के साथ-साथ कथा की मूल-मर्यादित तथा परम्परागत आत्मा के प्रशस्य संरक्षक हैं। अन्यथा, सम्पूर्ण संसार की परमचिन्ता का विषय प्रदूषण कथाक्षेत्र में भी प्रगाढ़ता के साथ स्थापित हो रहा है। भगवती से प्रार्थना है कि ब्रह्मचारी त्र्यम्बकेश्वरचैतन्य तथा इनसे निःसृत कथागंगा को दीर्घजीवन-निरन्तरता तथा व्यापक मंगलदायकता प्रदान करें।।

वीरव्रती - प्रबल

# आचार्यस्तेजःपालशर्मा

पूर्वाचार्यः - नरवरविद्यालयः, पूर्वाचार्यः - वाराणसेय गोयन्कासंस्कृतविद्यालयः,
आचार्यः व्याकरण - श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः (पुरी, ओडिशा)

पूर्वजन्मार्जितपुण्यवान् प्राणी ही परमेश्वर की असीमानुकम्पा और सद्गुरु के परमानुग्रह से मन, बुद्धि और अन्तःकरण निर्मल होकर जगज्जननी के चिन्तन, मनन और स्मरण में सुख, शान्ति और आनन्दोपलब्धि करते हैं। सनातनधर्म की प्रतिष्ठा भक्तिमार्ग के प्रसार में ही सन्निहित है। यद्यपि '**दुर्लभं मानुषं जन्म भूखण्डे भारताजिरे**', तथापि यह मानुषदेह पाने के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। इस क्षणभंगुर जीवन का वही यात्री धन्य है, जो भगवती के शरणापन्न है। जगदम्बा प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण कर्मों की मंगलमयी परिणतिपूर्वक ज्ञानप्रदायिनी, मोक्षकारिणी होकर अभ्युदय और निःश्रेयस देती है। देवीभागवत के चिन्तन मात्र से संसृति के बीजभूत कर्मों का विनाश होता है -

**जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसञ्चितम् । देव्याः कथाप्रसंगेन तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।।**

जगज्जननी-कथानुशीलन से आदर्शजीव की जिजीविषा, परमार्थिकतत्त्वानुभूति और दुर्लभ अलौकिक व्यक्तित्व की सम्प्राप्ति स्वतः ही होने लगती है। मनुष्य के मन में निःस्वार्थ सेवा और लोकोद्धार के सद्विचार आने लगते हैं; जिससे मनुष्य दयालु, कृपालु, बुद्धिमान् और दूरदर्शी बनता है। भगवती की कृपा से इन्द्रियजित्, समृद्धिशाली भगवद्भक्तिपरायण, धार्मिकप्रवृत्तिशाली सन्तति की प्राप्ति होती है। कथाश्रवण से अन्तःकरण शुद्ध होता है और शुद्धान्तःकरण से सम्पादित समस्त सेवा भक्ति कहलाती है। जिस प्रकार मनोऽभिलाषित-वस्तु-सेवन से मन मुदित होता है, तथैव शुद्धान्तःकरणसम्पादितकर्म परमाभ्युदयकारी और परमाह्लादप्रद होते हैं। जीवन सदा आनन्दतरंगायित रहता है।

**शक्तिहीनं सदा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शक्तेराश्रयणं कुरु ।।**

यद्यपि श्रीमद्देवीभागवत के रस-रहस्य-प्रकाशन हेतु नाना मनीषियों ने अनेकविध कथासाहित्य का सर्जन किया है, तथापि श्रीमद्देवीभागवत आज भी अनुधारित सकल मर्म वाला ही है। भक्तप्रवर मनीषी कथारसरहस्यमर्मज्ञ श्रीमान् त्र्यम्बकेश्वरचैतन्य महाराज ने प्रकृतन्यूनतापरिहारपुरःसर सरस-सरल-मनोहारिणी व्यासशैली में श्रीमद्देवीभागवत के रसरहस्य का समुद्घाटन कर भक्तिरसरसिक-श्रोताओं और जगज्जननी पादपद्मभक्तिकामुकों का परम उपकार किया है। सर्वजनसम्वेद्य विपुल-विशद-चित्ताकर्षक कथाशैली के चितेरे के प्रति अपने मंगलमयी भावनायें समर्पित करते हुए कामना करता हूँ कि भक्तप्रवरप्रणीत भक्तकामनाकल्पतरु श्रीमद्देवीभागवत-कथानुशीलनपूर्वक समस्त सज्जन अपने सांसारिक सतापों से विश्रान्तिपूर्वक जगज्जननी का परमानुग्रह प्राप्त करें ।।
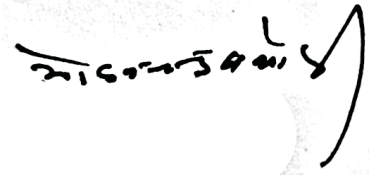
# प्रो० मोहन चन्द्र बलोदी

*कुलपति - उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय*

*फलितज्योतिषाचार्य, एम.ए., योग-डिप्लोमा, एम०एड., पी.एच.डी. (शिक्षा)*

*हरिद्वार-दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग, बहादराबाद (हरिद्वार) - २४९४०२ (कार्यालय सम्पर्कसूत्र : ८४४९०८८८४)*

---

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि त्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज के द्वारा 'देवीभागवतपीयूष' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। वस्तुतः किसी भी ग्रन्थ, पुस्तक या पत्र-पत्रिका का प्रकाशन एवं सम्पादन बहुत ही श्रमसाध्य होता है। भागवत के विषय में कहा गया है कि '**विद्यावतां भागवते परीक्षा**'। इसलिए उपर्युक्त ग्रन्थ का प्रणयन व प्रकाशक अपने आप में विद्वत्तापूर्ण कार्य है। आज भागवत व अन्य पुराणों का आश्रय लेकर अनेक लोग व्यासपीठ पर विराजमान हो रहें है, यह एक महत्त्वपूर्ण पीठ है। मैं यह समझता हूँ कि इस ग्रन्थ के ज्ञानरूपी अमृत को पीकर सभी धर्मात्मा लोग लाभान्वित होंगें।

# डॉ. श्रीरामसलाही द्विवेदी

*व्याकरणविभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रीय संस्कृतविद्यापीठ ( दिल्ली )*

*एफ.एन. २०५ गुप्ता अपार्टमेन्ट, मेहता चौक, महरौली, नई दिल्ली - ११००३०*

**'धेनुर्वाक् अस्मान् उपसुष्टुतैतु'** के रूप में वाक्तत्त्व को पुनः-पुनः अपौरुषेय ज्ञान से प्रार्थित किया गया है। स्पष्ट है कि सारे संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार वाक्तत्त्व के ही आधीन है। अतएव वाक्तत्त्व का स्थूलविवरण वाक्भवकूट, मायाकूट तथा शक्तिकूट के रूप में प्राणियों के द्वारा अनुभूत किया गया है। इसका उल्लेख,

**कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।**
**पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ।।**

के रूप में स्पष्ट है। इसी तत्त्व को उत्पत्तिकारक होने से श्रीमाता, स्थिति-नियामकता से महाराज्ञी तथा संहारकारक होने से सिंहासनेश्वरी कहा गया है। स्पष्ट है कि **'हंसः'** प्राणबीज ही व्यत्यास के कारण सिंह के रूप को प्राप्त करता है और अन्यथा दर्शन ही व्यत्यास का पर्याय है। यही अन्धतम लोक है तथा संसाररूपी भ्रमर चक्र का प्रयोजक है, परन्तु यथार्थ होने पर यही वाक्तत्त्व देवताओं से प्रार्थित होता हुआ कामधेनु के रूप में अन्न, बलतथा आनन्द आदि का देने वाला होता है। अतएव - **'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे'** इत्यादि रूप से साक्षात् श्रुतिभगवती इसका अनुमोदन करती हैं।

अतएव अम्बा शब्द की चरितार्थता सिद्ध है। सारे संसार में अम्बा शब्द को जननीवाचक के रूप में संकेत प्राप्त है। शब्द शक्ति वह ईश्वरीय संकेत है, जो अनादि होते हुए भी परम्परा से आज भी अनवरत एवं अबाधित रूप से उपलब्ध है। व्याकरण के **'अबि शब्दे'** धातु से **'अम्ब'** शब्द की निष्पत्ति होती है। यही अम्ब तत्त्व सूक्ष्म रूप में प्रणव की संज्ञा को प्राप्त करता है तथा **'प्रणव एव एकः त्रेधा व्यभज्यत्'** श्रुति से तीन भागों में विभक्त होकर त्र्यम्बक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करता है। अतएव त्र्यम्बक शब्द की व्युत्पत्ति **'तिस्रः अम्बा यस्मिन्'** के रूप में की जाती है। अतएव यह सुगन्धि, पुष्टि तथा सहजतया मुक्तिदायक होता है। शिव और शक्ति के तादात्म्य के कारण इसे शिव भी कहते हैं तथा पुष्टिवर्धक होने के कारण यह नारायण के रूप को भी प्राप्त करता है। इससे स्पष्ट है कि वाक्तत्त्व ही त्र्यम्बक तत्त्व है।

पूज्य श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज इसी विधा के आचार्य हैं। उनका तप, सौम्यता एवं शील इतने प्रभावी हैं कि सामान्य से सामान्य पामर मनुष्य को भी सत्कर्म की प्रवृत्ति में आसक्त करते हैं। मैं समझता हूँ कि उनकी ये करुणा ही है कि देवीभागवत-जैसे अति दुरुह ग्रन्थ का गहन आलोडन कर रहस्यमय पद्धति से समाज के सुधी-साधकवृन्द को कृतार्थ करने के लिये एक ग्रन्थ रचना के रूप में अद्भुत कृति प्रस्तुत हुई है। इस कृति में साधक, भक्त तथा ज्ञानी भी अपने-अपने अनुरूप शास्त्रीय मतों का अद्भुत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

मेरा यह मानना है कि श्रीब्रह्मचारी त्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी-जैसे सन्त ही संसार के नियामक हैं तथा उनका अनुग्रह हम सब लोगों के लिये कल्याण पथ का पाथेय है। अन्त में महाराजश्री के चरणों में ही प्रणाम करते हुए पराम्बा राजराजेश्वरी से यह प्रार्थना करता हूँ कि उनके द्वारा ऐसी अद्भुत कृतियों का प्रादुर्भाव हम सबके कल्याणार्थ होता रहे ।।

# ।। मनोवाक् ।।

परमाराध्या सर्वेश्वरी जगज्जननी माँ जगदम्बा के समाराधक-स्पृहणीय श्रद्धालु बन्धुओं !

हमारा और आपका जो पारस्परिक नाता है, वह ना खुले और प्रीति बहती रहे, इससे बढ़कर सुखद, तुष्टि, पुष्टिप्रद और क्या उपलब्धि हो सकती है। 'आप सुनें, मैं सुनाऊँ। मैं सुनूँ, आप सुनाएँ। मैं लिखूँ, आप पढ़ें। आप लिखें, मैं पढ़ूँ' - ये भाव बढ़ता रहे, घटे नहीं। भगवती माँ त्रिपुरसुन्दरी के चरणों में प्रार्थना है – 'कौन क्या करता है? किसने क्या किया है? कौन क्या करेगा?' इस प्रपञ्च में न पड़कर 'मैं क्या करता हूँ, मैंने क्या किया है? मैं क्या करूँगा? और वास्तव में मेरे क्या कर्त्तव्य हैं? मुझे क्या करना चाहिए, जिससे शास्त्र, सन्त, शिक्षक, सर्वेश्वरी सुबुद्ध-सिद्ध-साधक, समाज-संबंधी; सभी संतुष्ट-सुप्रसन्न हों; जैसे सविता के उदय होने से कमल खिल जाता है।' इस ओर चिन्तन-मनन यत्नपूर्वक किया जाये।

तुलना औरों की नहीं, स्वयं की स्वयं से करो। पूर्व में क्या आध्यात्मिक स्थिति थी? आज क्या है? – आगे बढ़े हैं या पीछे हटे हैं? यही है, वह दिशा तथा दशा; जो सर्वोत्तम मार्ग प्रशस्त करती है। इस मंत्रराज की अधिष्ठात्री देवी हैं- माँ जगदम्बा। वही राजराजेश्वरी माँ समस्त स्त्रीजाति के रूप में व्यक्त हैं –

**या देवि सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।**

माँ के अतिरिक्त संसार में कुछ नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तक माता के दरवार के द्वार पर दीन-किंकर की भाँति याचक बने खड़े रहते हैं। ये कृति उन्हीं माँ के श्रीचरणों में समर्पित है।

'माँ' कोई वर्णों का समूह मात्र नहीं है, कोई शब्दमात्र नहीं है, अपितु संसार की समस्त भाषाओं के समस्त वर्णों में समाहित मधुरता का सार पुञ्ज है। मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र संबंधी समस्त साधनाओं की सिद्धिप्रदान करने वाला महामन्त्र है- 'माँ'। 'ॐ' तथा 'राम' – ये दो मन्त्र संसार के समग्र प्राणियों के उद्धारक माने गये हैं। किन्तु इन दोनों को भी अपनी कृपा, करुणा, मधुरता, उदारता, मुक्तिप्रदायकता से तिरस्कृत करने वाला मन्त्रराज है- 'माँ'। 'ॐ' और 'राम' को बोलना कोई सिखाता है, किन्तु 'माँ' तो जीवमात्र को स्वतः प्राप्त मन्त्र है।

आध्यात्मिक अभ्युन्नति के लिए शास्त्रों का अनुशीलन अपूर्व आनन्द का हेतु होता है। अल्पसमय, अल्पश्रम, अल्पशक्ति द्वारा अनल्प सुख की प्राप्ति हो सके, इसके लिए ये श्रीदेवीभागवत सृजन का प्रयास है। अपने जीवन को अनन्य सहयोगी बनाकर इसे श्वासों की तरह सजोंकर रखें, व्यावहारिक जीवन में उतारें – यही उपासक-शास्त्रानुरागी-जिज्ञासु-बन्धुओं से निवेदन है। यद्यपि मूल अमूल्य है, तथापि मूल का भी सार होने से ये भी अमूल्य है, बहुमूल्य है। ये श्रीमद्देवीभागवतरूपी महाकल्पतरु का सारसर्वस्व है, आस्वादन में वहीं है। यही वर बस मुख से निकल उठेगा। यथार्थ बोध मानसिक अपनत्व बनाने पर ही हो सकेगा। शास्त्रीयोपासनानुष्ठान सम्पन्नता के निमित्त मूलपारायण ही श्रेयकर है।

श्रीराधेश्याम अग्रवाल (भीलवाड़ा) ने सपरिवार हरिद्वार में देवीभागवत की कथा सुनी। उसी समय इसके प्रकाशन का भाव उदित हुआ। शब्द सृजन की इस अथक यात्रा में बहुत-से पड़ाव आये, बहुत-से सहयोगी आये। सबने अपनी-अपनी योग्यतानुसार सहयोग किया। उन सबको हृदय से आभार प्रस्तुत है।

उदारमना श्रीरामानुजदयाल शर्माजी (मेरठ) पुनः अयाचित वृत्ति के संरक्षण हेतु अनायास इस सद्ग्रन्थ प्रकाशनरूप महायज्ञ के यजमान बने। सपरिवार उनके सौमंगल्य की कामना भगवती राजराजेश्वरी तथा सदाशिव महादेव के चरणारविन्दों में करते हैं। धर्मनिष्ठ नोगीजी का समर्पण हृदय को आनन्द से भर देता है, उनको कोटिशः

शुभाशीष। श्रीगुणप्रकाशचैतन्यजी महाराज ने विविध कठिनाईयों का सामना करते हुए (अतिव्यस्तता के बीच भी), हमारे प्रिय वर्णाश्रमधर्मरक्षाव्रती अंकुर नागपालजी (दिल्ली) का सहयोग लेते हुए, सम्पादनकार्य सम्पन्न किया। तदर्थ हम उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। सुबुद्ध डॉ. श्रीअवधेश वशिष्ठजी का विस्मरण सम्भव ही नहीं है। उनके सहयोग के अनुरूप भगवान् उनपर अनुग्रह करें।

श्रीराधेश्याम खेमकाजी (गीताप्रेस) की साधना, श्रीनारायणस्वामीजी का उत्साह, डॉ. श्रीविदिशदत्तजी का सौजन्य, आचार्य स्वदेशजी की तत्परता, राजू जी एवं हेमन्तजी की श्रद्धा, श्रीसतीशजी का धैर्य, विधायकजी का समर्पण, देवेशजी का सौमनस्य, प्रतिक्षण सहयोग का भाग रखने वाले पूज्य श्रीकृष्णस्वरूपजी महाराज एवं पूज्य श्रीप्रबोधाश्रमजी महाराज का सद्भाव तथा सततकृपादृष्टि से संसिंचित करने वाले श्रीगुरुचरणों का प्रेरक शुभाशीर्वाद ही इस महानुष्ठान की सफलता का मूलाधार है। डॉ. श्रीतेजपालशर्माजी का वैदुष्यामृताक्तानुराग, डॉ. बलौदीजी व डॉ. श्रीरामसलाहीजी का सौहार्दात्मक माधुर्य, पूज्यपाद जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीस्वामी माधवाश्रमजी महाराज व पूज्यपाद गुरुदेव श्रीप्रबलजी महाराज का अहैतुकाशीर्वाद हमारा सम्बल रहा है। हम सभी के प्रति विनत भाव से नमन करते हैं।

पाठकजन के हृदयमन्दिर में विराजित भगवती जगदम्बा के चरणारविन्दयुगल में प्रणति समर्पित है। मेरे शुष्क पाषाणोपम हृदय को आश्रयात्मोद्रिक्त रस से सिंचित कर मृदुलबनाने वाले, श्रीमद्भागवत के साक्षात् मूर्तिमान् स्वरूप, परमवीतराग सन्त पूज्य श्रीमद्दण्डी स्वामी विष्णुआश्रमजी महाराज के श्रीचरणों में ये कृति समर्पित है। इस शब्दमयी उपासना से कोई एक भी प्रसन्न हो सका, तो भी प्रयास सार्थक होगा। एक की प्रसन्नता ही लक्ष्य है। प्रत्येक एक ही समग्र है – **'एकोऽहं तस्मादेका०'**। भगवती जगदम्बा त्रिपुरसुन्दरी राजराजेश्वरी के पावन पादारविन्दों में सदाशिव–कृपाप्रसाद–स्वरूप ये वाक् प्रसूनाञ्जलि समर्पित है ।।

- **त्र्यम्बकेश्वर चैतन्य**

# ।। सम्पादकीय ।।

।। श्रीः ।।

इस जगत् का कल्याण करने की सामर्थ्य वाग्शक्ति में अनादिकाल से अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित हो रही है। शब्दरूपज्योति इस तामस (अन्धकारमय) लोक में प्रकाश डालने के लिये स्वयं ब्रह्मरूप में अवतीर्ण हुई। **'वाग्वै ब्रह्म'** श्रुति द्वारा यह प्रतिपादित है। अन्यत्र भी शब्दब्रह्म की महत्ता प्रतिपादित करते हुए दर्शनकेशरी आचार्य भर्तृहरि ने भी अपने कण्ठरव से उद्घोषित किया,

**अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्ततेऽर्थभेदेन प्रक्रिया जगतो यतः ।।**

अर्थात् वह वाग्शक्ति अनादिकालावच्छिन्न उत्पत्ति-विनाशरहित अक्षरसमाम्नाय है, वही शब्दतत्त्व के रूप में प्रतिभासित हो रही है। वही शब्दरूपी प्रकाशिका (ज्योतिपुञ्ज) वाग्व्यवहार की सामर्थ्य प्रदान कर रही है।
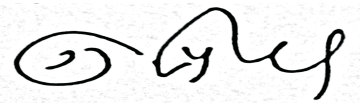
इस अक्षरसमाम्नाय ने भगवान् देवदेवाधिदेव महादेव की साधना से प्रसन्न होकर ऋषियों का उद्धार तो किया ही; साथ ही कठोरतपस्यारत पाणिनि भगवान् को भी उसी समय शिवसूत्ररूप में वह सुनाई पड़ा, जिसका श्रवण कर उन्होंनें विशालकाय चतुस्साहस्त्री अष्टाध्यायी का निर्माण कर जगत् का उपकार किया। जिसका अवलम्बन कर शेषावतार पतञ्जलि भगवान् ने अत्यन्त गूढ महाभाष्य की रचना की।

लोकोपकारार्थ ऋषि-महर्षि-राजर्षि-ब्रह्मर्षि-तपस्वी-योगीजनों ने निर्विकल्प-सविकल्पक समाधि में परा-पश्यन्ती-मध्यमा का साक्षात्कार कर मनुष्य की वैखरी वाणी को आत्मसात् किया। **'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'** उक्ति को चरितार्थ करते हुए स्वयं परब्रह्म ने व्यास बनकर इस जगत् का कल्याण करते हुए वेद-पुराणों का विस्तार किया तथा जगत् को शिक्षा देकर आलोकित किया। आदिगुरु शङ्कराचार्यभगवान् ने भी संसार में महाभारतादि पदार्थों की दुर्लभता पर विचार किया। व्यास भगवान् ने इस जगत् को पवित्र करने के लिये अष्टादश पुराण, महाभारत आदि प्रभृति ग्रन्थों का प्रणयन कर असार-भवसागर से पार जाकर लक्ष्यप्राप्ति का साधन प्रशस्त किया। उसी शृंखला में भगवती पराम्बा माँ के वस्तुतः स्वरूप परिचय ज्ञान-विज्ञान हेतु श्रीमद्देवीभागवत का प्रणयन कर उपकृत किया।

माँ का कृपाशीर्वाद प्राप्त हुए बिना सहसा किसी ग्रन्थ की टीका करने की सामर्थ्यता कहाँ? लेकिन उन्हीं (माँ) की कृपा से तपोपूत, जिन्होंने काशी में रहकर (मौन होकर पुरश्चरण कर) भगवती पराम्बा माँ को प्रसन्न किया; पुनः जगत्कल्याण हेतु सत्पथप्रदर्शक बनकर यज्ञपरम्पराओं का वैदिक-विधा से अनुष्ठान करवाया; पुनः महर्षि भृगु की पावनतम स्थली गंगाजी की गोद में ढाई वर्ष तक मौनपूर्वक कठोर तपपूर्वक स्वयं को धन्य किया तथा पुनः जनकल्याणार्थ धर्मप्रचार-प्रसार-कार्य में प्रवृत्त हुए, जीवन को सफल बनाने वाली नर्मदा माँ की परिक्रमा करके भगवती माँ की कृपा को प्राप्त करते हुए अनेक चान्द्रायण आदि दिव्यानुष्ठानों को सम्पादित किया।

ऐसे परमतपस्वी, ब्रह्मविद्, वर्णाश्रमधर्मनिष्ठ, सत्कर्म-धर्मपरायण, वेदवेदांगनिष्णात् परमश्रद्धेय पूज्यपाद श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज के करकमलों से निस्सृत यह 'श्रीदेवीभागवतपीयूष' ग्रन्थ इहलोक को आलोकित करेगा। जैसे अन्धकार के छिपने पर सूर्य उदित होते है; वैसे ही जब जीवन में अशान्ति-दुःख का अवसर प्राप्त हो, उस समय यह ग्रन्थ अशान्ति को निवृत्तकर शान्ति का सुख प्रदान करने में सहायक होगा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में येन-केन-प्रकारेण सहयोग करने वालों को भूरिशः साधुवाद। सभी को शुभाशीर्वाद प्रदान करके भगवती त्रिपुरसुन्दरी ललिताम्बा के श्रीचरणों में वाणी सर्मपित करते हैं। हर हर महादेव ।।

(डा. गुणप्रकाशचैतन्य)

# ॥ कथा संकेत ॥

× ✻ × ✻ × ✻ × ✻ ×

नित्यमणिद्वीपधाम-विहारिणी गो-वेद-विप्र-रक्षणपरायणा
सकलवेदमयी साम्बसदाशिवप्रिया भगवती राजराजेश्वरी दुर्गा

### अर्धश्लोकी देवीभागवत

## ॥ सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति कदाचन् ॥

सर्वचैतन्यरूपां तां आद्यां विद्यां च धीमहि । बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ॥
सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम् ।
नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। स्कान्दीयं श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यम् ।।

*।। श्रीगणेशाय नमः ।।*
*।। ॐ ह्रीं श्रीजगदम्बिकायै नमः ।।*
*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### स्यमन्तकमणि की कथा तथा देवी उपासना से कृष्ण-प्राप्ति, देव्याराधन व देवीभागवतश्रवण से इला सुद्युम्न बनी, ऋतवाक् मुनि के शाप से रेवती पतन, मुहूर्त व श्रोता-वक्ता विचार

**सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ पालनी या च रौद्री संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं क्रीडनं या पराख्या ।**
**पश्यन्ती मध्यमाथो तदनु भगवती वैखरीवर्णरूपा सास्मद् वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशाराधितालङ्करोतु ।।**

सृष्टि के सृजन काल में जो आद्यशक्ति रचनारूप, जगत्पालनार्थ जो करुणामयी माँ पालनी शक्तिरूप तथा प्रपञ्च को लीन करते समय जो माँ रौद्री रूप हो जाती है; सम्पूर्ण चराचर जगत जिसका क्रीडाङ्गणस्थ खिलौना है, खेल का साधन है, स्वयं मातृकारूप माँ परा (नाभि), पश्यन्ती (हृदय), मध्यमा (कण्ठ), वैखरी (मुख) रूप धारण कर संसार को भावाभिव्यक्ति की शक्ति देती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर भी जिनके चरणकमल की वन्दना करने में कृत्कृत्यता का अनुभव करते हैं। वह अकारण-करुणात्मिका करुणा-वरुणालया माँ प्रसन्न होकर हमारी वाणी को पवित्र करें। 'उनकी महिमा गा सकें' - ऐसी भक्ति, शक्ति, युक्ति देकर कृतार्थ करें।

नैमिषारण्य तीर्थ क्या है? **'ऋगतौ से ( अर्तेर्नित् ) न्य अरण्य णत्व रणनम् - कोलाहलो न भवति यत्र इति अरण्यम्'**। यहाँ उपस्थित शौनकादि ऋषियों द्वारा सूतजी का स्वागत-सत्कार करके उनसे प्रश्न किया, 'हे सूतजी ! पावनतम भुक्ति-मुक्तिप्रदायक श्रीमद्देवीभागवत की कथा सुनाकर हमें अनुग्रहीत करें। इसकी विधि क्या है तथा ये भी बतायें कि इसे कैसे सुना जाता है? कितने दिन तक ये कथा सुननी चाहिए?' सूतजी ने उत्तर दिया, 'हे शौनकजी ! व्यासविरचित श्रीमद्देवीभागवतकथा को श्रद्धापूर्वक नौ दिन तक सुनना चाहिए। जनमेजय ने पिता परीक्षित के तक्षक द्वारा अकालमृत्युजन्य-दोषशोधनार्थ ये पावन कथा सुनी। कथाश्रवण के फलस्वरूप परीक्षित दिव्यरूप धारण करके दिव्यलोक को गये। अतः जब भी जैसे भी बने, देवीभागवत की कथा का श्रवण अवश्य

करें। सुधापान से एक ही अमर हो सकता है, किंतु देवीभागवत के कथामृत से समस्त परिवार को अजरता-अमरता प्राप्त हो जाती है। निष्कामभाव से तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिए कोई मुहूर्त अपेक्षित नहीं; किंतु सकामभाव हो, तो चारों नवरात्रियाँ (दो प्रकट : आश्विन शुक्लपक्ष और चैत्र शुक्लपक्ष; दो गुप्त : माघ शुक्लपक्ष और आषाढ़ शुक्लपक्ष) व फाल्गुन और वैशाख भी ग्राह्य हैं। आश्विन शुक्लपक्षाष्टमी महाष्टमी (कन्याराशिगत सूर्य में) को 'स्वर्णासीन देवीभागवत' किसी वीतराग विरक्त विद्वान् ब्राह्मण को दान करे। किसी भी प्रकार की पीड़ा, अशान्ति, हानि, दरिद्रता, पाप, ताप, पश्चाताप हो; देवीभागवत के श्रवणमात्र से नष्ट हो जाता है। महाराज वसुदेव ने देवीभागवत के श्रवण से श्रीकृष्ण को सुरक्षित पा लिया था।'

ऋषियों के पूछने पर सूतजी ने सुनाया, 'हे ऋषियो! भोजवंशीय सत्राजित् नामक राजा द्वारकापुरी में रहकर सूर्याराधना करता था। प्रसन्न सूर्य ने उसे अत्यन्त देदीप्यमान् स्यमन्तक मणि दे दी, जिसे धारण करने पर सत्राजित् सूर्य-जैसे तेजस्वी लगते थे। ये अष्ट्भार सोना देने वाली मणि जहाँ रहती, वहाँ दुर्भिक्ष (अकाल) महामारी नहीं होती। एक दिन सत्राजित् का अनुज प्रसेनजित् मणि को लेकर मृगयार्थ वन में गया, तो उसे सिंह ने मारकर मणि छीन ली। सिंह को मारकर जाम्बवन्त ने मणि लेकर गुफा में अपनी पुत्री को क्रीडनार्थ दे दी। इधर प्रसेनजित् के न आने पर सत्राजित् को संताप हो गया। धीरे-धीरे बात फैल गयी कि मणि कृष्ण ने ली है तथा प्रसेनजित् को मार दिया है।

**अथ लोकमुखोद्गीर्णा किंवदन्ती पुरेऽभवत्**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०२.१६)

कृष्ण कलंक मिटाने के लिए नागरिकों सहित वन की ओर चले। वहाँ प्रसेनजित् को मृत देख रक्तविन्दु के सहारे आगे बढे, तब वहाँ एक सिंह को मृत पाया। कृष्ण नागरिकों को सान्त्वना दे गुफा में घुस गये। उन्हें देखते ही धाय ने शोर मचाया, तो जाम्बवन्त क्रोधपूर्वक उनपर टूट पड़े। कृष्ण के साथ निरन्तर २७ दिन-रात मल्लयुद्ध चला। बिचारे नगरवासी तो बारह दिन में ही डरकर भाग आये तथा सारा वृतान्त वसुदेव को सुना दिया। अब तो चारों ओर से सत्राजित् को गालियाँ मिलती है। सब कृष्ण बिना परेशान हैं। तभी वहाँ नारदजी आ गये। पुत्रशोकसंतप्त वसुदेव सन्त के सम्मुख रो दिये। नारदजी ने कहा, 'वसुदेवजी! देवीभागवत का पारायण तथा देव्याराधना से अतिशीघ्र कृष्ण वापस आ जायेंगे।'

**नवरात्रविधानेन सम्पूज्य जगदम्बिकाम् । नवाहोभिः पुराणं च देव्या भागवतं श्रुणु ।।**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०२.४०)

वसुदेव ने प्रसन्न होकर अपना संस्मरण सुनाया, 'हे नारदजी! पापात्मा कंस द्वारा कारागार में बद्ध हमारे पुत्रों को मार दिया गया था, तब मैंने कुलाचार्य गर्गजी से पुत्रप्राप्ति का उपाय उस जेल में ही पूछा था। तब उन्होंने कहा था कि दुर्गाश्रित प्राणी के जीवन में क्लेश नहीं आ सकता। मैंने गर्गाचार्य से प्रार्थना की, 'आप ही मेरे निमित्त अनुष्ठान विशेष कर दें, मैं कारागार में नियम पालन कर नहीं पाऊँगा।'

**तदा गुरो मदर्थे त्वं समाराधय चण्डिकाम्**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०२.५३)

गर्गाचार्य ने विन्धाचल पर विन्ध्येश्वरी देवी के चरणों में सब्राह्मण आराधना की - '**विन्धयाद्रौ ब्राह्मणैः सह**', जप और पाठ किया। पूर्णाहूति पर आकाशवाणी ने कहा कि शीघ्र कंसादि राक्षसों के वधार्थ विष्णु वसुदेव के पुत्र बनकर आ रहे हैं। वसुदेव रातोंरात उस बालक को नन्द के घर छोड़कर वहाँ से कन्या लायेंगे, जिसे मारने की चेष्टा में कंस असफल होगा। मेरे अंश से उत्पन्न वह कन्या अष्टभुजी लोककल्याण करेगी।

**मदंशभूता विन्ध्याद्रौ करिष्यति जगद्धितम्**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०२.६२)

***********************************************************************************

गर्गाचार्यजी की वह वाणी और उसका अक्षरशः पालन मैंने देखा है। आज नारदजी आप भी वैसे ही कहते हो। अतः आप ही कथा सुना दीजिए। नारदजी सुनाने लगे, 'नवार्ण मन्त्र जप, सप्तशती पाठ सहित देवीभागवत का यहाँ नौवा दिन है। उधर कृष्ण के मुक्कों की मार से जाम्बवान का अंग-अंग ढीला हो गया। वे पहचान गये तथा चरणों में गिरकर प्रणाम करने लगे, 'प्रभो ! क्षमा करें ! आप तो राम हैं, जिन्होंने सागर को रोष से क्षुब्ध किया तथा सकुल रावण को मारा था - '**मद्दौराम्यं क्षमस्व भो**'। अब आप पार्थिव मणि के साथ मानवी मणि जाम्बवती को भी स्वीकार करें। भगवान शीघ्रतापूर्वक द्वारिका की ओर चल दिये। उधर पूर्णाहूति के उपरान्त भोजन-दक्षिणा प्राप्तकर ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे थे - '**मन्त्रार्थाः सफला सन्तु पूर्णा सन्तु मनोरथाः**'। तभी भगवान् कृष्ण जाम्बवती एवं स्यमन्तकमणि सहित आ गये। सबकी खुशी का ठिकाना न रहा। नारदजी ब्रह्मलोक चले गये। ये चरित्र कलंकशामक है।

दूसरा प्रसंग है, कुम्भज (अगस्त्यजी) कार्तिकेय से श्रीमद्देवीभागवत का माहात्म्य पूछते हैं। स्कन्दजी ने कहा, 'हे महामुने ! श्रीमद्देवीभागवत भगवती का वाङ्मय विग्रह है। एक दृष्टान्त है, उसे सुनो। मनुपुत्र श्राद्धदेव ने कुलगुरु वसिष्ठ के नेतृत्व में पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। राजा तो पुत्र चाहते थे, किंतु रानी श्रद्धा पुत्री चाहती थी; अतः पुत्री इला हो गयी। इस व्यतिक्रम से राजा तथा वसिष्ठ दोंनो चिन्तित हो गये। वसिष्ठजी ने योग द्वारा यथार्थ जान लिया कि होता ने होमकाल में कन्या का संकल्प किया है, फिर भी वसिष्ठजी ने इला को सुद्युम्न बना दिया। तरुण होने पर सुद्युम्न मृगयार्थ भ्रमण करता हुआ हिमगिरि के समीप इलावृत्त खण्ड में पहुँच गया, जहाँ शिव के शापवश शिवातिरिक्त कोई भी पुरुष नहीं रह सकता था। शिव-पार्वती के रमणकाल में ऋषियों के आगमन से विघ्न हुआ। अतः शिव ने उमा के प्रीत्यर्थ इस खण्ड को पुंस्त्वविहीन होने का शाप दिया था। सुद्युम्न पुनः अनिन्द्यसौन्दर्य सम्पन्न स्त्रीत्वालंकृत हो बुध के आश्रम में पहुँचे। दोनों ने विवाह कर लिया। पुत्र (पुरुरवा) भी हो गया। सहसा सुद्युम्न (स्त्रीरूप) गुरुशरण में पहुँचे। गुरु शिवशरण में गये। तपस्या से प्रसन्न शिव ने मासभर नारी, मासभर नर होना निश्चित कर दिया।'

**मासं पुमान स भविता मासं नारी भविष्यति**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०३.०४)

'तदनन्तर वसिष्ठजी ने माँ भगवती की आज्ञा से आश्विन् शुक्लपक्ष में देवीभागवत का पारायण, देव्याराधन किया। फलतः सर्वदा के लिए पुंस्त्व पाया। गुरु की कृपा अद्भुत होती है, जिसका वर्णन शब्दों में सम्भव नहीं होता। शिष्य का उद्धार करना ही गुरु का धर्म है।' सूतजी कहते है, 'हे शौनकजी ! कार्तिकेयजी ने अगस्त्य को और भी एक दिव्य कथा सुनाई। एक ऋषि थे - ऋत्वाक्। उनका पुत्र रेवती नक्षत्र में (गण्डान्त) पैदा हुआ। उसके उपनयनान्त संस्कार सम्पन्न करके बालक के माता-पिता रुग्ण रहने लगे। पुत्र भी कुपुत्र निकला, संस्कारहीन, दुराचारी। ऋषि कहने लगे, 'अपुत्र (निपूता) होना ठीक, किन्तु कुपुत्र का होना ठीक नहीं।'

**अपुत्रता वरं नृणां न कदाचित्कुपुत्रता**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०४.१२)

**अजातमृत मूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः । सकृत दुःखकरौ आद्यौ अन्तिमस्तु पदे पदे ।।**

कुपुत्र से कुल, यश, स्वर्ग, अन्वय, नष्ट हो जाते है। लोक में असंख्य उदाहरण है - कुभार्या से जीवन नष्ट, कुभोजन से दिन नष्ट, कुमित्र से सुख नष्ट हो जाता है। ऋतवाक् ने गर्गाचार्य से पूछा, 'महाराज ! अपुत्र की गति नहीं होती, किन्तु कुपुत्र का फल क्या है? ये कुपुत्र मेरे दोष से है या मातृदोष से है?' गर्ग बोले, 'हे विप्र ! किसी का दोष नही, ये जन्म समय (रेवती गण्डान्त में जन्म लेने) के कारण हुआ है। अतः भगवती परामबा की आराधना करो। किन्तु क्रोधाविष्ट ऋतवाक् (सत्यवक्ता ) ने रेवती को शाप दे दिया, 'तुम पतित हो जाओ।' कहते ही रेवती कुमुदपर्वत पर गिर गई। तब से रेवती का प्रभाव भूतल पर अधिक हुआ। रेवती से एक कन्या हुई। रेवती और प्रमुच मुनि ने पुत्रीवत् पालन करके अग्नि की कृपा से दुर्दम नामक राजा के साथ विवाह कर दिया। किन्तु कन्या रेवती के आग्रह से रेवती नक्षत्र को पुनः आकाश में स्थितकर रेवती नक्षत्र में ही विवाह हुआ। तदनन्तर महामाया माँ जगदम्बा की आराधना से मन्वन्तराधिप पुत्र हुआ, जिसका नाम रैवत हुआ। राजा दुर्दम ने लोमश ऋषि से पाँच वार देवीभागवत का पारायण सुना, तब रैवतपुत्र

*******************************************************************************

हुआ।

**पंचकृत्वः स शुश्राव विधिवत् भार्यया सह**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०४.८०)

सूतजी बोले, 'शुभ मुहूर्त में ज्येष्ठादि षड्मासों में हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण नक्षत्र में, शुभ तिथि, शुभवार में श्रवण करें। जिस नक्षत्र में बृहस्पति हो, वहाँ से (बृहस्पति नक्षत्र से) चौथा नक्षत्र धर्मप्राप्ति, उससे चौथा नक्षत्र धनप्राप्ति देता है, उससे अगला नक्षत्र कथा सिद्धि देता है, उससे पाँचवाँ नक्षत्र परम सुख देता है, उससे छटा नक्षत्र पीड़ा देता है, उससे चौथा नक्षत्र राजभय देता है, उससे तीसरा नक्षत्र ज्ञानप्राप्ति देता है। नवाह्न श्रवण में शिवोक्त चक्र का शोधन अवश्य करें। चारों नवरात्रों के अतिरिक्त भी श्रवण कर सकते हैं। कृपणता को त्याग यथा वैभव विवाह जैसा उत्सव करें। निमन्त्रणपत्र भेजकर कथारस रसिकों को बुलावे। सुन्दर व्यासगद्दी बनावे। आधि-व्याधि ग्रस्त व्यक्ति को (ब्राह्मण को) वक्ता न बनावें। अन्य वर्ण की तो व्यासासीनता सम्भव ही नहीं। वेद-वेदांगनिष्णात संध्या-तर्पणादि नित्यकर्मनिरत तपस्वी विरक्त विद्वान् को ही वक्ता बनावें। विधिवत् पञ्चाङ्गादि कर्म सम्पन्न कर पार्थिवपूजा करें। शालग्राम व तुलसी की पूजा कर नवार्णमन्त्र सहित जगदम्बा की पूजा करें। सप्तशतीपाठ, देवीभागवत पाठ, नवार्णमन्त्र जपादि करावे। माँ की भावपूर्वक प्रार्थना करें,

**कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामये ।**
**ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके मनोभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तुते ।।**

निरालस्यता के लिए वक्ता-श्रोता सात्विक अल्पाहार, फलाहार, शाकाहार, दुग्धाहार, घृताहार या न चले; तो एक वार अन्नाहार ही लें। निषिद्धान्न न लें। देवों में भेदबुद्धि रखना पाप है। देव, द्विज, गुरु निन्दा भी पाप है। कथा पूर्ण होने पर सप्तशती से या नवार्ण से होम करें। गायत्रीसहस्रनाम या विष्णुसहस्रनाम का पाठ भी करे। व्यासपीठस्थ वक्तारूप ब्राह्मण को यथाशक्ति दक्षिणारूपी पुष्प देकर सन्तुष्ट करें। सुवासिनी, कन्या, सौभाग्यवती पूजन करें। जैसे नदियों में गंगा, देवों में शङ्कर, काव्यों में रामायण, तेजस्वियों में सूर्य, आह्लादकों में चन्द्र, धनों में यक्ष, क्षमाशीलों में पृथ्वी, गम्भीरों में सागर, मन्त्रों में गायत्री, पापनाश में हरिस्मृति, है; वैसे ही पुराणों में ये देवीभागवत है। न तो गायत्री जैसा धर्म है,न ही तप, न देवता है, न मन्त्र है।

**न गायत्र्याः परो धर्मो न गायत्र्याः परं तपः । न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः ।।**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०५.९४)

गायत्री - '**गातारं त्रायते यस्मात् गायत्री तेन सोच्चते**'।

**यत्पादपंकजरजः समवाप्य विश्वं ब्रह्मा सृजत्यनुदिनं च विभर्ति विष्णुः ।**
**रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्थास्तस्यै नमोस्तु सततं जगदम्बिकायै ।।**

(स्कान्दीय श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य ०५.१००)

जिनकी चरणकमल रज की कृपा से ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वकर्म सम्पन्न करते हैं; मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं स्कान्दीयं श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यम् ।।*

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। प्रथमः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### नैमिषारण्य में सूतजी से शौनकादि द्वारा प्रश्न, सूतजी द्वारा मङ्गलाचरण, नैमिषारण्य महिमा, पुराणोपपुराण वर्णन, व्यासक्रम

**सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि । बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ।।**

(देवीभागवत ०१.०१.०१)

सर्वचैतन्यरूपा भगवती राजराजेश्वरी आद्या का हम ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें।

कलिदोष-विवर्जित नैमिषारण्य तीर्थ में शौनकादि ऋषियों के मध्य गुरुकृपावश पुराणतत्त्व को पा लेने वाले सूतजी ने श्रीमद्देवीभागवत की कथा कहनी प्रारम्भ की। ऋषियों को आनन्दातिरेक हुआ। हो भी क्यों नही, जब कर्णहीन सर्प भी वंशी-नाद पर मुग्ध होकर नाचने लगता है, तब कर्णवान् मानव की तो बात ही क्या है?

**अश्रोत्राः फणिनः कामं मुह्यन्ति हि नभोगुणैः । सकर्णा ये न शृण्वन्ति तेऽप्यकर्णाः कथं न च ।।**

(देवीभागवत ०१.०१.१०)

ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है और ज्ञान सत्संग बिना सम्भव नहीं। सत्संग हरिकृपा बिना सम्भव नहीं और हरिकृपा गुरुकृपा बिना सम्भव नहीं। गुरुकृपा के लिए सत्कर्म चाहिए और सत्कर्म के लिए भगवत्कृपा परमावश्यक है।

**बिनु सत्संग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।**

**सतसंगति संसृति कर अन्ता ।।**

**गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई । जौ बिरंचि संकर सम होई ।।**

(रामचरितमानस ०१.०३.०४, ०७.४५.०३, ०७.९३.०३)

सूतजी महाराज ने भगवती जगदम्बा की अद्‌भुत स्तुति की –

*************************************************************************************

**या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाऽऽद्या परा सर्वज्ञा भवबन्धछित्तिनिपुणा सर्वांशये संस्थिता ।**
**दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिः ध्यानास्पदं प्रापिता प्रत्यक्षा भवतीह सा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा ।।**
**सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम् ।**
**संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि ।।**

(देवीभागवत ०१.०२.०४-०५)

हे माँ! आप विद्या, आदिशक्ति, पराशक्ति, आदि नामों से वैदिकों में प्रसिद्ध हैं तथा जो सर्वज्ञ भवबन्धछेदन निपुण व सर्वान्तयामिनी हैं। सर्वहृदयवासिनी माँ को दुरात्मा नहीं जान सकते। मुनि जिनका प्रत्यक्ष शीघ्र पा लेते हैं, वह माँ सिद्धि प्रदान करें। स्वशक्ति से सत्-असत् सकल चराचर का सृजन कर उसका पालन करने वाली तथा प्रलयकाल में अपनी लीला से सब समेटकर एकाकी रमण करने वाली माँ का हम ध्यान करते हैं। इस प्रकार सूतजी ने पराम्बा माँ जगज्जननी को प्रणाम कर देवीभागवत के स्कन्ध, अध्याय व श्लोकों की संख्या बताई। बारह स्कन्धों में तीन सौ अट्ठारह अध्याय तथा अट्ठारह हजार श्लोक हैं। नैमिषारण्य के विषय में शौनकजी ने 'ब्रह्मा-प्रक्षिप्त-मनोमय चक्र की नेमि शीर्ण होने से कलि-कालुष्य-विहीन क्षेत्र है' - ये प्रतिपादित किया। सूतजी ने अट्ठारह पुराणों का नामोल्लेखपूर्वक स्मरण किया है -

**मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं व चतुष्टयम् ।**
**अनापलिंगकूष्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ।।**

**'मद्वयं -'** मत्स्य (१४,००० श्लोक), मार्कण्डेय (९,००० श्लोक); **'भद्वयं चैव -'** भविष्य (१४,५०० श्लोक), भागवत (१८,००० श्लोक); **'ब्रत्रयं -'** ब्रह्म (१०,००० श्लोक), ब्रह्माण्ड (१२,००० श्लोक), ब्रह्मवैवर्त (१८,००० श्लोक), **'व चतुष्टयम्' -** वामन (१०,००० श्लोक), वायु (२४,००० श्लोक), विष्णु (२३,००० श्लोक), वाराह (२४,००० श्लोक); **'अनाप लिंगकूष्कानि -'** अग्नि (१५,४०० श्लोक), नारद (२५,००० श्लोक), पद्म (५५,००० श्लोक), लिंग (११,००० श्लोक), गरुड (१९,००० श्लोक), कूर्म (१७,००० श्लोक) तथा स्कन्द (८१,१०० श्लोक)।

अब श्रीसूतजी महाराज ने अट्ठारह उपपुराणों का नामोल्लेख किया - सनत्कुमार, वरुण, श्रीमद्भागवत, नारसिंह, कालिका, योगवाशिष्ठ, नारदीय, साम्ब, शिव, नन्दी, दुर्वासा, सूर्य, कपिल, पराशर, मनु, आदित्य, शुक्र तथा माहेश्वर। सारस्वतकल्प में श्रीमद्देवीभागवत को महापुराण के रूप में स्वीकार किया गया है तथा श्वेतवाराहकल्प में श्रीमद्भागवत को महापुराण के रूप में स्वीकार किया जाता है। अब मुनियों के प्रश्न करने पर श्रीसूतजी महाराज विभिन्न व्यासों का नामोल्लेख करके वर्णन करते हैं। सृष्टि के सर्वप्रथम द्वापर से वर्तमान समय तक १. ब्रह्माजी, २. प्रजापति, ३. शुक्र, ४. बृहस्पति, ५. सूर्य, ६. यम, ७. इन्द्र, ८. वसिष्ठ, ९. सारस्वत, १०. त्रिधामा, ११. त्रिवृष, १२. भरद्वाज, १३. अन्तरिक्ष, १४. धर्मराज, १५. त्रयारुणिः, १६. धनञ्जय, १७. मेधातिथि, १८. व्रती, १९. अत्रि, २०. गौतम, २१. उत्तम, २२. वेनोवजश्रवा, २३. सोमामुष्यायज, २४. तृणविन्दु, २५. भार्गव, २६. शक्ति तथा २७. जातुकर्ण्य - क्रमशः ये सत्ताईस व्यास हुए हैं। कृष्णद्वैपायन मुनि वर्तमान समय में व्यास हैं। उनतीसवें मन्वन्तर में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ही व्यास होंगे -

**एकोनत्रिशत्सम्प्राप्ते द्रौणिः व्यासो भविष्यति**

(देवीभागवत ०१.०३.२३)

आगामी द्वापर के व्यास का प्रशिक्षण काल चल रहा है। ये ऐसी शाश्वत परम्परा है, जिसका कहीं विच्छेद नहीं होता। इसीलिए कोई भी व्यास पदासीन ऋषि इस अविच्छिन्न परम्परा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। त्रैकालिक श्रुति-स्मृति-पुराणोपपुराणेतिहासागमादि में स्वेच्छया परिवर्तन नहीं कर सकता, क्योंकि निवर्तमान् अनेकों व्यासों का अंकुश उनपर रहता है। अतः विलुप्त प्रायः वेद-वेदांगों को पूर्व श्रुत-स्मृताधिगत-ज्ञान-विज्ञान को नूतन व्यास पुनः व्यवस्थित कर देते हैं।

**************************************************************************************

## व्यासजी के मन में पुत्रोत्पत्ति की इच्छा, नारदजी द्वारा भगवती की उपासना, विष्णु का हयग्रीवरूप व उसका कारण, सत्संग महिमा, मधु-कैटभोत्पत्ति, ब्रह्माकृत महामायास्तुति, विष्णु द्वारा मधु-कैटभ वध

हे शौनकजी ! कृष्णद्वैपायन व्यासजी ने अपने अयोनिज-अरणिजात-विरक्त पुत्र शुकदेव को ये भागवत पढाई। मैंने भी वहीं सुना था। इस परमपवित्र आख्यान को न सुनने वाला मन्दभागी है। सुनने वाला अपूर्व सौभाग्य सम्पन्न होकर भगवती का कृपा प्रसाद पा लेता है। एक दिन व्यासजी महाराज ने गौरैया पक्षी को अपने सद्यजात शिशु से स्नेह करते देखा, तो वे अपुत्रत्व की दुर्गति का स्मरण करने लगे। जब पक्षियों की सन्तति के प्रति ऐसी अपूर्व प्रेममयी भावना है, तब श्राद्ध-तर्पणादि कर्मनिपुण पुत्र के प्रति मनुष्य की सुखानुभूति का तो वर्णन सम्भव ही नहीं।

**अपुत्रस्य गर्तिनास्ति स्वर्गो नैव च नैव च**

(गरुडपुराण ०२.१३.१८)

मनु, आदि स्मृतिकारों ने भी अपुत्र की गति नहीं कही है। सन्तानहीन प्राणी जीवनपर्यन्त शोकाकुल रहता है कि मेरे धन-सम्पति, पशु, क्षेत्रादि का स्वामी कौन होगा। अन्त में तर्पण-श्राद्धादि से वह वंचित रह जाता है, इसीलिए निःसन्तान की गति का निषेध है क्योंकि वह मरणकाल में संसारिक चिन्ता में प्राण त्यागता है।

**अन्ते मतिः सा गतिः**

तभी नारदजी ने आकर कहा, 'व्यासजी ! उस पराम्बा भगवती की आराधना करो, जिसकी कृपा से ब्रह्मा-विष्णु-शंकर अपना-अपना कार्य सहजता से कर लेते हैं।' व्यासजी के पूछने पर 'पुत्र प्राप्ति के लिए देव्याराधन ही श्रेष्ठ उपाय है' - नारदजी ने कह दिया। स्वयं विष्णुजी ने ये बात मेरे पिता ब्रह्माजी से कही थी कि मैं वराहादि अवतार लेकर भी उसी की कृपा से राक्षस वध करता हूँ। फिर ब्रह्माजी ! आपको स्मरण होगा कि मेरे कर्णमलोत्पन्न मधु-कैटभ को मैंने मारा, तो उन्हीं की कृपाशक्ति का परिणाम था। एक बार धनुष की टेक लगाकर मैं पद्मासन में सोया था। सोते समय प्रत्यञ्चा टूटने से मेरा शिर कट गया। तब तुमने घोडे का सिर लगाकर मुझे हयग्रीव बनाया था। अतः ब्रह्माजी ! मैं स्वतन्त्र होता, तो मेरा सिर कट पाता क्या? अतः ये जान लो कि हमसे ऊपर भी भगवती राजराजेश्वरी हैं।' नारदजी ने कहा, 'व्यासजी ! उन्हीं की शरण में आपका मनोरथ पूर्ण होगा।'

ऋषियों ने पूछा, 'हे सूतजी ! ये तो महान् आश्चर्य है कि विष्णु का सिर कट गया फिर जुड़ गया। यह कथा आप विस्तारपूर्वक कहें'। सूतजी ने कहा, 'हे ऋषियो ! एक बार दस हजार वर्ष तक दानवों के साथ निरन्तर युद्ध करने से थके विष्णु एकान्त में पद्मासनस्थ धनुषकोटि को कण्ठ से टिकाये सो गये। इन्द्रादि देवों ने यज्ञार्थ विष्णु को खोजा। अब इन्हें कौन जगाये? निद्राभंग से महापाप लगता है। ब्रह्माजी ने दीमक (वम्री) उत्पन्न की और कहा, 'इनके धनुष को नीचे से खा लो, तो ये जाग जायेंगे।' दीमक ने कहा, 'महाराज ! सोते को जगाना, कथा भंग करना, दम्पत्ति में कलह कराना और शिशु-माता भेद करना - ये ब्रह्महत्या समान पाप हैं।'

**निद्रा भंगः कथाच्छेदो दम्पत्योः प्रीति भेदनम् ।**
**शिशु मातृ विभेदश्च ब्रह्महत्या समं स्मृतम् ।।**

(देवीभागवत ०१.०५.२०)

ब्रह्माजी ने कहा, 'यज्ञ करते समय अग्नि से बाहर गिरने वाले हवि को तुम स्वीकारोगे।'

**होम कर्मणि पार्श्वे च हविर्दानात्पतिष्यति ।**
**तत्ते भागं विजानीहि कुरु कार्यत्वारान्विता ।।**

(देवीभागवत ०१.०५.२४)

************************************************************************************

दीमक ने प्रसन्न होकर धनुष नीचे से खाया, तो घोर शब्द के साथ विष्णु का सिर भी कटकर सहसा गायब हो गया। भारी उत्पात के प्रलय जैसे लक्षण वायु, पृथ्वी, जल, तेज क्षुभित होने लगे। देवता विलाप करने लगे, ये किसकी शक्ति है, जिसने हमारे प्राणाधार का भी सिर काट दिया। ब्रह्माजी ने सबको शान्त करके कहा, 'हे देवो! जीवन में सुख-दुःख तो लगे रहते है; दैव का अतिक्रमण कोई नही कर सकता। मेरा शिर शिव ने काटा, शिव का लिङ्गपात, इन्द्र के सहस्र भगाङ्ग तथा स्वर्गच्युत होना। अतः कष्ट से बिना घबराये महामाया जगज्जनी का स्तवन करो।'

देवों ने पराम्बा की दिव्य स्तुति की, 'माँ! जब आप इस प्रपञ्च में लीलालास्य संलग्न होने की इच्छा करती हैं, तब ब्रह्मा-विष्णु-शिव का सृजन कर देती है; आप सकल चराचर की जीवनीशक्ति हैं। आपकी कृपा के बिना कोई आपके स्वरूप को जान नहीं सकता। माँ! आप विष्णु के सिर को पुनः जोड़कर जगत का कल्याण करती हुई हमें सुख देवें।'

**सकल भुवनमेतत्कर्तुकामा यदा त्वं सृजसि जननि देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान् ।**
**स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेशः ।।**

(देवीभागवत ०१.०५.५८)

देवों ने दिव्य स्तुति करके जगज्जननी को प्रसन्न कर लिया। माँ ने कहा, 'आप निश्चिन्त रहो तथा विष्णु के सिर कटने का कारण सुनो। कोई भी कार्य बिना कारण के सम्भव नहीं है।

**अकारणं कथं कार्यं संसारेऽत्र भविष्यति**

(देवीभागवत ०१.०५.७४)

एक बार एकान्त में सहसा लक्ष्मी के मुख को देखकर विष्णुजी हँस पड़े। लक्ष्मीजी को चिन्ता हो गई, क्या कारण है? मेरे मुख में विकार है? या ये मेरी सौत कर लिये हैं? क्रोधाविष्ट हो लक्ष्मी ने 'विष्णु का सिर कट जाये' ऐसा शाप देकर अपने सुख को ही नष्ट किया, अपने पैरों पर कुल्हाडी चलायी। जगदम्बा ने कहा, स्त्रियों में सात दोष स्वाभाविक होते हैं -

**अनृतं साहसं माया मूर्खत्व मति लोभता ।**
**अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजा ।।**

(देवीभागवत ०१.०५.८३)

वह सिर कटकर लवणाम्बुधि में गिरा। रामचरितमानस में कहा,

**नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं ।।**
**साहस अनृत चपलता माया । भय अविवेक असौच अदाया ।।**

(रामचरितमानस ०६.१६.०१-०२)

देवी पराम्बा ने कहा, हे देवो! मैं उसी सिर को जोड़ देती हूँ। दूसरा कारण है, हयग्रीव नामक राक्षस '**ह्रीं**' बीज का जप करता हुआ मेरी तपस्या करता था। तामसी भाव वाले उस राक्षस पर प्रसन्न होकर मैंने उसे दर्शन दिये, तो उसने अद्भुत स्तुति करके मुझसे अजर-अमर होने का वर माँगा, त्रिलोकी में अजेयता माँगी। किन्तु ये तो सम्भव था नहीं; क्योंकि -

**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च**

(श्रीमद्भगवद्गीता ०२.२७)

जिसका जन्म होता है, वह अवश्य मरता है और जो मृत है उसे जन्म लेना पड़ता है। अवतरित और मुक्त का विषय ये नहीं है। अवतरित मर नहीं सकता, मुक्त जन्म नहीं ले सकता। तब उस राक्षस ने कहा, 'माँ! मेरी मृत्यु हयग्रीव से ही हो, अन्य से नहीं।' अब उसके आतंक से सारी प्रजा त्रस्त है। वर्णाश्रमधर्म का लोप-सा हो रहा है। उसका सामना कोई नहीं कर सकता। अतः तुम त्वष्टा (विश्वकर्मा) द्वारा सुन्दर अश्व का मुख जोड़कर विष्णु को हयग्रीव नाश के लिए भेज दो। उसका अन्त समय आ गया है। भगवान

**********************************************************************************

हयग्रीव ने उस राक्षस हयग्रीव को मारकर वेदों का उद्धार किया। संसार का कल्याण किया। शौनकजी ने कहा, 'हे सूतजी! मूर्ख संग महाविष-जैसा तथा सत्संग महामृत-जैसा होता है –

**मूर्खेण सह संयोगः विषादपि सुदुर्जरः ।**
**विज्ञेन सह संयोगः सुधारसः स्मृतः ।।**

(देवीभागवत ०१.०६.०५)

यूँ तो पशु-पक्षी भी खाते-पीते, सोते-जागते, मल-मूत्र त्यागते, भोगादि करते ही हैं; पर उन्हें सत्यासत्य का बोध कथा रसास्वाद नहीं होता, मृग व सर्प श्रवणानन्द में मग्न हो सकते हैं; किन्तु संगीत सुर-ताल मात्र से – उन्हें भी कथातत्व का बोध नहीं होता। किन्तु मनुष्य श्रवण से वस्तुविज्ञान तथा दर्शन से मनोरंजन कर सकता है। ये पाँचों इन्द्रियों का सदुपयोग कर परमतत्व पा सकता है। अब सूतजी आप उत्तमोत्तम फल देने वाली श्रेष्ठ पुराणकथा को सुनाइए। हमारी लालसा बढ़ती ही जाती है। सूतजी ने कथन को आगे बढ़ाया, 'हे विप्रों! प्रलयकालीन जलराशि में शेषशायी विष्णु कर्णमलोद्‌भूत मधु* व कैटभ** राक्षस जलक्रीडा करने लगे। उन्होंने सोचा हम कौन हैं? कहाँ से आये? इस जल का आधार कौन है? ये चिन्तन करते-करते उन्हें वाग्बीज '**ऐं**' प्राप्त हुआ तथा उसके मनन करने से सरस्वती का दर्शन भी हुआ।

**मननात् त्रायते इति मन्त्रः**

सहस्रों वर्ष तप करने पर उन्हे स्वेच्छा मृत्यु का वर प्राप्त हो गया। कुछ काल बाद वे ब्रह्माजी को देख उनसे युद्ध करने चले बोले, 'अरे ऐ बाबाजी! या तो युद्ध कर या ये उत्तम आसन त्यागकर भाग जा। ये तो वीरभोग्य स्थान है, कायरों का नही।'

**वीरभोग्यमिदं स्थानं कातरोऽसि त्यजाशु वै**

(देवीभागवत ०१.०६.४३)

ब्रह्माजी के तो प्राण सूख गये। ब्रह्माजी ने विष्णु को ज्ञान कराना चाहा, किन्तु प्रयास व्यर्थ हुआ। वे योगनिद्रावशवर्ती थे। ब्रह्माजी ने देखा निद्रा उनके वश में नहीं, वे निद्रा के वश में हैं।

**यो यस्य वशमापन्नः स तस्य किंकरः किल**

(देवीभागवत ०१.०७.२१)

अतः भगवती योगनिद्रा का स्तवन प्रारम्भ किया,

**त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्‌कारः स्वरात्मिका ।**
**सुधा त्वमक्षरा नित्या त्रिधामात्रामिका स्थिता ।।**

(दुर्गासप्तशती ०१.७३-७४)

'माँ! आज दुःखसागर में निमग्न मैं आपके अतिरिक्त किसी और को रक्षा करने में समर्थ नहीं देख पाता। वेद आपकी महिमा को गाते तो हैं, किंतु वे भी पूर्णतया सफल हो नहीं पाते। यज्ञों में जबतक आपका '**स्वाहा**' नाम नहीं लिया जाता, तबतक हवि देवताओं का प्राप्त नहीं होता।

--------------------

* मधु – मीठा। कान को मीठा लगता है – निन्दा रस। अत्यन्त सात्विक जनों को तो कथा में रस आता हैं, किन्तु अधिकांश को तो कथा में नींद आती है या मन नहीं लगता। लेकिन निन्दा होती है, तो सारी रात जग सकते हैं; घण्टों बिना थके रस लेते खड़े-खड़े बिता सकते हैं। एक बार बिना खाये-पीये रह सकते हैं; किन्तु पड़ोसी की शत्रु की प्रतिद्वन्द्वी की निन्दा हो तो उत्साहपूर्वक/उत्सुकतापूर्वक हिस्सा न ले – ये असम्भव है।

** कैटभ द्वेष है। '**कीटवत् भाति इति 'कीटभ, भावार्थे कैटभः'** – जो दीमक की तरह दिल दिमाग को खा जाये। यही है– राग-द्वेष। इस राग-द्वेष ने ब्रह्मा की नाक में दम कर दिया। विष्णु की सुखनिद्रा छीन ली। राम को रुला दिया। शिव को सती का मृत शरीर स्पर्श करा दिया। फिर बिचारे अन्य जीवों की क्या कथा?

**************************************************************************************

**यज्ञेषु देवि यदि नाम न ते वदन्ति स्वाहेति वेद विदुषो हवने कृतेऽपि ।**
**न्न प्राप्नुवंति सततं मखभागधेयं देवास्त्वमेव विबुधेस्वपि वृत्तिदाऽसि ।।**

(देवीभागवत ०१.०७.३५)

अब माँ! या तो विष्णु को जगाकर मेरी रक्षा करो, या इन पापात्मा मधु और कैटभ को मार दो; या फिर मेरा ही मरण तुम्हें इष्ट हो, तो मुझे स्वयं ही मार डालो। अगर माँ इन राक्षसों ने मुझको मारा, तो संसार मे आपकी बदनामी होगी कि आद्याशक्ति ने जिसको स्वयं बनाया, उसको राक्षसों ने मार दिया।' स्तुति से प्रसन्न योगनिद्रा ने विष्णु को स्वप्रभाव से मुक्त कर दिया,

**एवं स्तुता तदा देवि तामसी तत्र वेधसा ।**
**निःसृत्य हरिदेहात्तु संस्थिता पार्श्वतस्तदा ।।**

(देवीभागवत ०१.०७.४८)

शौनकजी ने प्रश्न किया, 'हे सूतजी! जब तीनों लोकों, तीनों कालों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश ही श्रेष्ठ व वेद प्रतिपादित हैं, तब ये कौन अपरा शक्ति है, जो विष्णु को भी वश में कर लेती है?' सूतजी बोले, 'हे ऋषियों! सनत्कुमार, नारद, कपिल, व्यास, पराशर, वसिष्ठ, भृगु, आदि भी इस विषय में मौन हो जाते हैं। ब्रह्मा में सर्जिनी शक्ति, विष्णु में पालनी शक्ति, शिव में संहारिणी शक्ति, वायु में संचारिणी शक्ति, अग्नि में दाहकता शक्ति उसी महाशक्ति का लेश है।

**शिवोऽपि शवतां यांति कुंडलिन्या विवर्जितः**

(देवीभागवत ०१.०८.३१)

शिव भी शक्ति बिना शव हो जाता है, शक्तिहीन तो मृतकवत है या मृत है। ब्रह्मादि स्तम्ब-पर्यन्त बसने वाली शक्ति ही ब्रह्मपद वाच्य है। अतः कलिकाल के प्रभाव से मुक्त रहकर व्यक्ति को चाहिए कि सनातन धर्म की वर्णाश्रम परम्परा का अनुपालन करते हुए यज्ञादि करता रहे तथा महामाया का समर्थन करे। कलिगत पाखण्ड से विचलित न होवे।'

सूतजी कहते हैं कि योगनिद्रा से मुक्त विष्णु ने जंभाई लेते हुए ही ब्रह्मा को देखा, उधर मधु-कैटभ को देखा। वे ब्रह्माजी से कह रहे थे, 'अरे कायर! या तो युद्ध कर या फिर कह दे कि मैं तुम्हारा दास हूँ।'

**त्वमद्य कुरु संग्रामं दासोऽस्मीति च वा वद**

(देवीभागवत ०१.०९.११)

विष्णु ने कहा, 'हे वीरों! युद्ध तो मैं करूँगा तुम्हारे साथ।' और पाँच हजार वर्ष तक भयंकर युद्ध हुआ। विष्णु थक गये, किन्तु वे दोनों नहीं थके। युद्ध के साक्षी ब्रह्माजी एवं भगवती ही थी।

**प्रेक्षकस्तु तदा ब्रह्मा देवी चैवान्तरिक्षगा**

(देवीभागवत ०१.०९.१८)

विष्णु को श्रान्त देखकर मधु-कैटभ मदोन्मत्त हो बोले, 'अरे! लगता है, तुम हार गये हो। या तो तुम कह दो कि मैं तुम्हारा दास हूँ या फिर युद्ध करो - '**ब्रूहि दासोस्मि**'।

विष्णु ने विचार किया, ये तो स्वच्छन्द मृत्यु हैं, इन्हें कैसे मारूँ। रोगी, दुःखी, निर्बल, निर्धन भी मरना नहीं चाहता। स्वेच्छा से फिर इनका मरण कैसे होगा? भुवनेश्वरी माँ शिवा का ध्यान कर स्तुति की, 'हे माँ! अब मै क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? ये मुझे मारना चाहते हैं। मेरी रक्षा करो।'

**हन्तुं मामुद्यतौ पापौ किं करोमि क्व यामि च**

(देवीभागवत ०१.०९.४७)

जगदम्बा ने उन्हें मोहित कर दिया तथा विष्णु ने उन्हें भगवती द्वारा सम्मोहित किया जानकर उनसे वर माँगने के लिए कहा।

***************************************************************************************

ऐसा सुनते ही चिढ़-से गये। दोनो भाई साभिमान बोले, 'अरे ! हम भिखारी नहीं दाता हैं, दाता ... । वर तो तुम माँगो। '**दातारौ नौ न याचकौ**' हम तुम पर प्रसन्न हैं। भगवान ने तुरन्त वर माँग लिया, 'मेरे हाथों से तुम दोनों मृत्यु का वरण करो।'

**भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि**

(देवीभागवत ०१.०९.७२)

उन्होने निर्जल प्रान्त में मरण की शर्त रखी। भगवान ने जाँघ पर रखकर उनको सुदर्शन चक्र से मार दिया। उनकी मेदा से सागर भर गया। तभी से पृथ्वी का नाम 'मेदिनी' पडा है तथा मिट्टी खाना वर्जित हुआ - '**अभक्ष्या मृत्तिका तेन**'। राग-द्वेष से अनन्त काल तक कोई नही लड़ सकता। उन्हें भगवान भी मारने मे थक जाते हैं, तब विचारे शताधिकाधि ग्रस्त प्राणी की क्या बात?

## व्यास कृत सुमेरू पर तप, घृताची के देखने पर व्यासजी ने मन में निर्णय किया कि स्त्रियों का संग सदा दुखदायी होता है, इला का पुरूरवा को राजा बनाना, शुकोत्पत्ति कथा, व्यास और शुक का संवाद

सूतजी ने कहा, 'नारदजी द्वारा अनुमोदित सुमेरू पर्वत पर जाकर व्यासजी ने शिव-शक्ति की '**ऐं**' बीज द्वारा सौ वर्ष तक आराधना की। इन्द्र विचलित हुए तो शिव ने उन्हे समझा दिया तथा शिवजी ने व्यासजी को सर्वलोक अप्रतिम विरक्त विद्वान पुत्र होने का वरदान दिया। व्यासजी ने आश्रम पर आकर अरणी मन्थन किया, तो मन्थन से अग्निदेव प्रकट हो गये। पुत्राकांक्षा में व्यासजी को घृताची नाम की अप्सरा दिखी, जिसपर वे आसक्त हो गये। किंकर्तव्यविमूढ धर्म तथा काम का द्वन्द्व चलने लगा। तभी उन्हें एक वृतान्त याद आ गया। व्यासजी ने नारदजी से सुना था कि बृहस्पति की पत्नी तारा चन्द्र पर तथा चन्द्र तारा पर मुग्ध हो गये। दोनों साथ-साथ रहने लगे। बृहस्पति ने चन्द्र को डाँटते हुए कहा, 'अरे नीच ! तुम मेरे शिष्य होकर भी ऐसा भयंकर पाप करते हो, जानते नहीं?'

**ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः।**
**महापात किनो हयेते तत्संसर्गी च पञ्चमः।।**

(देवीभागवत ०१.११.१५)

ब्रह्मघाती, स्वर्ण-स्तेयी, सुरापान-कर्त्ता, गुरुमाता के साथ समागम करने वाला, ये सभी महापातकी होते हैं। शतधा समझाने पर भी चन्द्र ने तारा को नहीं दिया। बृहस्पति परेशान हो गये। चन्द्र तो '**उलटा चोर कोतवाल को डाटे**' वाली कहावत चरितार्थ करते हुए बृहस्पति को ही डाँटने लगे और कहने लगे, 'तुम्हें जो करना हैं, कर लो। मैं तारा को नहीं दे सकता।'

**नाहं ददे गुरो कान्तां यथेच्छसि तथा कुरु**

(देवीभागवत ०१.११.३५)

निराश और हताश बृहस्पति इन्द्र के पास पहुँचे। इन्द्र ने उनका स्वागत किया। बृहस्पति ने इन्द्र से चन्द्र का अपराध कह सुनाया तथा सहायता माँगी। इन्द्र ने उन्हें आश्वस्त किया तथा दूत भेज कर चन्द्रमा को सन्देश दिया कि गुरुपत्नी तारा को अविलम्ब धर्म रक्षार्थ, कुल-परम्परा रक्षार्थ सम्मान सहित विदा कर दो। अपने पिता अत्रि तथा माता अनुसूया के पावन यश को कलंक न लगाओ। दक्षपुत्रियाँ सत्ताईस हैं; जो तुम्हारी पत्नियाँ हैं। उसपर भी स्वर्ग की मेनकादि अप्सराएँ है ही। आप-जैसे समर्थ प्राणी भी ऐसा आचरण करेंगे, तो क्या होगा? अज्ञानी आपका अनुकरण करेंगे फलतः धर्म की अति हानि होगी।

**अज्ञास्तदनुवर्तन्ते तदा धर्मक्षयो भवेत्**

(देवीभागवत ०१.११.५२)

चन्द्र ने सब सुनकर क्रोधपूर्वक प्रतिवचन कहे, 'हे इन्द्र ! तुम और तुम्हारे गुरु बृहस्पति '**पर उपदेश कुशल बहुतेरे**' की श्रेणी के हो। समासक्त स्त्री के ग्रहण में पाप नहीं, त्याग में पाप है। तारा मुझमें अनुरक्त है, स्वयं आयी है; अतः त्याज्य नहीं।'

*************************************************************************************

**अनुरक्ता कथं त्याज्या धर्मतो न्यायतस्तथा**

(देवीभागवत ०१.११.५९)

चन्द्र ने पुनः कहा, 'बृहस्पति ने अपने भाई की पत्नी ममता को स्वीकार कर लिया। तभी से तारा खिन्न होकर मेरे पास आयी है।' चन्द्र का सन्देश सुनकर क्रोधित इन्द्र ने सेना इकट्ठी की, तो चन्द्र शुक्राचार्य के साथ हो गये। शंकरजी बृहस्पति के साथ हो गये। भयंकर युद्ध होने लगा। तब ब्रह्माजी ने चन्द्र को डाँटा। शुक्र को फटकार लगाई। राक्षसों का अन्न खाते-खाते तुम्हारी बुद्धि राक्षसी अन्यायपोषिकी हो गयी है। उधर अत्रि के सन्देश, ब्रह्मा के आदेश, शुक्र के उपदेश से विवश हो या दबाव में आकर चन्द्र ने सगर्भा तारा बृहस्पति को दे दी। युद्ध समाप्त हो गया। कुछ दिनों बाद तारा से उत्तम गुण-रूपयुक्त बालक हुआ। अतीव प्रसन्न बृहस्पति ने उसके जातकर्मादि संस्कार किये। अब चन्द्र और गुरु में '**मेरा पुत्र-मेरा पुत्र**' कहकर विवाद हो गया। युद्ध की विभीषिका से त्रस्त ब्रह्माजी ने तारा से मंत्रणा कर एकान्त में जान लिया कि पुत्र चन्द्र का ही है। चन्द्र को पुत्र मिला। गुरु को तारा पत्नी मिली। दोनो सन्तुष्ट हो गये। चन्द्र ने बालक का नाम बुध रखा।

सूतजी कहते हैं, 'महर्षियो ! मनुपुत्र श्राद्धदेव के पुत्र सुद्युम्न (जिनकी कथा माहात्म्य में सुनी है) शिकार खेलते इलावृत में जाकर स्त्री बन गये। ये वनप्रान्त शिवजी द्वारा पुरुष-प्रवेश-प्रतिषिद्ध शिव-शिवा का रमणक्षेत्र था। ऋषियों के व्यवधान से विचलित लज्जोन्मुखी प्रिया की प्रीति के लिए शिव ने इसे पुरुषहीन बना दिया। जो भी पुरुष आता वही स्त्री हो जाता था।

**वनं च प्रविशेत् एतत् स वै योषिद् भविष्यति**

(देवीभागवत ०१/१२/२२)

इनका नाम इला हो गया। ये बुध के सम्पर्क में आ गयीं तथा उत्तम- गुणयुक्त पुरूरवा नामक पुत्र हुआ। वसिष्ठ ने कृपा करके शिवप्रसाद से पुनः पुरुष बना लिया, पर एक मास स्त्री तथा एक मास पुरुष।

**मासं पुमांस्तु भविता मासं स्त्री भूपति किल**

(देवीभागवत ०१.१२.३३)

**प्रजास्तस्मिन्समुद्विग्ना नाभ्यनन्दन्मही**

(देवीभागवत ०१.१२.३५)

अतः प्रजा में असन्तोष का भाव जगने पर पुरूरवा को प्रतिष्ठानपुर (झूसी) का राज्य दे, वे वन में जाकर नारद-कृपा से प्राप्त नवाक्षर मन्त्र का जप करने लगे। माता ने साक्षात् दर्शन दिया। भावविभोर राजा माँ के चरणों में दण्डवत प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगा, 'माँ! तीनों लोकों में कोई आपका स्वरूप-शक्ति-सामर्थ्य नहीं जान सकता, फिर मेरी क्या क्षमता? आपके संग से विष्णु का गौरव बढता है। माँ! मैं कुछ नहीं चाहता। बस! आपकी कृपा मुझपर बनी रहे तथा आपके चरणों में मेरी अविचल भक्ति बनी रहे।'

**वाञ्छामि भक्तिमचलां त्वयि मातरं ते**

(देवीभागवत ०१.१२.५१)

सुद्युम्न ने जगज्जननी की कृपा से मुनि दुर्लभ सायुज्य मुक्ति पायी। हे मुनियों! राजा पुरूरवा धर्मपूर्वक प्रजापालन करने लगे। उनके सौन्दर्य पर मुग्ध उर्वशी ने - १. मेरे दो भेड़ के बच्चे धरोहर हैं, इनकी रक्षा करें; २. मैं घी ही खाऊँगी, कुछ और नहीं; ३. समागम के अतिरिक्त आपको कभी नंगा न देखूँ - इन तीन शर्तों के साथ उनका वरण किया। इनकी परस्पर अपूर्व प्रीति के कारण राज्य संचालन मन्त्रियों के शिर आ गया। उधर स्वर्ग में बिना उर्वशी की इन्द्रसभा सूनी-सूनी थी।

एक दिन रात्रि के समय ये दोनों वर्षाकाल में घुमडते बादलों के द्वारा आच्छादित गगन-मण्डल से उद्दीपन भाव के कारण क्रीडासक्त थे। तभी इन्द्र ने भेड़ के बच्चे चुरा लिये। उर्वशी के चीखने पर पुरूरवा नग्न ही तलवार ले बाहर दौड़े, तो बिजली चमकी और उर्वशी ने इन्हें नग्न देख लिया। शर्तभग्न हुई, उर्वशी इन्हें बिलखता छोड स्वर्ग चली गयी। कामासक्त विक्षिप्त-सा राजा राज्य त्याग

देश–देश भटकता हुआ कुरुक्षेत्र आया। वहाँ उर्वशी को देख अनुनय करने लगा, 'देवि ! मेरे प्राणों की रक्षा आप ही कर सकती हैं।' उर्वशी ने कहा, 'राजन् ! तुम निरे मूर्ख हो। अपने ज्ञान का स्मरण करो। देखो ! चोरों का, स्त्रियों का, भेडियों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। पुरूरवा की दुर्दशा देखकर देवीभक्तों को भी स्त्री संग से दूर रहना ही श्रेयस्कर है।'

सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियो ! व्यासजी ने पूर्वप्रसंग स्मरण कर घृताची का चिन्तन त्याग दिया। तदपि कामभाव के कारण तो तेज स्खलित हो ही गया था। वह घृताची शुकी पक्षी बनकर उड़ गयी। अरणि पर पतित वीर्य का पुत्र बन गया, किन्तु ध्यानमग्न ऋषि बेखबर हैं। शिवप्रसाद मानकर अयोनिज पुत्र का संस्कार कर व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। आकाश से पुष्पवर्षा तो हुई ही, साथ ही दण्ड, कमण्डलु तथा मृगचर्म भी आकाश से इनके लिए गिरे। सद्यः उपनयन किया, सरहस्य वेद पढ़ाये। अंग, शास्त्र, पुराणेतिहास, स्मृतियाँ पढ़ाई। शुकी के कारण ही इनका नाम शुक हुआ। इन्होंने बृहस्पति को उपाध्याय बनाया तथा गुरुदक्षिणा दे, वापस पिता के पास आ गये। पिता ने कहा, 'बेटा ! श्रेष्ठाश्रम–ऋणमुक्तिसाधक–गृहस्थधर्म का पालन कर उत्तम पुण्य कमाओ।' किन्तु शुकदेवजी ने कहा, 'आप मुझे मुक्ति का उपदेश करें बन्धन का नहीं, आप मुझे बलात् गृहस्थ कारागार में न बाँधें। मुझपर कृपा करके तत्वोपदेश करें। मैंने विद्यागुरु बृहस्पति जैसे विद्वान को भी इस गृहस्थकूप में डूबते देखा है। आप भी मायामोह ग्रस्त हैं। कौन है जो उस काल की कोठरी से बेदाग निकला हो? पिताजी ! रोगी वैद्य किसे ठीक कर सकता है? अविद्याग्रस्त प्राणी किसकी अविद्या काट सकता है? डूबने वाला किसे बचा सकता है? पुत्र, दार, गृहासक्त को पण्डित कहा जाता हैं – आश्चर्य है। वेदादि पढ़कर भी प्राणी पतंगा के समान अग्नि शिखा की ओर भागता है – आश्चर्य है।'

व्यासजी बोले, 'बेटा ! मन होता है बन्धन का कारण, घर नहीं। मन से मुक्ति तथा मन से ही बंधन है। गृहस्थधर्म सभी प्राणियों का आश्रय है, अतः श्रेष्ठ है। श्राद्ध, तर्पण, बलिवैश्यदेव, अतिथि–सेवा – ये धर्मवर्धक हैं।'

**गृहाश्रमात्परोधर्मो न दृष्टो न च वै श्रुतः**

(देवीभागवत ०१.१४.५९)

'फिर नियम भी है कि आश्रम से आश्रम की यात्रा करें –'

**आश्रमाद्राश्रमं गच्छेत् इति धर्म विदो विदुः**

(देवीभागवत ०१.१४.६१)

'ब्रह्मचर्य से गृहस्थ, गृहस्थ से वानप्रस्थ, वानप्रस्थ से संन्यासाश्रम में जायें। इन्द्रियाँ दुरन्त होती है। विश्वामित्र भी मेनका पर मुग्ध हो गये थे, शकुन्तला का जन्म हुआ। पूज्यपिता पराशर आभीर कन्या पर मुग्ध हुए, तब मेरा जन्म हुआ। ब्रह्मा तक भी स्वकन्या सरस्वती पर मुग्ध हो गये, शिव ने रोका उन्हें। (अब व्यासजी कहते हैं–) पुत्र ! मेरी बात मानो, विवाह कर लो।'

शुकदेवजी ने व्यासजी से कह दिया कि 'मैं गृहस्थ में नहीं जा सकता, क्योंकि इस जंजाल में फँसकर शिव, विष्णु, इन्द्र तक भी सुखी नहीं हैं। लालची धनवान् की दुर्दशा देखी जाती है, वह सुख से सो भी नही पाता। जहाँ जन्मदुःख, जरादुःख, मरणदुःख, गर्भवासदुःख, तृष्णाजन्यदुःख, याचनादुःख तो मरण से भी भयंकर हैं।'

**याञ्चायां परमं दुःखं मरणादपि मानद**

(देवीभागवत ०१.१५.११)

फिर ब्राह्मण–जैसी दुर्दशा तो किसी की नहीं, क्योंकि इसकी जीविका तो दान–दक्षिणा पर ही होती है, और पराशा में जीना तो – '**प्रतिग्रहधना विप्राः**' – प्रतिदिन–प्रतिक्षण मरण ही है।

**पराशा परमं दुःखं मरणं च दिने दिने**

(देवीभागवत ०१.१५.१२)

आप तो त्रिविध (सञ्चित, प्रारब्ध, क्रियमाण) कर्म क्षय का उपाय बताइए। मैं कथमपि इस सांसारिक पचड़े में नहीं पड़

सकता।' शुकदेव का निर्णय सुनते ही व्यासजी रोने लगे।

ब्रह्मसूत्रनिर्माता-वेदपुराणतत्वज्ञ-महापण्डित-व्यासजी पर भी मायामोह का प्रभाव देखकर शुकदेवजी बोले, 'हे पाराशरनन्दन! चलिए माना इस जन्म में हम पिता-पुत्र हैं, इससे पूर्व क्या थे? इससे आगे क्या रहेंगे? भूख भोजन से मिटती है, पुत्र से नहीं। प्यास पानी से मिटती है, पुत्र से नहीं। अजीगर्त ने धन लेकर अपने पुत्र शुनः शेप को बेच दिया था, तो पुत्र से बढ़कर तो धन हुआ। पिताजी! मनुष्यत्व मिलना, उतने पर भी ब्राह्मणत्व मिलना, उतने पर भी मुमुक्षुत्व होना, उतने पर भी कर्मभूमि भारतवर्ष में जन्म होना – ये सब दुर्लभातिदुर्लभ हैं, आप गर्भवास से मुक्ति का उपाय बताइए।' व्यासजी ने कहा, 'बेटा! भागवत पढ़ो।'

एकबार प्रलयकाल में वटपत्रासीन बालमुकुन्द के मानसिक संशय को भगवती ने मिटाया कहा, 'मेरे अतिरिक्त ब्रह्माण्ड में कुछ और नहीं है।

**सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्**

(देवीभागवत ०१.१५.५२)

इस प्रकार बालमुकुन्द ने विभिन्न सखियों से आवृत परमैश्वर्यशालिनी महामाया का दर्शन किया था। भगवान विष्णु ने सात्विकीशक्ति-आद्याशक्ति-भुवनेश्वरी के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। देवी ने कहा, 'माधव! वह श्रुतमन्त्र श्रीमद्देवीभागवत का संक्षिप्तरूप था। इसे सदा हृदय में रखना।' व्यासजी कहते हैं, 'हे शुक! नारायण ने वह भागवत ब्रह्मा को सुनाई। ब्रह्मा ने नारद को सुनाई, नारद ने मुझे सुनाया। उसी भागवत को मैने विस्तृतरूप में रचा है। इसे पढ़ने से मुक्ति सहजतया प्राप्त हो जाती है।' सूतजी कहते हैं, 'तभी मैंने व शुकदेवजी ने वहाँ भागवताध्ययन किया। किन्तु शुकदेवजी को शान्ति नहीं मिली।

## शुकदेव का जनक के समीप गमन, शुकदेव और द्वारपाल का संवाद, शुकदेव को जनकोपदेश, आश्रम-विधि श्रेष्ठ, शुकदेव का जनक की विदेहता पर कटाक्ष, पुत्रशोक-संतप्त व्यासजी का माँ की आज्ञा से कुरुवंश को पुत्र द्वारा जीवन देना

तब व्यासजी ने उन्हें विदेहराज जनक के पास भेजते हुए कहा, 'वे विरक्त भी हैं, राजा भी।' शुकदेव को संशय हुआ कि ये तो ठीक वैसा ही है, जैसे-बन्ध्यात्व व मातृत्व। वह राजा रहकर, अच्छे-बुरे, पुण्यात्मा-पापात्मा में भेद नहीं रखते, तो कैसे 'राजा' यदि रखते हैं तो कैसे 'जीवनमुक्त'। उत्सुकतावश शुकदेवजी मिथिला की ओर चल दिये। शुकदेवजी कहते हैं, 'जैसे कोई कहे – **'मम मुखे जिह्वा नास्ति'** (मेरे मुख में जिह्वा नहीं है)। जब जिह्वा नहीं, तो बोलना कैसा'। जैसे मेरी माँ बन्ध्या है। माता है, तो बन्ध्या कैसे? बन्ध्या है तो तुम कैसे? ठीक इसी प्रकार दण्डनीति नहीं है, तो राजधर्म कैसा? दण्ड विधान है, तो मोक्षोपयोगी मार्ग कैसा?'

व्यासजी ने आगन्तव्यमेव (पुनः आने का) वचन लेकर उन्हें भेज दिया। लगभग तीन वर्ष में शुकदेवजी भूमि, भवन, तपस्वी, त्यागी, व्यापारियों को देखते हुए मिथिला (बिहार) पहुँचे। धन-धान्य-समृद्ध राज्य में प्रवेश किया, किन्तु द्वारपाल ने राजद्वार में प्रवेश से रोककर पूछा, 'आप कौन है? तेजस्वी लगते हैं? पर महाराज की आज्ञा बिना प्रवेश निषेध है।'

शुकदेवजी शान्तचित्त प्रसन्न हैं, मौन हैं। अन्ततः बोले, 'अरे द्वारपाल! इतना परिश्रम करके मैं आया। यहाँ तो प्रवेश ही दुर्लभ है। अतः मैं जान गया कि यहाँ भी ठगी है। अस्तु! सत्य है, निराशा में अपार सुख है।

**निराशस्य सुखं नित्यं यदि मोहे न मज्जति**

(देवीभागवत ०१.१७.२६)

'दो-दो पर्वत (मेरु और हिमगिरि) लाँघे, तो क्या मिला? सत्य है – प्रारब्ध भोगना ही पड़ता है। जनक का नाम 'विदेह' है, सुनकर मिलने की आशा से आया था। अस्तु!'

द्वारपाल ने तुरन्त द्वार खोल दिया, 'महाराज! आपके लिए कोई रोक-टोक नहीं, आप स्वेच्छया जा सकते हैं।' द्वारपाल ने

**********************************************************************************

पूछा, 'महाराज! सुख क्या है? दुःख क्या है? कल्याणेच्छु का कर्त्तव्य क्या है? शत्रु-मित्र कौन हैं?' उत्तम प्रश्नों को सुनकर प्रसन्नमना शुकदेवजी बोले, 'हे द्वारपाल! द्विविधासम्पन्न लोक में सदा दो प्रकार के लोग होते हैं – १. रागी २. विरागी। इनके मन दो प्रकार के होते हैं। विरागी – ज्ञात, अज्ञात व मध्यम – भेद से तीन प्रकार के होते हैं; रागी – मूर्ख व चतुर – भेद से दो प्रकार के होते हैं। चतुरता दो प्रकार की होती हैं – शास्त्रज व बुद्धिज। बुद्धि भी दो प्रकार की होती हैं – उचित व अनुचित। हे द्वारपाल! जिसमें राग होगा, वह रागी प्रतिक्षण निरन्तर सुख-दुःख भोगता है। अनुकूलता में सुख, प्रतिकूलता में दुःख (मनोनुकूल वस्तु, व्यक्ति, स्थान, मौसम, स्थिति, व्यवहार, भोजन, भोग, वैभव और स्वास्थ्य ये सांसारिक दृष्टि से सुखमूलक होती है, मन के विपरीत ये ही दुःखमूलक हो जाती है।) अतः शाश्वत सुखेच्छु को विरागी होना ही ठीक है। संसार की एक ही वस्तु कभी सुख, कभी दुःख देती है। इन सुखों के पाने में जो बाधक है, वह शत्रु। जो साधक है, वह मित्र। किन्तु इस झंझट में मूर्ख फँसता है, चतुर नहीं। विरागी तो आत्मचिन्तन करता है।

शुकदेवजी ने मिथिला के बाजारों का लाभ-हानिजनक व्यापार देखा, हर्ष-विषाद देखा; वे अन्तःपुर की ओर गये। वहाँ राजमन्त्री ने वरांगनाओं के मध्य उनका स्वागत सत्कार किया तथा चला गया। निर्विकारी शुकदेव ने सुस्वादु भोजन किया, मातृभाव से सब स्त्रियों के प्रति शान्त ही रहे तथा समय पर कुशपाणि संध्या ध्यान करते रहे, आत्माराम, आप्तकाम, वीतराग-सन्त शुकदेव संध्या वन्दन कुशा लेकर करते हैं।

**शुद्धात्मा मातृ भाव मकल्पयत्**

×××

**स कृत्वा पादशौचं च कुशपाणिरतन्द्रितः ।**
**उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां ध्यान्मेवान्वपद्यत ।।**

(देवीभागवत ०१.१७.६१ व ६४)

आजकल के निराकारोपासक या तथाकथित कीर्तन-कथावाचक या जागरण-कुशल, सन्त, महात्मा सन्ध्या कुशादि को व्यर्थ बताकर मनशुद्धि की बात करते है– झूठे हैं, वो नाटक है उनका। कहते हैं– मन से कर लिया है, दिखावा क्या करना? हम कहते हैं। एक बार मन से भोजन, मन से शयन, मन से स्नान, मन से शौचादि क्रियाएँ सम्पन्न करके दिखायें, तब तो ठीक है। स्टेज सजा न हो, पुष्पमाला न हो, आसन न हो तो सर्व विरक्ति उड़ जाती है।

राजा जनक ने शतानन्दजी सहित गुरुपुत्र शुकदेव का भव्य स्वागत किया, पाद्यादि देकर गौ प्रदान की। जनक के पूछने पर शुकदेवजी ने आने का कारण बताया कि 'पिताजी गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ बताते हैं, जिसे मैं नहीं मानता। अतः उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है। कहा है कि विदेह राजा होने पर भी जीवनमुक्त हैं।'

राजा जनक ने कहा, 'हे शुकदेवजी! मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रथमाश्रम में गुरु-शुश्रूषापूर्वक वेदशास्त्र ज्ञान प्राप्त कर, द्वितीयाश्रम में न्यायोचित धनोपार्जन करें, तीर्थ सेवन करें, सन्त अतिथि सेवा करें। तदनन्तर पुत्र पौत्रादि को भार सौंपकर वानप्रस्थ हो जाये। तप द्वारा कामादि को नष्ट कर, अन्त में अविकल अविचल भाव से संन्यासी हो जाये – 'यहीं है मार्ग-मुक्ति'।

**आश्रमादाश्रमं व्रजेत् इति शिष्टानुशासनम्**

(देवीभागवत ०१.१८.२१)

'शुकदेवजी! इन्द्रियाँ बड़ी बलवान होती हैं; तृष्णा सहज नहीं मिटती। इन्हें धीरे-धीरे शान्त करने के लिए ही आश्रम का क्रम बना है। देखो शुक! ऊपर (पर्वत पर) सोया हुआ व्यक्ति यदि गिरेगा, तो क्या बचेगा? जबकि नीचे (भूमि पर) सोने वाला व्यक्ति गिरकर कहाँ जायेगा? ऐसे ही गृहस्थ में विचलित प्राणी की विशेष हानि नहीं, जबकि संन्यस्त होकर गिरने पर गति नहीं है।

**ऊर्ध्वं सुप्तः पतत्येव न शयानः पतत्यधः । परिव्रज्य परिभ्रष्टो न मार्गं लभते पुनः ।।**

(देवीभागवत ०१.१८.२७)

'देखो शुकदेव! चींटी उन्नत पेड़ पर चढ़कर फल खाती है, नहीं थकती। किन्तु गगन में तीव्र उड़ान भरने वाले पक्षी थककर

*******************************************************************************

वापस पुनः आ जाते हैं। मुझे देखो ! मैं स्वयं राज्य करता हुआ भी जीवनमुक्त-सा हूँ; न रोग, न शोक, न मोह। आप भी मेरी तरह जी सकते हो। अपने मन से कर्तापन का भाव निकाल दो, सभी क्लेशों से मुक्त होकर सुखपूर्वक जीओ। वैसे भी दृश्य-पदार्थ अदृश्य चेतन-तत्व को नहीं बाँध सकते। मन के कारण ही बन्धन व मोक्ष हैं। इसी के निर्मल होने से सकल प्रपञ्च निर्मल, मलिन होने से मलिन जैसा है। मन की निर्मलता ही श्रेष्ठ है। तीर्थ स्नान भी तभी सफल है जब मन स्नात हो गया हो।'

**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः**

(देवीभागवत ०१.१८.३९, विष्णुपुराण ६.७.२८)

'हे शुकदेव ! दु:ख के बिना सुख का महत्व, धूप बिना छाया का महत्व, अविद्या बिना विद्या का महत्व समझ में नहीं आता है। अत: पहले संसार को संसार में रहकर देख लो, तब ही ब्रह्मज्ञान स्थायी व आनन्दप्रद होगा।'

शुकदेवजी ने वैदिक-यज्ञ-परम्परा में जीवहिंसा तथा श्रोत्रामणि-यज्ञ में प्रत्यक्ष मदिरापान विधान को निन्द्य मानकर उसका खण्डन किया तो जनक ने कहा, 'हे शुकदेवजी ! रागपूर्वक अभिमानपूर्वक की गयी हिंसा पाप है। हिंसा है, किन्तु विरागी पुरुष द्वारा निरभिमानपूर्वक वेदाज्ञा प्रतिपालनार्थ हिंसा भी अहिंसा ही है। शशविन्दु राजा के महान् यज्ञों में पशु-हिंसा से एकत्र चमड़े पर वर्षा का जल गिरा। फलत: वह चर्मण्वती (चम्बल नदी) बना।' यह भी धर्ममूलक ही कर्म था। यहीं कारण है कि चम्बल के किनारे सहज क्रूरता पायी जाती है।

शुकदेवजी ने कहा, 'राजन्! मायामय संसार में रहकर तीन एषणाओं (पुत्र-वित्त-यश) से बिना मुक्त हुए कोई कैसे जीवनमुक्त हो सकता है? दीपक की बात करने से अँधेरा नहीं मिटता, वह तो दीपक जलाने से ही मिटेगा।'

**यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया**

(देवीभागवत ०१.१९.०३)

'जिसे मीठे-खट्टे का बोध है, जिसे अच्छे-बुरे का बोध है, वह जीवनमुक्त कैसे हो सकता है? सर्प में तथा पुष्पमाला में, मिट्टी तथा स्वर्ण में, स्वप्न-सुषुप्ति-जाग्रत में, जब समान भाव ही नहीं, तब क्या जीवनमुक्तता? इस नकली जीवन मुक्तता की अपेक्षा तो वन में भ्रमण ही ठीक है। हे राजन्! परम्परा से तुम्हारा नाम विदेह है, आपमें (राजा में) ये कैसे सम्भव है? जैसे अन्धे को दिवाकर, निर्धन को लक्ष्मी निधि, चाण्डाल को शीलनिधि, मूर्ख को विद्याधर, कुरूप को मनोहर आदि नाम से पुकारते हैं, वैसे ही आप भी विदेहराज हैं। राजा निमि ने अपने गुरु वसिष्ठ के क्रुद्ध होकर शाप देने पर उन्हें शाप दिया था। तो क्या तुम्हारे पूर्वज विदेह थे? ये कैसी जीवनमुक्तता और ये कैसी विदेहता?'

जनक ने अकाट्य तर्क दिया, 'हे महात्मन्! आप ठीक कहते हैं, किन्तु एक बात बताओ। वन जाकर तुम पशु-पक्षियों के साथ तो रहोगे ही। पिता को त्याग दिया ... चलो, मान लिया। फिर भी तो तुम्हें संगदोष लगेगा ही। अत: कैसी निसंगता?'

**महाभूतानि सर्वत्र निःसंगः क्व भविष्यति**

(देवीभागवत ०१.१९.२०)

'भोजनादि की चिन्ता रहेगी, तो निश्चिन्तता कहाँ? ठीक वैसी ही चिन्ता मुझे राज्य की रहती है, जैसी तुमको भोजन-कौपीन-दण्ड-कमण्डलु की रहेगी। शुकदेव ! तुम्हें भ्रम है, अत: भटकते हो। मुझे भ्रम नहीं है, मैं बद्ध नहीं हूँ; अत: सुख से खाता, पीता, सोता और राज्य करता हूँ। जबकि आप बन्धन-भय से दु:खी घूमते हैं।' सारे प्रपञ्च को मैं अपना नहीं मानता, अपने लिए नहीं मानता; अत: कोई क्लेश हर्ष नहीं होता।'

सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियों ! चुपचाप बिना कुछ बोले शुकदेव पिताश्री के समीप आ गये। कालान्तर में पितरों की कन्या 'पीवरी' से विवाह कर लिया। इनके चार पुत्र हुए – कृष्ण, गौरप्रभु, भूरि और देवश्रुत। कीर्ति नाम की कन्या भी हुई; जो विभ्राज पुत्र अणुह की पत्नी बनी तथा ब्रह्मदत्त को उत्पन्न किया, जिन्हें नारद से ब्रह्मज्ञानोपदेश प्राप्त हुआ। शुकदेवजी ने अन्तत: कैलाश जाकर तप

****************************************************************************************

किया तथा उड़ गये। व्यासजी **'हे पुत्र!'** कहकर रोये, तो उनकी आत्मा ने आकाशवाणी रूप से कहा, 'व्यासजी! सबकी आत्मा जब एक है तब क्या विलाप?' व्यासजी को शिवजी ने आकर सान्त्वना दी तथा छाया-शुक (शुक की छाया) प्रदान कर दी।

पुत्र-शोक संतप्त व्यासजी को माँ सत्यवती का स्मरण आया, तो वे गंगा किनारे चले आये। किन्तु सत्यवती का विवाह तो शान्तनु से हो चुका था, अतः वे वहीं (अपनी ननिहाल में) तपस्या करने लगे। उधर सत्यवती के दो पुत्र - चित्रांगद और विचित्रवीर्य हुए। गंगापुत्र भीष्म भी शान्तनु के पुत्र थे। भीष्म अखण्ड ब्रह्मचारी अतुलित योद्धा थे। शान्तनु के बाद चित्रांगद राजा बने क्योंकि ज्येष्ठपुत्र भीष्म ने विवाह न करने की व राजा न बनने की प्रतिज्ञा कर ली थी। कुरुक्षेत्र के मैदान में चित्रांगद (गन्धर्व) तथा चित्रांगद (राजा) में तीन वर्ष तक युद्ध चला, अन्ततः राजा मारा गया। विचित्रवीर्य राजा बने। उनके विवाह के लिए काशीनरेश की तीन कन्याओं (अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका) को भीष्म स्वयंवर से राजाओं को हराकर उठा लाये।

अम्बा ने कहा, 'हे देवव्रत! मैं शाल्व को अपना मन दे चुकी हूँ। फलतः भीष्म ने ससम्मान अम्बा को शाल्व के यहाँ भेज दिया, किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। शतधा अनुनय करने पर भी न तो अम्बा को शाल्व ने अपनाया और न ही भीष्म ने। अतः वह निराश हो, प्रतीकार की भावना से कि 'इस भीष्म ने मेरा जीवन बर्बाद किया है मैं इससे अपने अपमान का बदला लूँगी' - सोचती हुई वन में तपस्या करने चली गयी। शेष दोनों का विवाह विचित्रवीर्य से हो गया। भोगाधिक्य के कारण उन्हें राजयक्ष्मा हुआ और मर गये। सत्यवती ने भीष्म से कहा, 'पुत्र! ययातिवंश की रक्षा करो। राज्य संभालो तथा भ्रातृजायाओं की रक्षा करो।' भीष्म ने कहा, 'माँ! मैं अपनी प्रतिज्ञा भूला नहीं हूँ।'

**नाहं राज्यं करिष्यामि न चाहं दारसंग्रहम्**

(देवीभागवत ०१.२०.५७)

सत्यवती को चिन्तित देख भीष्म बोले, 'माँ! किसी कुलीन श्रेष्ठ ब्राह्मण को बुलाकर नियोग परम्परा से विचित्रवीर्य का क्षेत्रज पुत्र अर्थात पौत्र पायेंगें उसको राजा बनायेंगें - ये वेदसम्मत विधान है।'

**कुलीनं द्विजमाहूय वध्वा सह नियोजय ।**
**नात्र दोषोऽस्ति वेदेऽपि कुल रक्षाविधौ किल ।।**

(देवीभागवत ०१.२०.६०)

सत्यवती ने व्यास का स्मरण किया और वे आ गये।

**स्मृतमात्रस्ततो व्यास आजगाम स तापसः**

(देवीभागवत ०१.२०.६३)

मात्राज्ञा को आप्तोपदेश मानकर व्यासजी की योगविधि से अम्बिका से लोचनान्ध धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डुरोगग्रस्त पाण्डु व दासी से धर्मावतार विदुर हुए।

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं प्रथमः स्कन्धः ।।*

*************************************************************************************

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। द्वितीयः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### मत्स्यगन्धा-जन्म, पराशर द्वारा सत्यवती से व्यासोत्पत्ति, गंगा व महाभिष का ब्रह्मसभा में मिलन, अष्टवसुओं को वसिष्ठ का शाप, शान्तनु तथा गंगा का मिलन व सशर्त विवाह, भीष्मोत्पत्ति, गंगा ने देवव्रत शान्तनु को सौंपा, शान्तनु आभीर-कन्या में आसक्त, शान्तनु-सत्यवती विवाह, भीष्म की प्रतिज्ञा

ऋषियों ने सूतजी से कहा, 'हे सूतजी! सत्यवती आख्यान् को विस्तार से सुनाइये। सत्यवती का जन्म रहस्य, व्यासोत्पत्ति आदि प्रसंग सुनने की हमारी इच्छा है।' सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियो! चेदिवंशीय उपरिचर नामक एक धर्मात्मा राजा थे (**'उपरि अर्थात आकाशे एव यानेन चरति इति'**)। इन्द्रकृपा से उनको स्फटिक निर्मित विमान प्राप्त था। वे पृथ्वी पर नहीं आते थे। उनकी पत्नी गिरिका से पाँच पुत्र हुए। एक बार ऋतुस्नाता गिरिका उपरिचर वसु के समीप गयी। तबतक पितरों की आज्ञा से उपरिचर मृग लेने वन चले गये। वहाँ उनका भार्या-स्मरणवश तेज स्खलित हो गया, जिसे उन्होंने वटपत्र में (दोने) में रखा अभिमन्त्रित कर बाज पक्षी के द्वारा अपनी पत्नी के पास भेजा। अन्य बाज ने मांसखण्ड समझकर उस बाज से द्वन्द्व किया। फलतः वह अभिमन्त्रित तेज यमुना में गिरा, उसे मछली ने निगल लिया। कालान्तर में मछली जाल में फँसी। उसे काटने पर सुन्दर बच्चों का जोड़ा निकला, जिसे मल्लाह ने राजा को दे दिया। राजा ने पुत्र (मत्स्य नामक) को रख लिया और कालिका (मत्स्यगन्धा) मत्स्योदरी कन्या मल्लाह को दे दी। अद्रिका* बच्चों को जन्म देते ही शापमुक्त हो गयी। इधर मत्स्योदरी युवती होकर नाव चलाने लगी।

एक दिन पराशर मुनि नदी पार कराने के लिए आये। भोजनरत मल्लाह ने अपनी पुत्री से कहा, 'बेटी! इन्हें पार कर दो।' मत्स्योदरी उन्हें पार कराने लगी, तभी ऋषि का मन चंचल हो उठा। मत्स्यगन्धा ने कहा, 'हे महात्मन्! अपने कुल-वंश-जाति का

---

* यमुनातट पर संध्या करते ब्राह्मण का पैर परिहास में एक अद्रिका नाम की अप्सरा ने पकड़ लिया था। उस ब्राह्मण ने क्रोधवश अद्रिका अप्सरा को मछली होने का शाप दिया। वही अद्रिका ही शफरी मछली बनी तथा उसने ही तेज धारण कर लिया।

विचार करो। ये कामान्ध होकर क्या करना चाहते हो? मनुष्यत्व में भी ब्राह्मणत्व, उसमें भी ऋषित्व – फिर भी ये दशा? मैं अधम जाति की कन्या हूँ। आप सर्वश्रेष्ठ कुल के ऋषि ...।' 'ठहरो! एक बार पार तो चलें।' पार जाकर ऋषि ने उसे मत्स्यगंधा से सुगन्धा कर दिया। अब कन्या ने कहा, 'महाराज! ये सबके सामने? दिन में? मैथुन तो पशुप्रवृत्ति है, रात होने दो।' ऋषि ने पुण्यबल से नीहार (कुहरा) बना दिया। अब कन्या ने कहा, 'ऋषे! आप तो चले जायेंगे मेरा क्या होगा? क्या मुख दिखाऊँगी पिता व समाज को?' ऋषि ने कहा, '**कन्यैवत्वं वै भविष्यसि**' – 'तुम्हारा कन्यात्व अक्षुण्ण रहेगा। देवि! तुम अपूर्व सौन्दर्य, माधुर्य और सौगन्ध्य से सम्पन्न हो जाओगी। तुम्हारा पुत्र विष्णु-अंश से युक्त होगा।' ऋषि ने पुनः कहा, 'देवि! मेरे प्रति संशय नहीं करना क्योंकि इससे पूर्व कभी ऐसा अधैर्य, मोह और काम मेरे जीवन में नहीं आया। कोई निश्चित ही अद्‌भुत घटना होगी।'

**केनचित्कारणेनाहं जातः कामातुरस्त्वयि**

×××

**तत्किञ्चित्कारणं विद्धि दैवं हि दुरतिक्रमम्**

(देवीभागवत ०२.०२.३१ व ३३)

पराशर उद्भट ज्योतिषी व त्रिकालज्ञ मुनि हैं। इस अपूर्व दिव्यमुहूर्त में 'गर्भाधानजन्य बालक विश्व विख्यात् होगा' – ऐसा जानकर ही उन्होंने समागम किया, व्यर्थ वासनापूर्ति के लिए नहीं। पराशरजी कृत्य सम्पन्न करके चले गये। ये प्रसंग सावधान करता है – जब उतने तपोनिष्ठ सन्त भी एकान्त में स्त्री के संग से विचलित हो गये, तब आज के पाँवर-जीव की क्या कथा? ऋषि के चरित्र पर शंका क्यों हैं, जो रात-दिन काम के दास बनकर जीते हैं? ऋषि के जीवन की तो ये मात्र एक ही घटना है। और उसका फल है– '**समाजोद्धारक ऋषि व्यास जन्म**'। जबकि शंका करने वाले, मन में झाँकें। यमुनाद्वीप में गर्भवती कन्या से व्यास उत्पन्न हो गये तथा बोले, 'माँ! मेरी चिन्ता न करो, मैं तप के लिए जाता हूँ। संकट में याद करोगी, तो आ जाऊँगा।' द्वीप में पैदा होने से ही व्यासजी '**द्वैपायन**' भी कहलाए (**द्वयोः दिशोः अपः इति द्विपः-द्वीपः, द्वीपे एव अयनं जन्मस्थानं यस्य इति द्वैपायनः**)। व्यासजी ने भारी तप करके एक वेद के विभाग किये, पुराण-संहिताएँ बनाईं। सुमन्तु, जैमिनी, पैल, वैशम्पायन, देवल, शुकादि शिष्यों को पढ़ायीं। सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियों! महापुरुषों के चरित्र में दोष नहीं देखना चाहिए क्योंकि उनकी प्रत्येक क्रिया लोक-मंगलार्थ ही होती हैं।'

**महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या मुनेरिति**

(देवीभागवत ०२.०२.४८)

ऋषियों ने पूछा, 'हे सूतजी! आभीरकन्या का विवाह महाराज शान्तनु से कैसे हुआ? भीष्म माता कौन थी? भीष्म के रहते अन्य पुत्र राजा क्यों बने? व्यासजी का शास्त्रधर्म व लोकविरुद्ध आचरण कहाँ तक न्याय है?'

सूतजी ने कहा, 'हे ऋषियो! इक्ष्वाकुवंशीय महाभिष नामक राजा (जो पुण्य के कारण स्वर्ग में रहते थे) एक बार ब्रह्मलोक गये। वहाँ वायु व्याज से अनावृत्तांगा गंगा को देखने के कारण, ब्रह्मा ने गंगा व महाभिष के आचरण से रुष्ट हो, मनुष्य होने का शाप दिया। महाभिष पुरवंशीय राजा प्रतीप के शान्तनु नामक पुत्र बने। इसी अन्तराल में अष्टवसुओं ने महात्मा वसिष्ठ की गाय चुरा ली, जिससे वसिष्ठ ने उनको मनुष्य होने का शाप दिया। प्रार्थना करने पर वसिष्ठ ने कहा, '**द्यौ**' नामक वसु अनेक वर्ष तक मनुष्य रहेगा, क्योंकि इसने गाय चुराई; शेष शीघ्र मुक्त हो जाएँगे। वसुओं ने गंगा से माता बनने की प्रार्थना की कि आप शान्तनु को पति रूप में वरण करें। वसुओं ने आगे कहते हुए प्रार्थना की, 'माँ! अष्टवसुओं में से सात को जल प्रवाह व्याज से मुक्त कर दीजिएगा।' महाराज प्रतीप तपस्यारत थे। वहीं गंगाजी आकर उनके दाहिने जाँघ पर बैठ गयीं। प्रतीप ने कहा, 'ये स्थान तो पुत्री का है। अतः तुम मेरी पुत्रवधु बनो।' प्रतीप को उत्तम और गुणसम्पन्न पुत्र प्राप्त हुआ। युवा होने पर प्रतीप ने उसे युवराज बनाया तथा स्वयं पूर्व वृत्तान्त पुत्रवधु को सुनाकर वन में गये। वही इनका जीवन पूर्ण हो गया।

शान्तनु महाराज मृग के लिए वन में गये। वहाँ एक अनिन्द्य सुन्दरी को देख, पिता की आज्ञा को स्मरण कर, उस युवती के

***************************************************************************************

प्रति आकृष्ट हो गये। वे न पहचान सके, किन्तु गंगा ने उन्हें पहचान लिया तथा प्रतिज्ञापूर्वक विवाह करना स्वीकार किया। गंगा की प्रतिज्ञा – 'मैं चाहे जो करूँ आप रोकेंगे नहीं, तिरस्कारपूर्वक कठोर नहीं बोलेगे; वचनभंग होने पर मैं चली जाऊँगी।' गंगा ने वसुओं की प्रार्थना का स्मरण कर क्रमशः सात पुत्रों को क्रूरतापूर्वक जल में फेंक दिया, राजा वचनबद्ध हो (हृदय पर पत्थर रखकर) देखता रहा। किन्तु अष्टम पुत्र (ये बालकरूप गौहर्ता द्यौ थे) होते ही जैसे ही गंगा उसे लेकर चली, वे पागल से उनके पीछे पीछे चल दिये। गंगा के पैरों पर गिरकर ये पुत्र माँग लिया, 'देवि ! मेरे वंश की रक्षा के लिए इसे छोड़ दो।'

**पुत्रमेकं पुषाम्येनं देहि जीवितमद्य मे**

(देवीभागवत ०२.०४.२९)

इतने पर भी वह नहीं मानी तो राजा क्रोधपूर्वक बोले, 'अरी डायन ! सर्पिणी ! तुम राक्षसी हो, जो नरक भय भी नहीं हैं तुम्हें। जाना चाहो, तो जाओ ! पर अब इस पुत्र को नहीं मारने दूँगा।'

**यथेच्छं गच्छ वा तिष्ठ पुत्रो मे स्थीयतामिह ।**
**किं करोमि त्वया पापे वंशान्तकरयाऽनया ।।**

(देवीभागवत ०२.०४.३५)

गंगा ने कहा, 'महाराज ! हमारा–तुम्हारा वचनभंग होने से सम्बन्ध खत्म। मैं गंगा हूँ, आप महाभिष, ये आठों वसु हैं; शापवश मनुष्य योनि में आये थे। अब मैं जाती हूँ। इस पुत्र को शिक्षित करके भेज दूँगी।' पत्नी–पुत्र–शोकाकर्षित शान्तनु ने कुछ काल बिताया। एक दिन गंगातट पर गांगेय को देख चकित हो गये, किन्तु पहचान न सके। गंगा ने आकर कहा, 'महाराज ! ये आपका पुत्र देवव्रत है।'

**पुत्रोऽयं तव राजेन्द्र रक्षितश्चाष्टमो वसुः**

(देवीभागवत ०२.०४.५६)

गंगा ने देवव्रत शान्तनु को सौंपा, 'हे राजेन्द्र ! ये परशुरामजी से साङ्गवेद सहित शस्त्रास्त्र–विद्या में निपुण तथा देवों द्वारा भी अजेय हैं।' पुत्र को पाकर शान्तनु राज्य में आये तथा उत्सवपूर्वक उन्हें युवराज बना दिया। सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियो ! एक दिन शान्तनु शिकार खेलते यमुना किनारे पहुँचे, तो किसी अपूर्व सुगन्ध से आकृष्ट हो आगे बढ़े।

**मोहितो गन्धलोभेन शन्तनु पवनानुगः**

(देवीभागवत ०२.०५.१०)

आगे एक अनिन्द्य सुन्दरी को देख उससे पूछने लगे, 'देवि ! तुम कौन हो? मेरी पत्नी बन जाओ। मैं राजा हूँ।' उस कन्या ने कहा, 'महाराज ! मैं तो आभीर पुत्री हूँ, नाव चलाती हूँ; आप घर जाकर मेरे पिता से बात करें।' राजा तो अधीर थे। निषाद के घर पहुँचे, उसकी पुत्री को माँग लिया। निषाद ने कहा, 'महाराज ! ये तो सौभाग्य की बात है, किन्तु एक शर्त है – यदि इसी का पुत्र राजा बने, तो बात पक्की होगी।'

**तस्याः पुत्रो महाराज त्वदन्ते पृथिवीपतिः**

राजा गांगेय का स्मरणकर उठकर चले आये। घर जाकर न नहाते हैं, न खाते हैं न सोते हैं।

**नसस्नौ बुभुजेनाथ न सुस्वाप गृहं गतः**

(देवीभागवत ०२.०५.३४)

गांगेय ने कारण पूछा, तब भी राजा ने नहीं बताया। गांगेय ने कहा, 'पिताजी ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, आप अपनी चिन्ता बतायें; मैं अवश्य पूर्ण करूँगा। राम, परशुराम, शुनःशेप, रोहित – इन सबने पिता की प्रसन्नता के लिए स्वसुख का बलिदान कर दिया था। उस पुत्र के जीवन को धिक्कार है, जो पिता का दुःख न मिटा सके।

**धिक् तं सुतं भुविभाररूपं पितुर्हि दुखं न नाशयेत् यः**

*****************************************************************************************

किन्तु लज्जावश शान्तनु कुछ न बोल सके। तब गांगेय ने मन्त्री से जानकर निषादराज से प्रतिज्ञा की, 'हे निषाद! तुम्हारी पुत्री मेरी माता है, मैं राज्य नहीं करूँगा, विवाह भी नहीं करूँगा; तुम मेरे पिता को अपनी पुत्री दे दो।'

**मातेयं मम दाशेयी राज्यं नैव करोम्यहम् ।**
**न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा ।।**

(देवीभागवत ०२.०५.५७)

## धृतराष्ट्र व पाण्डु का विवाह, कुन्ती द्वारा दुर्वासा की सेवादि, परीक्षित जन्म, युद्ध के बाद भीम द्वारा धृतराष्ट्र का तिरस्कार, भीम द्वारा धृतराष्ट्र को धन देने का विरोध, विदुर का परमधाम गमन, धृतराष्ट्र-गान्धारी एक विचार, महाभारत युद्ध के छत्तीस वर्ष बाद यदुवंश का नाश

सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियों! शान्तनु का विवाह सत्यवती से हुआ। चित्रांगद और विचित्रवीर्य – दो पुत्र होकर अल्पकाल में ही मर गये। तब नियोगविधि से व्यास द्वारा अम्बिका से अंधे धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डु, दासी से विदुर उत्पन्न हुए।* समय आने पर पाण्डु राजा, विदुर महामन्त्री बने। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी (अफगानिस्तान) से सौ पुत्र तथा दूसरी वैश्यवंशोद्भवा से युयुत्सु उत्पन्न हुए। पाण्डु की पत्नी कुन्ती (मथुरा) व माद्री (मद्रास) थी। इनसे पाँच पाण्डव हुए।'

'हे ऋषियो! ये कुन्ती कुँवारी ही कर्ण को उत्पन्न कर चुकी थी। उसके बाद उसका विवाह पाण्डु से हुआ। जब कुन्ती बच्ची थी, तभी शूरसेन ने उसे कुन्तिभोज को दे दिया। चातुर्मास्य के समय कुन्ती ने दुर्वासा की बड़ी सेवा की। महात्मा ने प्रसन्न होकर उसे सभी देवताओं को आह्वान कर बुलाने का मन्त्र दिया तथा चले गये। एक दिन परीक्षार्थ कुन्ती ने सूर्य के लिए मन्त्र का जप किया, तो वे आ गये और रमण के लिए अनुरोध करने लगे। कुन्ती ने मना किया तो सूर्य बोले, 'अभी तुमको वर देता हूँ। तुम कन्या बनी रहोगी, तुम्हारा पुत्र यशस्वी होगा। चिन्ता मत करो – कोई जान भी नहीं पायेगा।'

**कन्याधर्मः स्थिरस्ते स्यान्न ज्ञास्यन्ति जनाः किल**

(देवीभागवत ०२.०६.२७)

सूर्य तो चले गये – '**भुक्त्वा जगाम देवेशो**'। ये गर्भिणी हो गयी। एक धात्री को पता चला, बस! और किसी को नहीं ...। कवचकुण्डल सज्जित सूर्य-जैसा तेजस्वी पुत्र हुआ। उसे पेटी में बंद करके नदी में बहा दिया गया। समाज के भय से एक माता की ममता बह गयी नदी में।

**किं करोमि सुतार्ताऽहं त्यजे त्वं प्राणवल्लभम्**

(देवीभागवत ०२.०६.३३)

'मैं पापिनी हूँ बेटा! जो तेरे-जैसे सुलक्षण पुत्र को पाकर भी वञ्चित हो गयी। जगज्जननी तुम्हारी रक्षा करें।' वह मञ्जूषा अधिरथ तथा राधा को मिली, उन्होंने उसे पाला। वह विख्यात धनुर्धर कर्ण हुआ। इधर कुन्ती का विवाह पाण्डु से हुआ। पाण्डु का विवाह माद्री से भी हुआ। एक दिन वन में मृगरूप से रमण करते किंदम ऋषि का वध पाण्डु से हो गया। ऋषि ने शाप दिया, 'राजन्! जब अपनी पत्नी से तुम रमण करोगे, तो मर जाओगे।' पाण्डु वानप्रस्थ होकर वन में तपस्या करने लगे।

पाण्डु ने कहा, 'कुन्ती! अपुत्र वाले की गति नहीं होती। अतः तुम किसी ऋषि से सन्तान प्राप्त करो।' कुन्ती ने दुर्वासा प्रदत्त मन्त्र की बात कही, तो पाण्डु प्रसन्न हो गये। इस प्रकार धर्म से युधिष्ठिर, वायु से भीम, इन्द्र से अर्जुन, ये कुन्ती पुत्र हुए। पति से प्रार्थना करके तथा उनकी आज्ञा लेकर कुन्ती ने माद्री को मन्त्र दिया।

---

* महाभारत का कथन है कि व्यास अत्यन्त काले थे। इस कारण इन्हें देखते ही अम्बिका ने आँखें बन्द कर लीं, अतः धृतराष्ट अन्धे हो गये। दूसरी रानी अम्बालिका भय के कारण पीली हो गयी, अतः पाण्डूरोगग्रस्त पुत्र पाण्डु हुआ। दासी सामान्य भाव से साथ रही, अतः उससे विदुर हुए।

**प्रार्थिता पतिना कुन्ती ददौ मन्त्रं दयान्विता**

(देवीभागवत ०२.०६.५६)

माद्री को भी अश्विनीकुमारों से नकुल-सहदेव – दो पुत्र हुए। एक दिन माद्री के साथ संग की लालसा में पाण्डु ने प्राण गवाँ दिये, माद्री सती हो गयी। कुन्ती बालकों को लेकर हस्तिनापुर आ गयी। समाज में धर्म के ठेकेदारों ने कुन्ती से पूछा, 'ये बालक किस के हैं?' कुन्ती ने बताया, तो कोई विश्वास ही न करे। अतः उसने मन्त्रबल से देवताओं को प्रकट कर दिया।

**विश्वासार्थं समाहूताः कुन्त्या सर्वे सुरास्तदा । आगत्य खे तदा तैस्तु कथितं नः सुताः किल ।।**

(देवीभागवत ०२.०६.६९)

भीष्म ने सबका स्वागत किया। सूतजी ने कहा, 'इन पाँचों पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी हुई, उससे पाँच पुत्र हुए। अर्जुन की दूसरी पत्नी कृष्ण की बहिन सुभद्रा से अभिमन्यु हुए। इनकी पत्नी विराट्पुत्री उत्तरा से परीक्षित हुए, जिन्होंने इस कुरुवंश की रक्षा की। कृष्ण ने अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से इनकी रक्षा की थी।

**मृतो बाणाग्निना शिशुः कृष्णेन जीवितः**

(देवीभागवत ०२.०७.०५)

इसका नाम परीक्षित हुआ। नष्टप्राय वंश को जीवित रखने से यह नाम हुआ।

**परिक्षीणेषु वंशेषु जातो यस्माद्वरः सुतः ।**
**तस्मात् परीक्षितो नाम ......................... ।।**

(देवीभागवत ०२.०७.०६)

**परितः क्षीण इति विग्रहः वंशः इति परीक्षितः अथवा ईक्षणार्थे-परितः ईक्षितः इति परीक्षितः**

गर्भस्थावस्था में जिसको देखा था, वह कहाँ है। जन्मोपरान्त परीक्षित उनको चारों ओर देखते है, अतः परीक्षित हुए। महाभारत में पुत्रविनाश से त्रस्त तथा भीम के व्यंग्य बाणों से पीड़ित किसी भी प्रकार युधिष्ठिर के स्नेहपाश में बँधे गान्धारी धृतराष्ट्रजी रहे थे। भीम कहता था, 'इस अन्धे के सौ पुत्रों को मैंने मार दिया, मैंने दुष्ट दुःशासन का खून पी लिया। फिर भी ये मेरे टुकड़ों पर कुत्ते-कीडों के समानजी रहा है।'

**भुनक्ति पिण्डमन्धोऽयं मयादत्तं गतत्रपः।**
**ध्वांक्षवद्वा श्ववच्चापि वृथा जीवत्यसौ जनः।।**

(देवीभागवत ०२.०७.१३)

किन्तु विदुर तथा युधिष्ठिर कहते, 'महाराज! ये भीम मूर्ख है, आप ध्यान न दें।'

**आश्वासयति धर्मात्मा मूर्खोयमिति चाब्रुवन्**

(देवीभागवत ०२.०७.१४)

एक दिन धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से धन माँगा कि मैं अपने पुत्रों का श्राद्ध करूँगा। भीम ने औरों-जैसा श्राद्ध मेरे पुत्रों का नहीं किया। युधिष्ठर ने धन देना चाहा तो भीम बिफर उठा, 'महाराज! इस अन्धे को धन देना वह भी दुर्योधन के निमित्त। ये महामूर्खता है।'

**अन्धोऽपि सुखमाप्नोति मूर्खत्वं किमतः परम्**

(देवीभागवत ०२.०७.२२)

'जिनके कारण हम वन से वन में भटके, द्रौपदी का अपमान हुआ, भरी सभा में वो नग्न कर दी गयी, हम वीरों को विराट् की सेवा करनी पड़ी, आपके जुआ ने हमारी दुर्गति कर दी। कैसे भूल जाऊँ? वृकोदर भीम! गदाधारी भीम!! जिसके भय से बड़े-बड़े वीरों की छाती फट जाती थी, वह रसोइया बनकर जिया है। त्रिलोकविजयी इन्द्रपुत्र गाण्डीवधारी महान् धनुर्धर प्यारा अर्जुन, बृहन्नला नर्तक

बनकर, चूडियाँ पहनकर रहा है। जिन हाथों में गाण्डीव होता था, उनमें कंकण रहे हैं। इससे बड़ा अपमान क्या हो सकता है, मुझे जब भी अर्जुन की चोटी तथा आँखों का काजल याद आता है, तो खून खोल उठता है। मन करता है, अभी इस अन्धे का गदा से सिर चूर-चूर कर दूँ।'

**गाण्डीवशौभितौ हस्तौ कृतौ कंकण शोभितौ ।**
**दृष्ट्वावेणी कृतां मूर्ध्नि कज्जलं लोचने तथा ।।**

(देवीभागवत ०२.०७.२७)

'लाक्षागृह को भूल जाऊँ? दुर्वासा की दुर्घटना भूल जाऊँ? आज भी पश्चात्ताप है। मैंने कीचक को मारा था, इन पापियों को क्यों न मार दिया? गन्धर्वों से छुड़ाना हमारी भूल थी, तुम्हारी मूर्खता।' '**मूर्खत्वं तव राजेन्द्र गन्धर्वेभ्यः**' ऐसा क्रोधपूर्वक कहकर तीन परिक्रमा कर वहाँ से चले गये कि मै धन देने के पक्ष में नही हूँ। युधिष्ठिर ने शेष भाइयों से मिलकर पर्याप्त धन दे दिया। उन्होंने श्राद्धादि सम्पन्न किया। अब धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और विदुर सहित वन में रहने लगे। कुन्ती को रोकने के लिए भीम भी रो पड़े; किन्तु कुन्ती नहीं रुकी - '**विलपन्भीमसेनोऽपि**' - छः वर्षो बाद युधिष्ठर उनसे मिलने गये, तो विरक्त विदुरजी की ज्योति युधिष्ठिर में विलीन हो गयी; उनका प्राणान्त हो गया। आकाशवाणी ने कहा, 'इनका अग्निसंस्कार व श्राद्ध आवश्यक नहीं, ये सच्चे संन्यासी थे।' तभी नारदजी तथा व्यासजी आ गये। कुन्ती ने कर्ण के दर्शन की तथा गान्धारी ने दुर्योधन के दर्शन की इच्छा व्यक्त की। सुभद्रा ने अभिमन्यु की इच्छा की। चकित होकर व्यासजी ने माँ की स्तुति की, 'हे माँ! आप अचिन्त्य-शक्ति-सम्पन्न हैं। कृपया आप मृतकों को दिखा दीजिए।' भगवती ने सबको बुलाकर दिखा दिया।

**स्वर्गादाहूय सर्वान्वै दर्शयामास पार्थिवान्**

(देवीभागवत ०२.०७.६५)

यह सब देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। गान्धारी ने 'कुन्ती के पुत्र हुआ है' - ये सुनकर अपने गर्भ को क्रोध ईर्ष्या के कारण पाषाण-प्रहार से सौ टुकड़ों में विभक्त कर दिया था। व्यासजी ने घृतपात्रों में उनका पालन कराया। दुर्योधन के जन्म समय भारी उत्पात हुए तथा आकाशवाणी हुई कि इससे वंश विनाश होगा, इसे नष्ट करना ठीक है। गान्धारी विदेशी है, ईर्ष्यापूर्ण चित्त वाली है। मेरे पति का राज्य युधिष्ठर को प्राप्त हो गया तो ...? आँखों पर पट्टी बाँध ली, बिना आँखवाले की सेवा आँखों के रहते भली प्रकार हो सकती थी, किन्तु नकारात्मक सोच कि 'मेरे पति की आँख नहीं, तो मेरी भी नहीं। भारतीय संस्कृति में तो सुकन्या ने च्यवन की सेवा कर उन्हें लोचन प्राप्त करा लिये, कुन्ती ने सपत्नी को पुत्र प्राप्त कराये, सावित्री ने सत्यवान को मृत्यु से वापस ले लिया।

**ज्ञान विराग नयन उद्गारी**

**श्रुति स्मृति द्वे नेत्रे**

ये दोनों ही इन दोनों से वचिंत हैं। जब माता-पिता दोनों ज्ञान और वैराग्य हीन हों, नेत्रहीन हों; तब तो दुर्योधन ही होंगे। धृतराष्ट्र जीवात्मा है, गान्धारी बुद्धि है। दोनों अज्ञानान्धकार में जीयेंगे, तो मन (दुर्योधन) तो उच्छृंखल होगा ही। १. शम, २. दम, ३. उपरति, ४. तितिक्षा, ५. श्रद्धा, ५. समाधान तथा ७. भगवदाश्रय- ये सात अक्षौहिणी सेना हैं। इसी प्रकार दस इंद्रियाँ और एक मन- ये ग्यारह अक्षौहिणी सेना हैं। द्रोण धन व्याज से धर्मविमुख हो गये। अश्वत्थामा दीर्घजीवी है, पर अपमानपूर्वक आज भी खून टपकाते शोकाकुल जीते है। किन्तु अभिमन्यु दिव्य-जीवी है, संसार याद करता है।

गान्धारी की ईर्ष्या पुत्रों में आयी, कुन्ती का सद्भाव पाण्डवों मे आया। भीष्म, भीम, कर्ण, शकुनी, कृष्ण की प्रतिज्ञाएँ धर्माधर्म की दृष्टि से विचारशील है। क्या मिला समाज को इनकी प्रतिज्ञाओं से? भीम को विष दिया तो भगवद् कृपावश उसे अमृत मिला, लाक्षागृह से द्रौपदी मिली, वनवास से अर्जुन को स्वर्ग की दिव्य शक्तियाँ मिलीं। युधिष्ठिर दुर्जन को नहीं दुर्जनता को मिटाना चाहते हैं, अतः उन्हें सुयोधन कहते हैं। भीष्म को शरशय्या मिली। प्रारब्धवश प्राप्त भोग को कराह कर नहीं, सराहकर भोगो। शान्तनु का चरित्र

***************************************************************************************

वास्तव में विचारणीय है, आखिर सत्यवती से उन्हें क्या मिला? आभीर की चिन्ता सचेत करती है कि मोह से सदियों तक सृष्टि पीड़ित रहती है जैसे–सत्यवती के पिता।

**षट्त्रिंशेऽथ गते वर्षे कौरवाणां क्षयात्पुनः ।**
**प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ।।**

(देवीभागवत ०२.०८.०३)

सूतजी कहते है, 'हे विप्रों ! दावाग्नि में जलकर धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती मर गये। महाभारत के छत्तीस वर्ष बाद ब्राह्मण–शाप से यदुकुल नष्ट हो गया। अर्जुन ने सबका दाह–संस्कार कराया। कृष्णजी व्याध के बाण से परमधाम गये। बलराम ने योगबल से मुक्ति पायी। वसुदेव भी चले गये।

**समीक्ष्याथ हरेर्देहं कृत्वा काष्ठस्य संचयम् ।**
**अष्टाभिः सह पत्नीभिः दाहयामास पार्थिवः ।।**

(देवीभागवत ०२.०८.०८)

द्वारिका समुद्र में लीन हो गयी, मार्ग में अर्जुन को भीलों ने लूट लिया। वे इन्द्रप्रस्थ आ गये। युधिष्ठिर को सब वृत्तान्त सुना दिया। सुनकर शोकाकुल युधिष्ठिर ने छत्तीस वर्षीय परीक्षित को राजा बनाकर हिमालय प्रस्थान किया तथा वीरगति को पा लिया। परीक्षित मृगया प्रिय थे, एक बार वन में क्षुधा–तृषात्रस्त राजा ने एक आश्रम में जाकर ध्यानस्थ महात्मा से पानी माँगा। प्रत्युत्तर न मिलने पर राजा ने मृतसर्प महात्मा के गले में डाल दिया तथा घर आ गये। ऋषिपुत्र मृगीजात (शृंगी) ने राजा को श्राप दे दिया, 'अरे ! पापी आज से सातवें दिन तुमको तक्षक काटेगा।'

**पितुः कण्ठेऽद्य मे येन विनिक्षिप्तो मृतोरगः ।।**
**तक्षकः सप्तरात्रेण तं दशेत्पाप पुरुषम् ।**

(देवीभागवत ०२.०८.२७–२८)

राजा को श्राप का ज्ञान हो गया। अतः मणि–मन्त्र–औषधिरूपात्मक उपाय सोचने लगे, क्योंकि ब्राह्मण का शाप दुर्लंघ्य है।

**इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला । कालदंड हरि चक्र कराला ।।**
**जो इन्ह कर मारा नहिं मरई । बिप्रद्रोह पावक सो जरई ।।**

(रामचरितमानस ०७.१०९.०७)

## रूरू द्वारा सर्पदंष्ट प्रमद्वरा को अर्ध तप से नवजीवन, परीक्षित का देह–रक्षार्थ प्रयत्न, तक्षक और कश्यप मिलन, परीक्षित सर्पदंश से मृत, उत्तंक द्वारा प्रेरित जनमजेय का सर्पयज्ञ, जरुत्कारु प्रसंग, विनता और कद्रू में परस्पर सूर्य के घोड़ों के रंग के विषय में मतभेद

एक उदाहरण है – पुरुषार्थ से सफलता पायी जा सकती है। भृगुपत्नी पुलोमजा से च्यवन ऋषि हुए। उनकी पत्नी शर्याति की पुत्री सुकन्या थी। च्यवन के पुत्र प्रमति की पत्नी प्रतापिणी थी। इन प्रमति के पुत्र हुए – रूरू। स्थूलकेश ऋषि के आश्रम पर मेनका एक कन्या को जन्म देकर चली गयी, ऋषि ने उसका नाम प्रमद्वरा रखा। रूरू के साथ प्रमद्वरा का विवाह होना निश्चित हुआ। तभी सर्प ने उसे काट लिया। हा–हाकार मच गया। विवाहोत्सव की तैयारियों के बीच महाशोक हो गया। रूरू तो विक्षिप्त से हो गये, किंतु रूरू ने आत्महत्या के विचार को ज्ञान द्वारा निरस्त कर दिया; क्योंकि इस प्रकार से मरण में दोष है।

**एतदर्थं मृते दोषामपि नैव अमृते पुनः**

(देवीभागवत ०२.०९.२२)

*************************************************************************************

रूरू ने जल लेकर संकल्प किया, 'मेरी सारी तपस्या के फलस्वरूप प्रमद्वरा जीवित होकर मेरे साथ रहे, अन्यथा मैं भी प्राण त्याग दूँगा।' उसी समय एक देवदूत ने आकर उपाय बताया, 'यदि तुम अपनी आधी अवस्था दे सको, तो ये जीवित हो सकेगी।' परिणामस्वरूप धर्मराज ने उसे जीवित कर ही दिया।

राजा ने यह जानकर कि 'रूरू ने रानी को पुनः जीवित किया है, अतः मुझे भी प्रयत्न करना चाहिए।' राजा ने अति सुरक्षित सप्त मंजिल भवन बनवाया। मणि-मंत्र-औषधि-ज्ञाता विद्वान पहरे पर रखे। 'हवा भी अन्दर न जा सके' ऐसी व्यवस्था की।

**वातोपि न चरेत्तत्र प्रवेधे विनिवार्यते**

(देवीभागवत ०२.०९.४२)

कश्यप नामक एक विषशामक-तपस्वी ब्राह्मण परीक्षित के उस महल की ओर चला। सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियों! इधर कश्यप चला, उधर तक्षक चला। दोनों की मुलाकात मार्ग में ही हो गयी। मनुष्य वेषधारी तक्षक ने पूछा, 'महाराज! कहाँ चले?' कश्यप ने कहा, 'मैं परीक्षित के विष को उतारकर धन कमाऊँगा। मेरे पास ऐसा मन्त्र है, यदि जीवन शेष होगा; तो अवश्य उसको जीवित कर दूँगा।'

**मन्त्रोऽस्ति मम विप्रेन्द्र विषनाशकरः किल ।**
**जीविष्याम्यहं तं वै जीवितव्येऽधुना किल ।।**

(देवीभागवत ०२.१०.०५)

तक्षक ने कहा, 'ब्राह्मण! मैं ही तक्षक हूँ तथा मेरे डसे को जीवित करना कथमपि संभव नहीं है।' ब्राह्मण ने कहा, 'तो परीक्षा कर लेते हैं।' परीक्षार्थ उस ब्राह्मण ने एक हरे-भरे वृक्ष की ओर इशारा किया। उस हरे वटवृक्ष को तक्षक ने जलाकर भस्म कर दिया। ब्राह्मण ने भी मन्त्रशक्ति से उसे पुनः क्षणमात्र में हरा कर दिया। तक्षक भी यह देखकर चकित हो गया और फिर धन का प्रलोभन देकर ब्राह्मण को विदा कर दिया। (क) तक्षक ने ब्राह्मण को राज्याश्रय से अधिक धन दे दिया; (ख) तक्षक ने कहा, 'महाराज! मैं तो ब्राह्मणों का दास हूँ, उन्हीं की आज्ञा का पालन करने के लिए इस ब्राह्मणद्वेषी राजा को डसूँगा। मेरी तो इससे कोई दुश्मनी है नहीं; (ग) उस ब्राह्मण का विचार – 'ब्राह्मण का शाप मिथ्या होने लगा, तो सब तेजस्वी विप्रों का तिरस्कार होने लगेगा।'; (घ) संसार को शिक्षा देने के लिए वर्तमान में राजा को दण्ड मिलना चाहिए; (ङ) ब्राह्मण ने तक्षक की बातों पर पर्याप्त विचार किया तथा ध्यानबल से जान लिया कि 'परीक्षित की आयु शेष नहीं रही', अतः वे धन लेकर लौट गये।

**गतायुषं च नृपतिं ज्ञात्वाबुद्धिमत्तरः ।**
**आसन्नमृत्युं राजानं ज्ञात्वा ध्यानेन कश्यपः ।।**

(देवीभागवत ०२.१०.२५)

सातवें दिन तक्षक राजा के महल पहुँचा। किन्तु विलक्षण सुरक्षा व्यवस्था देखकर चिन्तित हो गया, 'क्या करूँ? ये विप्र-पीड़ाकर्त्ता-शठ-राजा मृत्यु से बचने के लिए ऐसा प्रयत्न करता है, तपस्या नहीं करता। सात दिन शरीर की चिन्ता में गुजार दिये। इसे धर्माचरण करना चाहिए था।

तक्षक ने विप्रवेषधारी नागों के पुष्पों-फलों में छिपकर प्रवेश किया। ये तक्षक नहीं जा रहा है, ये विप्र का शाप जा रहा है; इसे कौन रोकेगा? प्रवेश तो विप्रों का भी नहीं हुआ, किन्तु उनके द्वारा प्रेषित पुष्प-फल राजा के समीप गये। उन्हीं के मध्य सुन्दर कीट बनकर तक्षक पहुँच गया। उपेक्षा, व्यंग्य, कटाक्षवश राजा की मृत्यु बोल उठी, 'अरे! सातवें दिन का सूर्यास्त हो गया। अब मुझे भय नही है। मैं विप्र शाप को स्वीकार करता हूँ, ये कृमि मुझे काट ले।'

**अंगी करोमि तं शापं कृमिको मां दशतु अयम्**

(देवीभागवत ०२.१०.६१)

*********************************************************************************

ऐसा कहकर उसे गर्दन पर रख लिया। पल मात्र में भयंकर विषधर बनकर तक्षक ने परीक्षित के प्राण ले लिये। कितना भी मृत्यु से बचने का उपाय करें, कोई नहीं बच सकता। परीक्षित कथा इसका प्रमाण है। परीक्षित का और्ध्वदैहिक कृत्य कर अबोध जनमेजय को राजा बनाकर कृपाचार्यजी उसे शिक्षा देने लगे।

**दुष्टजनान् एजयति कम्पयति इति जनमेजय**

काशीपति सुवर्णवर्मा ने अपनी पुत्री वपुष्टमा से राजा का विवाह कर दिया। सुखपूर्वक शासन करते राजा के पास एक दिन उत्तंक ऋषि आये। उत्तंक ऋषि को तक्षक ने परेशान किया था, जब ये गुरुदक्षिणा में कुण्डल लेने गये थे। पौष्य राजा की पत्नी के कुण्डल नित्य स्वर्ण देते थे। ये कुण्डल अत्यंत दिव्य थे। उन्हें तक्षक भी चाहता था, अतः वह उनको लेकर पाताल में चला गया था।

उत्तंक ऋषि ने जनमेजय से कहा, 'हे नरेश! तुम कैसे राजा हो? तुम्हारे पिता की दुर्गति करके भी तक्षक अपनी जाति सहित सुख से घूमता है। उसका बदला लो! सर्पयज्ञ करो!! तभी तुम्हारे पिता को शान्ति मिलेगी। अन्यथा आज तुमको अनाथ न होना पड़ता। राजन्! पूर्व में एक रूरू नामक ऋषि ने अपनी पत्नी प्रमद्वरा को सर्पद्वारा काटने पर अनेक सर्पों को मार डाला था, तब डुन्डुभ एक विषरहित सर्प (फणरहित सर्प) ने रूरू से कहा, 'ब्राह्मण! मैं भी पूर्व में ब्राह्मण था, शापवश मैं सर्प हो गया। मैंने तृण का सर्प बनाकर मित्र खगम (खेचर) को डरा दिया था। उसके शाप से आज मुक्त हो गया।' ऋषि ने जनमेजय से कहा, 'राजन्! अहिंसा परम धर्म है, किन्तु यज्ञ की हिंसा, हिंसा नहीं मानी जाती।'

उत्तंक की बात मानकर जनमेजय ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। सर्प यज्ञकुण्ड में आकर गिरने लगे, किन्तु तक्षक इन्द्र की शरण में पहुँचा। उत्तंक ने इन्द्र सहित तक्षक का आह्वान किया। तभी नागों के भानजे (जरुत्कारुपुत्र) आस्तीक यज्ञशाला में आये तथा उन्होंने यज्ञ रुकवा दिया। जनमेजय ने वैशम्पायन से महाभारत सुना, किन्तु शान्ति नहीं मिली। पिता की मृत्यु रण में नहीं, घर में नहीं, अन्तरिक्ष में हुई। उनकी गति कैसे होगी?

**मे पितुः मरणं अन्तरिक्षे अवशः अभूत**

सूतजी कहते हैं, 'ऋषियों! अशान्त राजा को व्यासजी ने देवीभागवत सुनाई तथा आस्तीक जन्म-प्रसंग भी सुनाया, 'हे राजन्! जरुत्कारु नामक ऋषि ने एक दिन अपने पितरों को गड्ढे में उलटे लटके देखा –

**तेन दृष्टा वने गर्ते लम्बमानाः स्वपूर्वजा**

(देवीभागवत ०२.१२.०७)

उन्होंने कहा, 'बेटा! विवाह करके हमारे तर्पण-श्राद्ध की व्यवस्था करो।' जरुत्कारु ने कहा, 'पूज्य पितरों! मनोनुकूल, वशवर्तिनी, समान-शीला, समसंज्ञका, अयाचिता, भरण-स्वतन्त्रा कन्या मिलने पर ही विवाह करूँगा।' इधर कद्रू और विनता में (दोनों सगी बहिनें कश्यप ऋषि की पत्नियाँ गरुड़ तथा नागों की माताएँ हैं) 'सूर्य के घोड़े काले हैं या सफेद?' – इस विषय को लेकर विवाद हो गया। दोनों के मध्य विचार हुआ – 'हारने वाली दासी होगी।' कद्रू ने घोड़े काले तथा विनता ने श्वेत बताये। कद्रू ने काले रंग के पुत्रों (सर्पो) से कहा, 'तुम जाकर घोड़ो से लिपट जाओ, जिससे वे काले दिखे'। किन्तु सर्पो ने मना कर दिया, तो क्रोधित क्रदू ने उन्हें जनमेजय के यज्ञ में जलने का शाप दे दिया।

**जनमेजयस्य यज्ञे वै गमिष्यथ हुताशनम्**

(देवीभागवत ०२.१२.१६)

अन्य सर्प भयवश माँ की आज्ञा से घोड़े के शरीर पर चिपक गये, जिससे छलपूर्वक क्रद्रू जीत गयी। विनता को उदास देख गरुड़जी ने कहा, 'माँ! आप उदास क्यों हैं? उस पुत्र को धिक्कार है, जो अपनी माँ का दुख न मिटा सके।' विनता ने सारी बात बता दी और कहा, 'बेटा! अब उसे कंधे पर बिठाकर ले चलना पड़ता है।' गरुड़जी ने कद्रू को प्रणाम करके माता की मुक्ति का उपाय पूछा तो कद्रू ने कहा, 'स्वर्ग से तुम अमृत ला दो, तो तुम्हारी माँ मुक्त हो जाएगी।' गरुड़जी ने भयंकर युद्ध करके स्वर्ग से अमृत ला दिया। इधर

*************************************************************************************

जब सर्प स्नान करने गये, तब इन्द्र ने वह सुधाकुम्भ चुरा लिया। उस अमृत की बूँदें वहाँ बिछी कुशाओं पर गिर गयी, जिन्हें सर्पो ने चाटा तो उनकी जीभ चिरकर दो भागों में हो गयी।

**तत्रास्तीर्णा कुशाः तैस्तु लीढाः पन्नगनायकैः ।**
**द्विजिह्वास्ते सुसम्पन्नाः कुशाग्रस्पर्शमात्रतः ।।**

(देवीभागवत ०२.१२.३१)

सर्पो की प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने वासुकि की बहिन का विवाह जरुत्कारु से यह कहकर कराया कि इनका पुत्र आस्तीक तुम्हारी रक्षा करेगा। तब मुनि जरुत्कारु ने कहा, 'मेरे अप्रिय करते ही इसे मै त्याग दूँगा।'

**अप्रियं मे यदा कुर्यात्तदा तां सन्त्यजाम्यहम्**
**कृत्वां पर्णकुटीं शुभ्रां जरत्कारुर्महावने**

(देवीभागवत ०२.१२.३६ व ३८)

एक दिन संध्याकाल में सोते महात्मा को जगाने के लिए जरत्कारु विचार करने लगी, यदि जगाऊँ तो मेरा परित्याग होगा जीवन नरक हो जाएगा। न जगाऊँ, तो धर्म लुप्त होगा। तब क्या करूँ? भारत की नारी ने धर्म की रक्षा के लिए अपने सुख का उत्सर्ग कर दिया। अस्तु ! जगा देती हूँ क्योंकि मरण तो नित्य है, धर्म बचना चाहिए।

**धर्मनाशात् वरं त्यागः तथापि मरणं ध्रुवम्**

(देवीभागवत ०२.१२.४३)

जैसे ही जरत्कारु ने जगाया, वैसे ही घर-परिवार त्याग दिया। ये तो बहाना था, महात्मा का मन नहीं लगता था। जरत्कारु ने चलते समय कहा था – 'मेरा अभाव नहीं होगा – **'ते गर्भे अस्ति'**, अतः उत्पन्न बालक का नाम आस्तीक रखा। 'हे राजन् ! ये वही आस्तीक हैं, जिन्होंने मातृकुल की रक्षा की है। अब विशाल मन्दिर बनवाकर देवीभागवत सुनो। तुम्हारा वंश पवित्र हो जायेगा और पिता की सद्गति होगी। हे राजन् ! दुखी वही लोग हैं, जिन्होंने जगदम्बा का आराधन नहीं किया, देवीभागवत नहीं सुनी।

**सुदुःखितास्ते दृश्यन्ते भुवि भारत भारते ।**
**नाराधिता महामाया यैर्जनैश्च सदाऽम्बिका ।।**

(देवीभागवत ०२.१२.६१)

×*×*×*×*×

## *।। समाप्तोऽयं द्वितीयः स्कन्धः ।।*

***************************************************************************************

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। तृतीयः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### जनमेजय के द्वारा व्यासजी से पूछे गये विविध प्रश्न; तीनों देवों को मिली भगवती की कृपा; मणिद्वीप में भगवती राजराजेश्वरी का दिव्य दर्शन; ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने स्त्रीरूप धारण किया; शिवकृत स्तुति; भगवती का उपदेश – 'मैं ही ब्रह्म हूँ'; त्रिगुण स्वरूप

सूतजी कहते हैं, 'हे शौनक ! जनमेजय ने व्यासजी से पूछा, महाराज ! ये महामाया कौन है? इनका वैशिष्ट्य क्या है? इनका यज्ञविधान क्या है? ब्रह्माण्डोत्पत्ति कैसे हुई? कृपया मेरी जिज्ञासा शान्त करें। महाराज ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश – ये तीनों देव स्वतन्त्र हैं या परतन्त्र? इनका जन्म-मरण होता है या नहीं? इनकी अवस्था क्या है? ये सब समझाइये।'

व्यासजी ने पूर्व श्रुत (नारदोक्त) आख्यान कहना प्रारम्भ किया, 'हे राजन् ! पूर्व में यही प्रश्न नारद से करने पर गंगातट पर बैठे नारद ने मुझे बताया था। उनका प्रश्न था – कोई शिव को, कोई विष्णु को, कोई ब्रह्मा को सृष्टि में श्रेष्ठ बताते हैं। कोई सूर्य, कोई इन्द्र, कोई वरुण, चन्द्र, गणेश, कोई जगज्जननी महामाया को इन सबका कारण मानते है? ज्ञानी उन्हें ब्रह्मशक्ति जगज्जननी, वैष्णव उनको महालक्ष्मी, शैव, शिवा भवानी, सती आदि कहते हैं; नास्तिकजन ईश्वर बिना ही संसार को स्वतः उत्पन्न मानते हैं, सांख्यदर्शन वाले प्रकृत्युत्पन्न मानते हैं। हे महाराज ! मैं धर्माधर्म, सत्यासत्य, उचितानुचित का निर्णय करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा हूँ। आप निश्चय करके बताइए। सत्वोपजीवी देवताओं को दुराचारी राक्षस पीड़ित करते हैं, धार्मिक पाण्डवों को कौरवों ने पीड़ित किया। क्या है ये धर्म व्यवस्था? मेरे इस संशय को दूर करें।

व्यासजी कहते हैं, 'हे नृप ! जो नारदजी ने मुझे सुनाया था, वह तुम भी सुनो।' नारदजी बोले, 'हे व्यासजी ! ये शंकाएँ मुझे भी हुई थी। मैं स्वयं ब्रह्माजी के पास गया था, क्योंकि तत्व-ज्ञान के बिना सब व्यर्थ ही है। हे व्यासजी ! पिताजी ने भी असमर्थ भाव से ही कहा था, 'हे नारद ! जो शंका तुम्हें है, वे सब मुझमें भी रही हैं। मैं विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर था – आधार नहीं। कोई जब कीचड़ ही नहीं, तब कमल कैसे हो गया? मुझे चिन्तित देख आकाशवाणी ने कहा, 'तप करो !'

*************************************************************************************

**तपस्तपेति चाकाशे वागभूदशरीरिणी**

(देवीभागवत ०३.०२.१९)

मैने हजार वर्ष तक तप किया। तब आकावाणी ने कहा, 'सृष्टि करो'। अब मैं और परेशान ... ...। तभी मधु और कैटभ ने मुझे मारना चाहा। मैंने योगनिद्रा में सुप्त विष्णु को जगाने के लिए महामाया का स्तवन किया, तब महामाया के प्रसाद से ही विष्णु उन्हें मारने में समर्थ हुए। तभी वहाँ शङ्करजी भी आ गये। हम तीनों ने मिलकर महामाया की स्तुति की। महामाया ने हमें हमारे काम बाँट दिये तथा दिव्य विमान पर बिठाकर दिव्य दर्शन कराए। हे नारद! एक दिव्य नगर में पहुँचकर हमने कल्पवृक्ष, नन्दिनी, नन्दनवन, गन्धर्व अप्सराएँ देखीं। इन्द्रासन पर इन्द्र देखे, ब्रह्मलोक में चारों वेदों सहित ब्रह्मा देखे, कैलाश पर जाकर दिव्य बाँकी-झाकी में शिव और पार्वती को देखा, वैकुण्ठ जाकर लक्ष्मी-नारायण का अद्‌भुत वैभव देखा। हम आश्चर्यचकित सब देखते हुए क्षीर समुद्र पर पहुँच गये। वहाँ शिवाकार का भव्य दिव्य एक पलंग था। उसपर दिव्य प्रभावशालिनी भुवनेश्वरी बैठी थी। उनकी सेवा में बडी-बडी दिव्य देवियाँ रहती थीं। विष्णु ने कहा, 'हे शिव! ये आद्याशक्ति भुवनेश्वरी हैं। इनका दर्शन सबको सम्भव नहीं है। ये हमारे पुण्यों का ही प्रभाव है, जो इनके दर्शन कर पा रहे हैं।'

**तपस्तप्तं पुरा यत्नात्तस्येदं फलमुत्तमम् । अन्यथा दर्शनं कुत्र भवेदस्माकमादरात् ।।**

(देवीभागवत ०३.०३.५८)

'हम इनके लक्षांश के बराबर भी नहीं हैं –'

**लक्षांशेन तुलामस्या न भवाम कथंचन**

(देवीभागवत ०३.०३.६२)

'हे शिव! ये मेरी माता हैं। मैं वटपत्र पर पड़ा अपने अँगूठे को पी रहा था। तब ये मुझे झुला रही थी तथा लोरी भी सुनाती थी।'

**शयाने वटपत्रे च पर्यङ्के सुस्थिरे दृढे**

×××

**गायन्ती दोलयन्ती च बालभावान्मयि स्थिते**

×××

**कामं नो जननी सैषा**

(देवीभागवत ०३.०३.६४, ६६ व ६७)

ब्रह्माजी कहते हैं, 'हे नारद! इस प्रकार हम तीनों ने विचार किया कि हम चलकर उन्हें प्रणाम करें। यदि द्वारपाल रोंकेगे तो हम स्तुति करने लगेंगे।'

**यदि नो वारयिष्यन्ति द्वारस्थाः परिचारकाः ।**
**पठिष्यामश्च तत्रस्थाः स्तुतिं देव्याः समाहिता ।।**

(देवीभागवत ०३.०४.०३)

ब्रह्माजी कहते हैं, 'हे नारद! जब हम द्वार पर पहुँचे, तो भगवती ने हमें स्त्री बना दिया – '**वयं युवतयोः जाताः**'। उन पराम्बा भुवनेश्वरी की नखमणि चन्द्रिका में सकल ब्रह्माण्ड, देव, दनुज, किन्नर, शिव, विष्णु और मैं स्वयं दिखने लगे।'

**नखदर्पण मध्ये वै देव्याश्चरणपंकजे**

×××

**ब्रह्माण्डमखिलं सर्वं तत्र स्थावरजंगमम्**

हमें सैकडों वर्षो तक माँ का वैभव देखते-देखते बीत गये। एक दिन विष्णु ने माता भुवनेश्वरी की दिव्य स्तुति की। विष्णु ने कहा, 'हे माँ! आपकी क्रीडा किसी जादूगर की क्रीडा जैसी लगती है। हे माँ! तुम्हारे बिना सब शून्य ही शून्य है, शक्ति के बिना तो पुरुष

******************************************************************************************

भी अशक्त है।

**न त्वामृते किमपि वस्तुगतं विभाति व्याप्यैव सर्वमखिलं त्वमवस्थितासि ।**
**शक्तिं बिना व्यवहृतो पुरुषोऽप्यशक्तो बम्भष्यते जननि बुद्धिमता जनेन ।।**

(देवीभागवत ०३.०४.३२)

विष्णु ने स्तुति की, 'हे माँ! मणिद्वीप में बुलाकर आपने हमारा गौरव बढ़ाया है। हे माँ! जब आपके वास्तविक उत्कर्ष को शिव, ब्रह्मा और मैं नहीं जानता, तो फिर और कौन होगा जो जान पायेगा?'

**नाहं भवो न च विरञ्चि निवेद मातः । कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यम् ।।**
**भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयम् । त्वां स्वामिनी इति मनसा ननु चिन्तयामि ।।**
**नमो देवि महा विद्ये नमामि चरणौ तव। सदा ज्ञान प्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे ।।**

(देवीभागवत ०३.०४.३५, ३८ व ४९)

'हे माँ! आपके नखमणि दर्पण के प्रत्येक लोक में शिव, विष्णु, ब्रह्मादि हैं। हे माँ! आपकी कृपा, आपकी छवि, आपका नाम है। हम सब आपके सेवक हैं –ये अभिमान हमसे दूर न हो। आप हमारी स्वामिनी हैं – ये चिन्तन सदा रहे। हे माँ! हमारा आपका सम्बन्ध सदा माँ बेटे का बना रहे। माँ! आपकी कृपा से आज हमें ज्ञान प्राप्त हुआ कि सबकी प्रेरणा शक्ति जीवन आप ही हैं। आप स्वाहा है, आप स्वधा है; हे माँ आपके चरणों में प्रणाम करके ज्ञान–प्रकाश की याचना करता हूँ।'

ब्रह्माजी कहते हैं, 'हे नारद! तदनन्तर महादेव शिव ने अत्युत्कृष्ट स्तुति की, 'हे जगज्जनित्रि! हे माँ! जो संसार के निर्माता, व्यवस्थापक और संहारक के रूप में हम तीनों को जानते, मानते और कहते हैं; वे अज्ञानी हैं। क्योंकि हम तीनों की उत्पत्ति तो आपकी कृपा से होती है। अब तो ऐसी कृपा करो कि आपके चरणकमलों का आश्रय न छूटे। ये युवतीवेष हमारे परमसौभाग्य का फल है।

**युवतिभावमवाप्य पदाम्वुजं परिचितं तव संसृतिनाशनम्**

(देवीभागवत ०३.०५.१६)

शिवजी ने स्तुति की, 'आपके चरणों की सेवा न करने वाले की तपस्या व्यर्थ है। क्योंकि तुम्हारे चरण पराग निषेवण से मुक्ति सहज ही मिल जाती है। हे देवि! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे नवार्णमन्त्र (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) की दीक्षा दें। यद्यपि पूर्वसम्प्राप्त इस विद्या को मैं पुनः आपसे पाना चाहता हूँ।'

ब्रह्माजी कहते हैं, 'भगवती राजराजेश्वरी ने शिव को स्पष्ट मन्त्रोपदेश किया। हे नारद! इसके उपरान्त मैंने स्तुति प्रारम्भ की, 'हे महामाये! आपका वास्तविक रहस्य तो वेद भी पाने में असहज हो जाते हैं। हे माँ! मैं आपका दास हूँ। मुझे अज्ञानान्धकार से बचाइए।'

**तवाज्ञाकरः किंकरोऽस्मीति नूनं शिवे पाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ**

(देवीभागवत ०३.०५.२९)

'हे माता! आपका जन्म न देखा जाता है, न सुना जाता है, कोई नहीं जानता है। एक संशय मेरे मन से नहीं जाता। माता! आप स्त्री हैं या पुरुष हैं। अथवा ये द्वैत और अद्वैत का विषय भी कठिनाई देता है। इस संशय का निवारण आप विस्तारपूर्वक स्वयं करें।

**द्वित्वैकत्व विचारेऽस्मिन् निमग्नं क्षुल्लकं मनः**

×××

**पुमानसि त्वं स्त्री वासि वद विस्तरतो मम**

(देवीभागवत ०३.०५.४४ व ४६)

ब्रह्माजी ने कहा, 'हे नारद! तदुपरान्त भगवती राजराजेश्वरी ने कहा, 'हे ब्रह्मन्! मैं ही सत्–चित्–आनन्द स्वरूप ब्रह्म हूँ। सदैकत्व हूँ। मुझमें और ब्रह्म में भेद नहीं हैं, जो वह ब्रह्म है, वही मैं हूँ। जो मैं हूँ वही वे हैं; भेद तो बुद्धि–भ्रम के कारण दिखता है।'

***************************************************************************************

**योऽसौ साऽहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ।।**

**एकमेवा द्वितीयं वै ब्रह्म नित्यं सनातनम् । द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सु संज्ञके ।।**

(देवीभागवत ०३.०६.०२-०३)

देवी ने कहा, 'हम दोनों के सूक्ष्म अन्तर को जो जान जाता है, वह बुद्धिमान संसार-सागर से पार हो जाता है। ब्रह्म एक ही है सृजन काल में दो जैसा लगता है। जैसे जलपात्र भेद से जलभेद, घटादि भेद से आकाशादि भेद, दर्पणभेद से प्रतिबिम्ब भेद, लकड़ी भेद से अग्नि भेद, उपकरण भेद से विद्युतभेद - ये सभी तत्व एक ही हैं, तदपि आश्रयभेद के कारण अनेक जैसे प्रतीत होते हैं। जल एक होने पर भी अपने ही घर में हमने एक टंकी के जल को पवित्र मान पूजा घर में प्रयुक्त किया; पूजा का जल, पाकशाला में, स्नानघर आदि में एक जल को अपवित्र घोषित कर सर्वप्रयोगानही बना लिया। पूजाघर की टंकी से शौचालाय का जल नहीं ले सकते। शौचालय के जल से पूजाघर का काम नहीं ले सकते। हे ब्रह्मन्! आकृति भेद से भिन्न से प्रतीत होते है; है नहीं। न मैं स्त्री हूँ, न पुरुष, न ही मैं षण्ड हूँ।'

**नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीबं सर्गसंक्षये**

(देवीभागवत ०३.०६.०७)

'कणमात्र भी मुझसे पृथक संसार में कोई नहीं है' - ये जान लो। जल में शैत्य, अग्नि में दहकता, सूर्य में ज्योतिरूप से मैं ही हूँ। निर्बल, परास्त, थका-गिरा प्राणी शत्रु वशवर्ती को कोई भी विष्णुहीन, शिवहीन, ब्रह्माहीन, रुद्रहीन नहीं कहता सब शक्तिहीन ही कहते हैं।

**रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल । शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम् ।।**

**................................................... । अशक्तः प्रोच्यते लोकः नारुद्रः कोपि कथ्यते ।।**

(देवीभागवत ०३.०६.१९-२०)

'हे ब्रह्मन्! मैं चाहूँ तो वायु की गति रोक दूँ, जल को सोख लूँ, अग्नि मिटा दूँ, अब आप इस महत्तत्व से सृजन करो। ये सरस्वती नामिका शक्ति सर्व रजोगुण समलंकृता है, मेरी इस विभूति का कभी तिरस्कार नहीं करना। जाओ सत्यलोक! अपना काम ठीक से करना। काल, कर्म, स्वभाव, गुण के अनुसार ही पूर्व के समान सृष्टि करो तथा विष्णु का सदा आदर करना। ये समय पर अवतार लेकर सबकी रक्षा करेंगे। शिव महाशक्ति के प्रतीक हैं। यज्ञादिकों में इनका तत्परता से ध्यान रखना। द्विजायोजित यज्ञों में आप सबकी तृप्ति होगीं। सदा नवाक्षर मन्त्र का जप करना।'

ब्रह्माजी कहते हैं, 'हे नारद! इस प्रकार महामाया ने विष्णु को महालक्ष्मी प्रदान कर वैकुण्ठ दे दिया तथा शिव और विष्णु का अभेद सिद्ध किया था। इनमें भेद करने वाला नरक जाता है।

**यो हरिः सः शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः ।**

**एतयोर्भेदमातिष्ठन् नरकाय भवेन्नरः ।।**

(देवीभागवत ०३.०६.५५)

देवी ने विष्णु से कहा, 'तुम कैवल्यप्रद **ऐं ह्रीं क्लीं** (वाग्बीज, कामबीज, मायाबीज) मन्त्र का जप करते रहना। तदनन्तर महादेव को महागौरी प्रदान करके कैलाश प्रदान कर दिया। हे शिव! तीन गुणों से रहित कुछ है नहीं - मुझसे सत्, सत् से अहंकार, अहंकार से महत्तत्व है।'

**महत्तत्वं हि कार्यं स्यात् अहंकारो हि कारणम्**

(देवीभागवत ०३.०६.७५)

इस अहंकार से ही पञ्चतन्मात्राएँ होती हैं। ये पञ्चतन्मात्राएँ ही पञ्चमहाभूत बनते हैं। इन पञ्चमहाभूतों के राजस् अंश से पाँच

*****************************************************************************************

कर्मेन्द्रियाँ होती है। अहं के सात्विक अंश से ज्ञानेन्द्रियाँ बनती हैं। इस प्रकार दस इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत और एक मन ये षोडषात्मक गण हो गया।

**: अहंकार - सात्विक ज्ञान शक्ति :**

| अन्तःकरण | देवता | कार्य |
|---|---|---|
| मन | चन्द्र | संकल्प |
| बुद्धि | ब्रह्मा | निर्णय |
| चित्त | विष्णु | चिन्तन |
| अहंकार | शिव | संचालन |

**: अहंकार - राजस् क्रिया शक्ति :**

| कर्मेन्द्रिय | कार्य | प्राणभेद | स्थानभेद | देवता |
|---|---|---|---|---|
| वाक् | वचन | प्राण | हृदय | अग्नि |
| पाणि | आदान | अपान | गुदा | इन्द्र |
| पाद | विहार | व्यान | सर्वशरीर | विष्णु |
| पायु | विसर्ग | उदान | कण्ठ | यम |
| उपस्थ | आनन्द | समान | नाभि | प्रजापति |

**: अहंकार - तामस् ( द्रव्यशक्ति/अर्थशक्ति ) :**

| महाभूत | तन्मात्रा | इन्द्रियाँ | कार्य | देवता |
|---|---|---|---|---|
| आकाश | शब्द | श्रोत्र | श्रवण | दिग्देवता |
| वायु | स्पर्श | त्वक् | स्पर्श | वायु |
| अग्नि | रूप | चक्षु | दर्शन | सूर्य |
| जल | रस | जिह्वा | आस्वादन | वरुण |
| पृथ्वी | गन्ध | घ्राण | आघ्राण | अश्विनीकुमार |

**: पञ्चीकरण प्रक्रिया ( एक अवलोकन ) :**

| | **पृथ्वी** | **जल** | **तेज** | **वायु** | **आकाश** |
|---|---|---|---|---|---|
| **पृथ्वी** | अस्थि | मांस | मेदा | त्वचा | रोम |
| **जल** | बिन्दु | शुक्र | मूत्र | स्वेद | लार |
| **तेज** | आलस्य | कान्ति | क्षुधा | तृषा | निद्रा |
| **वायु** | आकुंचन | चलन | वहन | धावन | प्रसारण |
| **आकाश** | भय | मोह | क्रोध | काम | शोक |

अर्थात् पृथ्वी +पृथ्वी =हड्डी, पृथ्वी +जल =मांस, पृथ्वी +तेज =मेदा, पृथ्वी + वायु = त्वचा, पृथ्वी + नभ = रोम। इसी प्रकार सबको जान लेना चाहिए।

ब्रह्माजी कहते हैं, 'हे नारद ! इस प्रकार हमको विमान पर बैठाकर उन आद्यशक्ति ने विदा कर दिया। क्षणमात्र में न हम स्त्री रहे, न मणिद्वीप रहा। मात्र जल प्लावित सागर रहा। हम रहे और हमारे साथ हमारी शक्तियाँ रहीं।'

ब्रह्माजी से नारद ने कहा, 'हे पिताजी ! सगुणा शक्ति को जानकर अब मेरा मन र्निगुण शक्ति के लिए लालायित है।' ब्रह्माजी ने

कहा, 'वत्स नारद! निर्गुण पराम्बा को इन नेत्रों से नहीं देखा जा सकता। हाँ! ज्ञान द्वारा अनुभव किया जा सकता है। एक पहचान है इन जीवों में जो चैतन्य शक्ति है, वही ब्रह्म है। इनके बिना संसार में किसी वस्तु की कोई सत्ता नही है।

**चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तदविद्धि परात्मकम्**

(देवीभागवत ०३.०७.१२)

छहों शास्त्रों का निष्णात विद्वान भी वैराग्य के बिना इस तत्व को नहीं जान सकता। जैसे पित्त प्रकोपाक्रान्त जिह्वा रस को, नेत्र वर्ण को नहीं जान सकते। सर्वत्र कटुता व पीतत्व ही उन्हें दिखता है, तब निर्विशेष ब्रह्म का ज्ञान तो दुष्कर है ही। नारद! जिस क्षण ये प्राणी अहंकार शून्य हो जायेगा उसी क्षण ब्रह्मबोध अन्तर में ही हो जायेगा। भटकाव खत्म!' नारदजी ने पूछा, 'पिताजी! तीनों गुणों का स्वरूप क्या है? कृपया उनकी विशेषताओं सहित बताइए।

ब्रह्माजी ने नारद से कहा, सात्विक अहंकार से ज्ञान शक्ति होती है। राजस् अहंकार से क्रिया शक्ति होती है। द्रव्य शक्ति तामस अहंकार से होती है। तामसी द्रव्यशक्ति से पञ्चतन्त्रन्मात्राएँ होती हैं – आकाश (शब्द), वायु (स्पर्श), अग्नि (रूप), जल (रस) व पृथ्वी (गन्ध)। इन दसों से ब्रह्माण्ड का सृजन होता है। राजसी क्रिया शक्ति से ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा व घ्राण), कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, मलेन्द्रिय व मूत्रेन्द्रिय) तथा पञ्चप्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान) होते है। ये राजस सृष्टि है, इसका उपादान कारण चित् वृत्ति है।

**: सात्विकी ज्ञान शक्ति :**

| **ज्ञान** | **इन्द्रिय** | **देव** | **अन्तःकरण** |
|---|---|---|---|
| दिशा | मन | चन्द्र | संकल्प |
| वायु | बुद्धि | ब्रह्मा | निश्चय |
| सूर्य | चित्त | वासुदेव | चिंतन |
| वरुण | अहंकार | शिव | संचालन |

पञ्चीकरण की प्रक्रिया पीछे देख चुके हैं – आकाश में शब्द है। वायु में शब्द, स्पर्श है। अग्नि में शब्द, स्पर्श, रूप, हैं। जल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, हैं। पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का सृजन होता है।

## त्रिविधा श्रद्धा तीर्थफल; भावभेद से एक ही द्रव्य सुखद व दुखद है; सर्वाराध्य भगवती हैं; सत्यव्रत की सत्यनिष्ठा; पाण्डवों का यज्ञ निष्फल क्यों? पाण्डवों का यज्ञ द्रव्य वैगुण्य का फल; विष्णु-कृत देवी का यज्ञ; सुदर्शन का चरित्र; मनोरमा भरद्वाजाश्रम में गयी

ब्रह्माजी ने कहा, हे नारद! श्रद्धा तीन प्रकार की होती है – सात्विक, राजसिक व तामसिक। सत्वगुण श्वेतवर्ण का है। धर्मरुचि व सात्विक प्रेम-सत्य-शौच-कोमलता-श्रद्धा-क्षमा-धृति-दया-शान्ति-लज्जा सन्तोष – ये सात्विक श्रद्धा के उत्पादक हैं। राजस् गुण रक्तवर्ण का है। अप्रेम ईर्ष्या, मात्सर्य, स्तम्भन, उत्कण्ठा, निद्रा, अभिमान, घमण्ड, मानसिक विकार – ये राजसिक श्रद्धा के उत्पादक हैं। तामस गुण कृष्णवर्ण का है। मोह, विचार, आलस्य, निद्रा, दीनता, भय, विषाद, कायरता, कुटिलता, क्रोध, नास्तिकता, दोष-दृष्टि (परसन्तापप्रदायिनी प्रवृत्ति) – ये तामसिक श्रद्धा के उत्पादक हैं। हे नारद! इन तीनों गुणों की स्वतन्त्र उपस्थिति नहीं होती, कोई एक प्राधान्येन रहकर दो को अभिभूत किये रहता है।

हे नारद! तीर्थयात्रा का फल है अन्ततः मुक्ति होना (अर्थात् पाप संस्पर्श शून्य होना और पापकर्म न करना)। काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, परदोषदर्शन, ईर्ष्या, सहनशीलता का अभाव, अशान्ति – ये जब तक शरीर से न हटें, तबतक तीर्थवास व्यर्थ है। जैसे कोई किसान विषम भूमि को परिश्रम से सम करके जलासेकपूर्वक उत्तम खाद सहित उत्तम बीज बोकर उसकी

रक्षा करे। अन्ततः कदाचित् जंगली जन्तु उस फसल को खा जायें, तो वह निराश ही होगा। ठीक वैसे ही, अत्यन्त कठिनतापूर्वक किया गया तीर्थरूपी फल उसे हमारे काम, क्रोधादि चटकर जायें तो निराशा नहीं होगी?

**भक्षितः शलभैः सर्वं निराशश्च कृतः पुनः। तद्वत्तीर्थ श्रमः पुनः कष्टदो न फलप्रदः ।।**

(देवीभागवत ०३.०८.२८)

अतः वेदान्तदर्शन से प्राप्त सात्विक वृत्ति से वैराग्य पाने का प्रयत्न करें। लोभ से रजोगुण तथा मोह से सतोगुण बढ़ता है। जब व्यक्ति का विश्वास वेदानुमोदित मार्ग से उठने लगे, तब जानो वह तमोगुणी हो रहा है।

ब्रह्माजी ने कहा, 'हे नारद ! सत्वादि गुणों के कारण एक ही व्यक्ति में विभिन्न भाव और विचारों में वैषम्य देखा जाता है। किसी समय वे किसी को सुखद तथा किसी समय वे किसी को दुखद हो जाते हैं; जैसे सर्वाङ्ग सुन्दरी सर्वाभरणभूषिता नारी पति को प्रीति देती है, तो अपनी सौतों को (पति की दूसरी पत्नियों को) तो ताप ही देगी। जैसे राजा की सेना प्रजा की रक्षा कर सुख देती है, किन्तु चोरों-डकैतों को तो दुःख ही देगी। जैसे घनघोर घटाच्छादित रिमझिम वर्षा किसान को सुख देगी, किन्तु कुछलोग उसे दुर्दिन कहकर कोसते हैं; जैसे जिनकी छत ठीक न हो या झोपड़ी न हो, उन्हें कष्टकारक होती है, ऐसी ही इन गुणों की स्थिति है।'

'हे नारद ! सत्व गुण सूक्ष्म, प्रकाशक, स्वच्छ, निर्मल एवं विशद होता है। जब मन में हल्कापन रहे, आनन्द-सा रहे, उपासना में मन लगे, शास्त्र की चर्चा अच्छी लगे; तब समझो सत्वगुण बढ रहा है। जब जम्भाई, तन्द्रा, निद्रा, आलस्य, तथा मन की चञ्चलता रहे, कामनाएँ बढ़ें, तब रजोगुण की वृद्धि जानें। जब कामाधिक्य हो, विवादग्रस्त मन हो, नींद-सी में ही मन लगे; तब तमोगुण अधिक समझा जाये। हे नारद ! जैसे तेल-बाती और आग परस्पर विरोधी होते हुए भी मिलकर ही प्रकाश दे सकते हैं (पृथक-पृथक नहीं), ठीक वैसे ही ये तीनों गुण विरोधी होने पर भी मिलकर ही सृष्टि कर लेते हैं।'

नारदजी कहते हैं, 'हे व्यासजी ! भगवती के '**ऐं**' बीज का जप करने से सत्यव्रत ने सिद्धि प्राप्त की थी।

सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियो ! जनमेजय ने व्यासजी से पूछा, 'हे महर्षे ! सत्यव्रत कौन था, मात्र '**ऐं**' बीज से कैसे सिद्धि प्राप्त हो सकी? कृपया स्पष्ट करें।' व्यासजी बोले, 'हे राजन् ! सन्तसमाज में प्रसिद्ध कथा नैमिषारण्य तीर्थ में ब्रह्मपुत्रों के मध्य हुई थी। उस सभा में महर्षि जमदग्नि ने आकर पूछा कि वास्तव में उपासना किसकी करनी चाहिए? ये भारी आशंका है।

**आराधनीय तमः कोत्रः वाञ्छितार्थ फलप्रदः**

(देवीभागवत ०३.१०.११)

उन्होंने पूछा, 'कौन आराध्य है?' तब लोमश ऋषि ने उत्तर दिया, 'हे मुने ! महामाया-महाशक्ति का समर्चन करना चाहिए, क्योंकि वहीं सकल प्रपञ्च की जीवनी-शक्ति उत्पादिका व संरक्षिका हैं, एक इतिहास है।

**रलयोरभेदः इति रोमशः लोमशो वा यावत् रोमणि न शीर्यन्ति तावत् कल्पात्मकं यस्य वयः स एव रोमशः यावन्ति संख्याकानि रोमाणि तावत् कल्पात्मकं वयः**

'हे ऋषियो ! कौशल देश में देवदत्त नामक एक ब्राह्मण था। उसने पुत्रेष्टियज्ञ में गोभिल नामक वृद्ध ब्राह्मण को उच्चारण दोष के कारण '**मूर्ख**' कह दिया। फलतः गोभिल ने शाप दिया – 'अरे पापात्मा ! मुझ विद्वान वृद्ध का अपमान करते हो। अतः तुम्हें मूर्ख-पुत्र होगा।' देवदत्त के बार-बार क्षमा माँगने पर गोभिल ने संशोधन किया कि समय आने पर वह भगवतीकृपा से विद्वान् हो जायेगा। देवदत्त को उतथ्य नामक पुत्र हो गया। बारह वर्ष तक प्रयत्न करने पर वह उतथ्य संध्या तक न सीख सका। गुरु और पिता परास्त हो गये। संसार में अपमान की पराकाष्ठा होने पर, हँसी होने पर माता-पिता से भी तिरस्कृत होने पर, उतथ्य ने ग्लानिवश वन की ओर प्रस्थान किया तथा सत्य बोलने का निर्णय किया। वहाँ वह गंगा किनारे रहने लगा।

**नियमं च परं कृत्वा ना सत्यं प्रव्रबीम्यहम्**

(देवीभागवत ०३.१०.६५)

************************************************************************************

लोमशजी ने कहा, 'हे महात्माओं ! बिचारा उतथ्य तो कुछ जानता ही नहीं है। आचमन तक नहीं जानता। देवार्चन या दुर्गापाठ की तो बात ही क्या? वह तो अमन्त्रक गंगास्नान शूद्रवत् करता था।'

**स्नानं च शूद्रवत्तत्र गंगायां मन्त्रवर्जितम्**

(देवीभागवत ०३.११.०५)

लोमशजी ने आगे कहा, 'हे महात्माओं ! वह उतथ्य फलादि से पेट भर लेता था। हाँ ! उसका नियम कि सत्य ही बोलूँगा, तो उसका नाम '**सत्यतपा**' हो गया। उसके मन में भारी पीड़ा थी – 'ब्राह्मण होकर भी मूर्खत्व'। उसके मन में विचार आता था– 'इससे तो मर जाना ही भला है।'

**जीवितं धिक् च मूर्खस्य तद्यथा मरणं ध्रुवम्**

(देवीभागवत ०३.११.०९)

जैसे वन्ध्या स्त्री, निष्फल वृक्ष, अदुग्धा गौ और विनयरहित विद्या व्यर्थ हैं; वैसे ही मैं भी व्यर्थ ही हूँ। निश्चित ही मैंने पूर्वजन्म में पुस्तक दान, उपासना, विद्यादान, विप्रार्चन नहीं किया, तीर्थ अथवा साधु सेवन नहीं किया। इस प्रकार चौदह वर्ष शोकपूर्वक बीत गये। उस ब्राह्मण ने कोई जप या तप नहीं किया।

एक दिन भयभीत वराह के पीछे एक शिकारी आया। मृत्यु भयाकुल शूकर के मुख से '**ऐ**'-'**ऐ**' अव्यक्त वाग्बीज (विन्दुरहित) निकल रहा था। बस ! यही मन्त्र उतथ्य के मुख से निकल गया। शिकारी ने उतथ्य को सत्य शपथपूर्वक पूछा, 'महाराज ! मेरे कुल के भरण का यही साधन है, धर्म है। मुझे वराह बताइये कहाँ है? ये मेरी वृत्ति विधाता ने बनाई है।'

**वृत्तिर्ममैषा विहिता विधात्रा नान्यास्ति विप्रेन्द्र ऋतं ब्रवीमि**

(देवीभागवत ०३.११.३२)

अब तो सत्यव्रत को भारी धर्मसंकट ... ...! क्या करें? सत्य बोले तो शूकर का वध, असत्य बोले तो प्रण-खण्डित होता है। पर वह सत्य भी क्या सत्य, जो हिंसामूलक हो; दयान्वित असत्य ही ठीक है। जिससे प्राणी का हित हो, वही सत्य है।

**सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा दयान्वितं चानृतमेव सत्यम् ।**
**हितं नराणां भवतीह येन तदेव सत्यं न तथान्यथैव ।।**

(देवीभागवत ०३.११.३६)

फलतः उतथ्य के '**ऐ**' उच्चारण करने पर भगवती का प्रसाद उस पर हो गया था। वाल्मीकि की तरह उसके मुख से यह श्लोक निकला – 'अरे बधिक ! जो देखता है, वह बोलता नहीं। जो बोलता है, उसने देखा नहीं। बार बार क्या पूछते हो?'

**या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति ।**
**अहो व्याध स्वकार्यार्थिन् किं पृच्छसि पुनः पुनः ।।**

(देवीभागवत ०३.११.४१)

उत्तर सुनकर शिकारी लौट गया। इसी बीजमन्त्र की साधना से सत्यव्रत उद्भट विद्वान हो गया। 'हे ऋषियो ! उसके माता-पिता, जिन्होंने उसे निकाल दिया था, वही मानपूर्वक उसे घर ले गये। वास्तव में ये संसार बहुत मतलबी है।

**येन त्यक्तः पुरा तेन गृहं नीतो तिमानितः**

(देवीभागवत ०३.११.४६)

अतः भगवती पराम्बा ही ध्येय-पूज्य-आराध्य-स्मरणीय है। 'अभावग्रस्त प्राणी ने निश्चित माता की आरधना नहीं की' – ये सत्य है। हे जनमेजय ! इसीलिए तुम भगवती का यज्ञ वैदिक विधिपूर्वक ही करो।'

व्यासजी महाराज ने सात्विक्, राजस्, तामस् भेद से यज्ञ का विधान कहा। पवित्र यजमान द्वारा पवित्र समय में पवित्र पदार्थों

*****************************************************************************************

से निष्कामभावपूर्वक कृत यज्ञ, सात्विक द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि, मन्त्रशुद्धि से यज्ञ का पूर्ण फल प्राप्त होता है। विचार करो – त्रेता में दशरथ ने पुत्रेष्टियज्ञ करके निर्मल चार पुरुषार्थ रूप चार पुत्र प्राप्त किये।

किन्तु अभी द्वापर के अन्त में श्रीकृष्णोपस्थिति में पवित्र धर्मराज जैसे यजमान का व्यास–भरद्वाजादि श्रेष्ठ विद्वानों ने राजसूय यज्ञ कराया; तदपि यज्ञ का परिणाम मासभर में ही जुआ में राष्ट्रापहार, द्रौपदी–चीरहरण, वनवास, विराट के घर नौकरी, कीचकत्रास। क्या यही है यज्ञ का फल? क्या यही है ब्राह्मणों का आशीर्वाद?

**वनवासो महत्कष्टं क्व गतं मखजं फलम्**

०३.१२.१३

'द्रौपदी की रक्षा कोई न कर सका।' क्या कारण हुआ … … ? कहीं–न–कहीं गडबड़ तो रही ही है। यदि कोई '**भवितव्यता**' कहकर इसे टालना चाहेगा तो फिर यज्ञविधान, भगवत्कृपा, विप्राशीर्वाद – सब निरर्थक माने जाएँगे। वर्णाश्रम धर्म व्यर्थ ही होगा क्योंकि जब ये सब कथमपि संकटनिवारण नहीं कर सकते, तो ये पाखण्ड ही है। ऐसा नास्तिक या निन्दक तो कहेगा ही। आस्तिक भी विचलित होकर कहने लगेगे। विश्वरूप के कर्ता ने वैगुण्य से इन्द्र द्वारा उसका वध किया – (कर्तावैगुण्य)। त्वष्टाकृत यज्ञ का परिणाम वृत्र वध हुआ – (मन्त्रवैगुण्य)। रावण कृत यज्ञ निष्फल हुआ – (भाव वैगुण्य)।'

'राजस् यज्ञ का परिणाम भी राग–द्वेषमूलक ही होता है। पाखण्डपूर्वक विधिहीन यज्ञ तामस् यज्ञ होता है, उसका फल भी विपरीत ही होता है। सात्विक यज्ञ और मानस यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। मन द्वारा ही आचार्य, द्रव्य, मन्त्र, काल–व्यवस्था का निर्धारण करके किया जाने वाला यज्ञ ही श्रेष्ठ होता है। इडा, पिंगला, सुषुम्ना मार्गाभिलम्बी आरण्यक ही इस यज्ञ को सम्पन्न कर सकता है। हे राजन्! मानस यज्ञ के अतिरिक्त सभी यज्ञ क्षयोन्मुख है, यही मात्र मोक्षदाता है।'

**राजन्नैव कृतो यज्ञो मोक्षदो नाम संशयः । अन्ये यज्ञाः सकामस्तु प्रभवन्ति क्षयोन्मुखाः ।।**

(देवीभागवत ०३.१२.६०)

'हे राजन्! अभी एक तामस् सर्पयज्ञ आप भी कर चुके हैं। परीक्षत की मृत्यु शोचनीय है – कुशासन/भूमि पर नहीं, अन्तरिक्ष में प्राण गये। अब अपने पिता के उद्धार के लिए आत्मकल्याणार्थ देवीयज्ञ करो। तुम्हारे पिता ने मरण का ज्ञान होने पर भी शरीर–रक्षण पर ध्यान दिया, भगवती के आराधन पर नहीं; फलतः वे चिन्त्य हैं। सुरक्षा के लिए इतना प्रयत्न किया; वैराग्यपूर्वक योग–ध्यान द्वारा भजन नहीं किया।' यह सुनकर जनमेजय रोने लगा, 'अपने पिता का नरक से कैसे उद्धार कर सकूँगा?'

जनमेजय के पूछने पर व्यासजी ने कहा, 'राजन् ! मणिद्वीप दर्शनोपरान्त तीनों देव महासागर में आये, जहाँ भगवती की कृपा से पृथ्वी 'अचला' हो गयी थी। इसकी स्थिरता के लिए विभिन्न महीधर (पर्वत) बने। मानव सृष्टि का विकास ब्रह्मा के मानसिक पुत्र मरीचि, नारद, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष व वसिष्ठ हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप के तेरह विवाह (दक्ष कन्याओं से) हुए, सारे संसार में काश्यपी सृष्टि फैल गयी।

ब्रह्मा के दाहिने अंग से स्वयंभू तथा बाएँ अंग से शतरूपा हुई। उत्तानपाद के प्रियव्रत नामक पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ हुईं। ब्रह्माजी ब्रह्मलोक में, विष्णु वैकुण्ठ में तथा शिव कैलाश पर रहने लगे। इसी प्रकार स्वर्ग में इन्द्र रहने लगे। एक दिन सहसा विष्णु ने देवी यज्ञ का संकल्प कर लिया। अद्‌भुत यज्ञ की पूर्णता पर महामाया ने उन्हें श्रेष्ठत्व सर्वपूज्यत्व होने का वर दिया, 'हे विष्णो! अपने विभिन्न अवतारों में मेरी आंशिक शक्तियों द्वारा लोककल्याण करोगे। विशेषकर भारतवर्ष में मेरी शक्तियाँ सर्वफलप्रद होंगी।'

**नूनं ता भारते खण्डे शक्तयः सर्व कामदाः**

(देवीभागवत ०३.१३.४९)

यज्ञ पूर्ण हो गया। विष्णु वैकुण्ठ चले गए। तब से सभी देव और मनुष्य देवीयज्ञ द्वारा भगवती का आराधन कर अभीष्ट पाने लगे।

**************************************************************************************

व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! ध्यान से सुनो! जगदम्बा की महिमा अपार है। कौशल देश में सूर्यवंशी एक राजा पुष्यपुत्र ध्रुवसन्धि हुए। वर्णाश्रमानुरूप प्रजा का पालन करने वाले राजा की दो पत्नियाँ थीं – मनोरमा (कलिंग देश के राजा वीरसेन की पुत्री)तथा लीलावता (उज्जैनी देश के राजा युधाजित् की पुत्री)। मनोरमा से सुदर्शन नामक उत्तम गुणयुक्त पुत्र तथा लीलावती से चञ्चल शत्रुजित् नामक पुत्र हुए। '**मञ्जुवाक्चारुदर्शनः**' (मीठी चटपटी बातें करने वाला) शत्रुजित् सबको विशेष प्रिय था, जबकि शान्त गंभीर सुदर्शन आदरपात्र था। एक दिन मृगया खेलते राजा ध्रुवसन्धि को सिंह ने मार दिया। सैनिकों ने सिंह को मार दिया, राजा के और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्नकर गुरु वसिष्ठ की सहमति से मन्त्रियों ने श्रेष्ठ व ज्येष्ठ सुदर्शन को राजा घोषित किया। तबतक शत्रुजित् के नाना उज्जैनीनरेश युधाजित् तथा सुदर्शन के नाना वीरसेन सेना लेकर आ गये। दोनों में विवाद होने लगा कि राजा सुदर्शन हो या शत्रुजित्। युद्ध होने लगा। उस भयंकर महासमर में युधाजित् ने वीरसेन को मार दिया। सेना भाग गयी, मनोरमा भी भयभीत हो पुत्र सहित एक सैरन्ध्री को लेकर महल से निकल गयी। पूर्व में इन्द्र ने अपनी मौसी दिति के पुत्रों को मार दिया था, कैकेयी ने राम को वनवास दिया था, सगर के पुत्रों को गरल (जहर) उनकी सौतेली माँ ने ही दिया था।' ये लोभ भी क्या नहीं कर सकता? किसको इसने अपने वश में नहीं किया?'

**लोभऽतीव च पापिष्ठस्तेन को न वशीकृतः**

(देवीभागवत ०३.१५.२१)

'अब मेरा रक्षक कोई नहीं है' – यह सोचकर मन्त्री विदल्ल की योजनानुसार रानी मनोरमा, पिता को देखने के बहाने लीलावती से अनुमति लेकर रथ पर सवार होकर युधाजित से मिली तथा पिता वीरसेन का अन्तिम संस्कार करके गंगातट पर पहुँची। बिचारी विपत्ति की मारी का चोरों ने रथ तथा धन सब छीन लिया। फिर भी वह भरद्वाज के आश्रम में पहुँच गयी। विनाश में, पराजय में तथा महान संकट के समय भी धैर्य नहीं खोना चाहिए, सब कुछ खत्म कभी नहीं होता। जब तक देह है, तब तक उठने की सम्भावना बनी ही रहती है। अत्यन्त भयवश शोकाकुला रानी महाराज को अपना परिचय भी न दे सकी। तब मन्त्री विदल्ल ने यथार्थ वृतान्त महर्षि को बताया। भरद्वाजजी ने कहा, 'बेटी! निर्भय रहकर पुत्र का पालन करती हुई, गम की अंधेरी रात में मन को न उदास कर। सुबह तो आयेगी जरूर, सुबह का इन्तजार कर।' भारद्वाज मुनि ने मनोरमा को सान्त्वना देते हुए कहा, 'तपश्चरणपूर्वक समय की प्रतीक्षा करो। तुम्हारा पुत्र अयोध्या का राजा बनेगा।'

**निर्भया वत्स कल्याणि पुत्रं पालय सुव्रते । नात्र दुःखं तथा शोकः यं कदाचित्संभविष्यति ।।**

(देवीभागवत ०३.१५.६०)

## युधाजित् ने आश्रम पर आकर सुदर्शन को मारना चाहा; मन्त्री द्वारा युधाजित् को वसिष्ठ -विश्वामित्र की कथा कहना; विश्वामित्र व वसिष्ठ की कथा; शशिकला का सुदर्शन के प्रति पूर्णराग; शशिकला ने दृढ़तापूर्वक सुदर्शन को सन्देश भेजा; सुदर्शन का स्वयंवर के लिए प्रस्थान

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! युधाजित् ने शीघ्र ही अपने दौहित्र शत्रुजित् को वसिष्ठजी एवं मन्त्रियों के सहयोग से अभिषिक्त कर दिया।* उज्जैन जाकर युधाजित को पता चला कि भरद्वाज के आश्रम में मनोरमा सुदर्शन के सहित रहती है, तो वह सेना सहित अपने मित्र शृंगवेरपुराधीश दुर्दश को ले भरद्वाजजी के आश्रम पर आ गया। मनोरमा महाराज के चरणों में जाकर रोने लगी तथा द्रौपदी तथा बलि का प्रसंग सुनाया, 'हे महात्मन्! सन्तों की शरण में वनवासी पाण्डवों की महारानी द्रौपदी का अपमान उनका अपहरण

---

* यहाँ वसिष्ठजी का सिद्धान्त समझ से परे है। उन्हें सुदर्शन भी मान्य है और शत्रुजित् भी मान्य है। ऐसा लगता है; जैसे राम की जय जय और रावण की भी जय जय। वास्तव में क्या ये निरपेक्ष हैं; जो सत्ता पर आसीन है, उसी से धर्मपूर्वक शासन करना उनका लक्ष्य है?

करके जयद्रथ ने किया था। अतः किसी का विश्वास करना उचित नहीं है।'

मनोरमा ने रोते हुए कहा, 'हे मुनिवर! राजा बलि ने वामनभगवान् का विश्वास कर लिया, तो पाया दुःख क्लेश। सत्यसंध, धर्मात्मा-यज्ञोपासक-महादानी-शरणागतरक्षक था, उस धर्मशील राजा को कपट वामन ने ठग लिया था। हे महाराज! जब विष्णु जैसे भी ऐसे कर्म कर सकते हैं; तब दूसरों की बात ही क्या है?'

**अन्यः किं करोत्येवं कृतं वै सत्वमूर्तिना**

(देवीभागवत ०३.१६.४६)

'हे ऋषे! लोभाविष्ट व्यक्ति का दान, धर्म, स्वाध्याय, तप, यज्ञ, तीर्थ - सब व्यर्थ ही होता है।'

**वृथा तीर्थं वृथादानं वृथाध्ययनमेव च। लोभमोहावृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत् ।।**

(देवीभागवत ०३.१६.५५)

'महाराज! कैसे भी इसको वापिस कर दीजिए। मैं बिना राज्य के एकाकी पुत्र सहित सीता की तरह रह लूँगी।' भरद्वाजजी ने युधाजित् से कहा, 'राजन्! तुम चले जाओ! मनोरमा तुमसे मिलना नहीं चाहती।' इस पर राजा साभिमान बोला, 'रे महात्मन्! हठ त्यागो और मनोरमा मुझे दे दो, अन्यथा मैं बलपूर्वक उसे ले जाऊँगा।'

**मुने मुञ्च हठं सौम्य विसर्जय मनोरमाम् । न च यास्याम्यहं मुक्त्वा नेष्याम्यद्य बलात्पुनः ।।**

(देवीभागवत ०३.१६.५९)

भरद्वाजजी बोले, 'अरे राजन्! यदि तुममें शक्ति अधिक है तो ले जाओ ... ... ...'

**नयस्व यदि शक्तिस्ते कालेनाद्य ममाश्रमात्**

(देवीभागवत ०३.१६.६०)

... ... ... जैसे विश्वामित्र वसिष्ठाश्रम से गाय को ले गये थे। यहाँ भरद्वाजजी ने चेतावनी दे दी, 'तेरी ताकत है तो ले जाकर दिखा।' वसिष्ठ की मार तो विश्वामित्र पर देर में पड़ी, किन्तु मैं इतनी देर नहीं लगने दूँगा। तुझे निर्जीव निष्प्राण कर दूँगा। तू एक भारतीय नारी की ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकेगा।

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! युधाजित् ने मन्त्री से पूछा कि क्या करना चाहिए? शत्रु छोटा भी हो तो उपेक्ष्य नहीं होता। क्या मैं इस सुदर्शन को मार डालूँ?' मन्त्री ने कहा, 'हे राजन्! भरद्वाज ने गम्भीर वचनों मे चेतावनी देते हुए विश्वामित्र का दृष्टान्त दिया है; अतः यहाँ से महात्मा को प्रणाम करके चल देना ही श्रेयस्कर है, ये अत्यन्त समर्थ तपस्वी हैं। महाराज! गाधितनय-कुशिकवंशी विश्वामित्र नामक बलोन्मत्त राजा एक बार वसिष्ठ के अतिथि बने। ससैन्य राजा का उत्तमोत्तम प्रकार के पदार्थों से महात्मा वसिष्ठ ने स्वागत किया। निर्जन अरण्य में दिव्य सुविधासम्पन्न उपभोग देखकर राजा ने वसिष्ठजी से पूछा, 'महाराज! ये व्यवस्था कैसे सम्भव हुई?' वसिष्ठजी ने कहा, 'राजन्! ये सब नन्दिनी का प्रताप है।' राजा ने महात्माजी से नन्दिनी माँग ली, बदले में लाखों गायें देने का वचन भी दिया; किन्तु ऋषि ने निषेध कर दिया। बलाभिमानी राजा ने बलपूर्वक सेवकों द्वारा नन्दिनी का अपकर्षण प्रारम्भ किया। अश्रुलोचना सुरभि ने ऋषि से पूछा, 'महाराज! मुझे क्यों त्यागते हैं? - '**त्यजसि मां कस्मात्**'।

ऋषि ने कहा, '**त्यजेनाहं सुदुग्धदे**' (मैं नहीं त्यागता) हे गौ! ये राजा बलपूर्वक अत्याचार करता है। गौ ने हम्मा '**रवं चकार**' अपनी हुँकार से विविधास्त्रधारी वीर प्रकट कर दिये, जिन्होंने विश्वामित्र की सारी सेना को प्रज्वलित कर दिया। हे राजन्! तदनन्तर '**क्षात्रबल की अपेक्षा ब्रह्मबल ही श्रेष्ठ है**' - ऐसा मानकर विश्वामित्र तपस्या करने चले गये थे। अतः हे युधाजित्! आप भी महात्माओं से मत टकराओ। इनके साथ युद्ध में सर्वथा पराजय ही पराजय है। ईर्ष्या को त्यागकर अपने राज्य को चलो।'

युधाजित मन्त्री की बात माने और भरद्वाज को प्रणाम करके चले गये। मनोरमा सुखपूर्वक तापसी जीवन पद्धति से पुत्र सुदर्शन का पालन करने लगी। सहसा '**क्लीव**' शब्द के श्रवण से पूर्वजन्मार्जित संस्कारवश सुदर्शन ने '**क्लीं**' मन्त्र (कामराज बीज)

*************************************************************************************

का श्रद्धापूर्वक जप करना प्रारम्भ कर दिया। पञ्चवर्षीय बालक ने इस मन्त्र के प्रभाव से ग्यारहवें वर्ष में उपनयनोपरान्त शीघ्र ही साङ्गवेदाधिगम कर लिया।

**अभ्यस्ताः सकला विद्याः तेन मन्त्र बलादिव**

(देवीभागवत ०३.१७.४१)

एक दिन सुदर्शन ने गरुड़ारूढा रक्ताम्बरा वैष्णवी माँ के दर्शन किये – '**प्रत्यक्ष देवी रूपं ददर्श ह**'। भगवती ने उसे दिव्य धनुषबाण व कवच तूणीर भी दिये। उन्हीं दिनों काशिराज सुबाहुपुत्री शशिकला के कानों तक राज्यभ्रष्ट (किन्तु तेजस्वी–सर्वगुणसम्पन्न) सुदर्शन की ख्याति पहुँच गयी। स्वप्नगत जगदम्बा के आदेश से उसने सुदर्शन का वरण कर लिया। उपवन में क्रीड़ारत सखियों के मध्य एक पथिक ब्राह्मण ने भी आकर कहा, 'देवि ! भरद्वाजाश्रमवासी सुदर्शन तो तुम्हारे ही लिए बना है। वह भगवती का भक्त सर्वगुणसम्पन्न है।

**तव योग्यः कुमारो सौ भर्ता भवितुमर्हति**

(देवीभागवत ०३.१७.६२)

व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय ! शशिकला पूर्वरागवश सुदर्शन चिन्तन के कारण असहज–सी रहने लगी। कहीं चैन नहीं, शान्ति नहीं, भूख–प्यास–नींद; सब खत्म हो गयी। सुदर्शन को कामबीज की सिद्धि के प्रभाव से श्रृंगवेरपुर के राजा ने दिव्य रथ प्रदान किया। आश्रमवासी सब मिलकर सुदर्शन को भावी राजा ही मानने लगे थे। ये सब भगवती की कृपा का ही परिणाम था।

जिस अभागे ने अपने जीवन में भगवती का आराधन नही किया, उसका जन्म व्यर्थ ही हो गया। सकल प्रपञ्च के क्रिया–कलापों का निर्धारण भगवती द्वारा ही होता है। उनका भक्त कभी दुखी नहीं रह सकता। काशीराज ने स्वयंवर की घोषणा कर दी। शशिकला ने सखियों द्वारा अपनी माता को सुदर्शन सम्बन्धी आख्यान सुना दिया। रानी ने राजा से कहा। राजा ने कहा, 'देवि ! सुदर्शन राज्यहीन सन्त के आश्रम में पलने वाला एक सामान्य राजकुमार है। उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कैसे करूँ?'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन् ! शशिकला को गोद में बिठाकर उसकी माँ ने कहा, 'बेटी ! सुदर्शन राज्यहीन है। उसका भाई शत्रुजित् राजा है, उससे विवाह कर लो।' किन्तु शशिकला ने सुकन्या और च्यवन ऋषि का उदाहरण देकर कहा, 'माँ ! मुझे सुदर्शन ही अभीष्ट है।' गुप्तरीति से उसने स्वयंवर की सूचना भरद्वाजाश्रम में पहुँचा दी तथा माँ जगदम्बा का स्वप्नगत आशीर्वाद भी कहा, 'यदि आप नहीं आये, तो विष खाकर प्राणत्याग दूँगी। किन्तु किसी अन्य का वरण नहीं करूँगी।' सुदर्शन सन्देश प्राप्त कर भरद्वाजजी के आशीर्वाद से अपनी माँ को लेकर माता जगदम्बा की कृपा के बल से '**होनी तो होकर ही रहती है**' – ऐसा सोचकर चल दिया।

**भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्या विचारणा**

(देवीभागवत ०३.१९.३१)

मनोरमा ने भगवती के विभिन्न नामों से उसकी रक्षा के लिए अभेद्य कवच पाठ किया। सर्वदा सब देशों में भुवनेश्वरी रक्षा करें। सुदर्शन के वाराणसी पहुँचने पर सुबाहु ने स्वागत कर रहने–खाने की समुचित व्यवस्था कर दी। देश–देशान्तर के राजा पधारे। उनमें युधाजित् अपने दौहित्र शत्रुजित् को लेकर आया है, सुदर्शन का उपहास किया – 'एकाकी बिना सेना आकर उपहास का पात्र बना है मानो कन्या इसी का वरण करेगी'। युधाजित ने कहा, 'मैं इस सुदर्शन को मार दूँगा'। इसपर राजाओं ने युधाजित का विरोध किया।

## नीतिज्ञ राजाओं के मध्य सुदर्शन का कथन – 'मेरी संरक्षिका माँ जगदम्बा है'; शशि ने सुदर्शन को वरण किया; युधाजित का कोप; युधाजित् ने सुबाहु से कहा – 'विवाह सुदर्शन से नहीं हो सकता'; शशिकला की प्रतिज्ञा; रात्रि में विवाह दुष्ट राजाओं का कोप

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन ! युधाजित् शक्ति के घमण्ड में सुदर्शन को अभागा–दरिद्र कहता है, किन्तु राजसभा में सुबाहु की

*************************************************************************************

घोषणा हो गयी कि 'मेरी पुत्री ने सुदर्शन का वरण कर लिया है'। नीतिज्ञ राजाओं ने सुदर्शन से पूछा, 'हे सुव्रत ! तुम अकेले इन बलशाली राजाओं का समाना कैसे करोगे क्योंकि ये सभी तुम्हारा सामना करने को तैयार हैं।' राजाओं के पूछने पर सुदर्शन ने कहा, हे राजेन्द्रो ! यह सत्य है कि मेरा बल, मेरे मित्र, मेरी सेना, मेरे हितैषी नहीं दिखते; किन्तु मैं तो जगदम्बा की इच्छा से आया हूँ। उन्हीं के इशारे पर चलता हूँ; वही मेरी शक्ति है, संरक्षिका है।'

**अशक्तो वा सशक्तो वा यादृशस्तादृशस्त्वहम् । तदाज्ञया नृपाद्यैव सम्प्राप्तोऽस्मि स्वयम्वरे ।।**

(देवीभागवत ०३.२०.२८)

मेरी लाज माँ जगदम्बा है। मैं तो उनके अधीन ही जीता हूँ।

**भगवत्यास्तु लज्जास्ति तदधीनोऽस्मि सर्वथा**

(देवीभागवत ०३.२०.३०)

'हे राजाओं ! मुझे किसी का भय नहीं है। क्योंकि सारा संसार दैवाधीन है, कोई किसी को नहीं मार सकता।'

**तुलसी विरवा बाग के सींचत हुँ मुरझाय ।**
**रामभरोसे जे रहें ते पर्वत पर हरियाय ।।**

'मेरा किसी से वैर नहीं है। जो मुझसे वैर करेंगे, वे फल पायेंगे।' अगले दिन स्वयंवर सभा में सभी राजा सज-धजकर बैठे। कन्या की प्रतीक्षा ही करते रहे। किन्तु शशिकला ने कहा, 'पिताजी ! मैं एक का वरण कर चुकी, अब स्वयंवर में नहीं जा सकती। ये वारांगनाओं-जैसा व्यापार मुझसे नहीं होगा।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन् ! शशिकला की युक्तियुक्त बातें सुनकर सुबाहु चिन्तित हो उठे, अब क्या करें? विनम्र सुबाहु ने सभी राजाओं के सम्मुख अपनी परिस्थिति व्यक्त कर क्षमा माँग ली, किन्तु युधाजित् भड़क उठा – 'अरे ! पापिष्ठ ! राजाओं का अपमान कर एक निर्बल अभागे के साथ तू ... .. देखें ! मेरे रहते विवाह कर कैसे सकता है? मैं तुझको मारकर सुदर्शन को भी मौत के घाट उतार देता हूँ।'

**अहं त्वां हन्मि पापिष्ठ तथा पश्चात् सुदर्शनम्**

(देवीभागवत ०३.२१.१९)

युधाजित् ने भडकते हुए पुनः सुबाहु से कहा, 'अब भी संभल जा, सुबाहु ! अपनी कन्या शत्रुजित् को देकर अपनी भूल सुधार ले अथवा सुदर्शन को छोड़कर किसी से भी ये कन्या विवाह कर ले, तो मेरा विरोध नहीं। अन्यथा तेरी कन्या का अपहरण मैं कर लेता हूँ।' युधाजित् के वचनों से त्रस्त सुबाहु ने रानी को और रानी ने शशिकला को शतधा समझाया, किन्तु वे टस-से-मस नहीं हुई। उसने कहा, 'पिताजी ! सुदर्शन के अतिरिक्त अन्य का वरण मैं नहीं कर सकती।'

**नान्यं वृणोमि भूपाल सुदर्शन मृते क्वचित**

(देवीभागवत ०३.२१.३८)

उसने पिता से कहा, 'यदि आप डरते है; तो हमें रथ पर बिठाकर नगर से विदा कर दीजिए। अपने इष्ट पर, अपनी भक्ति पर, उपासना पर भरोसा ही किसी भी व्यक्ति को सफलता या विजय दिलाता है।' शशिकला व सुदर्शन की सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में भी चित्त, वृत्ति, आस्था अडिग ही रही; फलतः माँ को आकर उनकी रक्षा करनी ही पड़ी। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन् ! सुबाहु ने सभी राजाओं को विश्राम की प्रार्थना करके विदा किया तथा रात्रि में गोपनीय ढंग से शशिकला का विवाह सुदर्शन से कर दिया। भारी दहेज भी दिया तथा मनोरमा को प्रणाम किया। मनोरमा ने कहा, 'राजन् ! श्रेष्ठ-पूज्य-सम्माननीय तो आप हैं, जिन्होंने राज्यहीन राजकुमार को पुत्री देकर उसे सम्मानित किया है। लेने वाले से देने वाला सदा बड़ा होता है।

प्रातःकाल होते ही सबको पता चल गया कि 'विवाह हो गया' तो राजाओं ने युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दी। राजा सुबाहु ने सभी राजाओं को विनम्रतापूर्वक विवाहोपलक्ष्य में भोजन का निमन्त्रण दिया तो राजा भड़क उठे, 'हाँ-हाँ राजन् ! भोजन तो तुमने

**************************************************************************************

अच्छा कराया है। बड़ा सम्मान दिया यहाँ बुलाकर ...। अब इसका फल भी पा लेना।' सुबाहु भयभीत हो गये। इधर नीतिज्ञ सदाचारी राजा प्रसन्नतापूर्वक घरों को चल दिये। कुछ अमर्षी-विरोधी सामना करने के लिए मैदान में डटे रहे।

## युद्धभूमि में सुदर्शन रक्षार्थ भगवती माँ प्रकट हो गयी तथा युधाजित् को सैन्य सहित मार दिया; भगवती की कृपा से सुदर्शन अयोध्या के राजा बने; सुदर्शन ने विमाता लीलावती का सम्मान किया; नवरात्र का विधान; कन्यापूजन व सुशील वैश्य कथा

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! छः दिनों के उपरान्त सुबाहु ने सुदर्शन को शशिकला सहित विदा कर दिया। भगवती का निरन्तर ध्यान करने वाले सुदर्शन निर्भय चल दिये। साथ में सेना सहित सुबाहु भी चले। आगे जाकर विरोधियों की सेना ने उन्हें घेर लिया। शत्रुजित् व सुदर्शन में घोर संग्राम हो गया। अन्ततः जगदम्बा रोषपूर्वक भक्त रक्षार्थ प्रकट हो गयी।

**प्रादुर्बभूव सहसा देवी सिंहोपरि स्थिता**

(देवीभागवत ०३.२३.२०)

सुदर्शन तथा सुबाहु ने माता के चरणों में प्रणाम किया तथा निर्भय होकर युद्ध में डट गये। युधाजित् तो मद में अन्धा था। अतः भगवती की उपेक्षा करके सुदर्शन को मारने चला। तब कोप करके चण्डीरूपा माँ ने शत्रुसेना का संहार कर दिया। सुबाहु ने जगदम्बा की पावन स्तुति कर उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। भगवती ने प्रसन्न होकर सुबाहु से वर माँगने को कहा। सुबाहु ने माँ के चरणों में विनती करके वर माँगा, 'माँ! आपके चरणों में प्रीति बनी रहे तथा आप काशी में दुर्गा नाम से सदा स्थित रहें।' काशी में दुर्गाकुण्ड नाम से विख्यात क्षेत्र इन्हीं दुर्गा की कृपा का साक्षात् साकार विग्रह है। यहाँ पहुँचकर पूजा करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

माँ ने 'तथास्तु' कहकर सुदर्शन को भी वर दिया, 'वत्स! अयोध्या में धर्मपूर्वक शासन करो। नवरात्र विधि से उपासना करना। अयोध्या में मेरी मूर्ति स्थापना कर अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी को अवश्य पूजा करना। चैत्र, अश्विनी, माघ और आषाढ़ मास – इन चारों नवरात्रों को करना।' भगवती की कृपा होने पर सारे जगत् की कृपा हो जाती है। राजाओं ने मिलकर सुदर्शन को अपना नेता चुनकर अयोध्या का राज्य सौंप दिया। सारे नगर में उत्सव का वातावरण बन गया। सुदर्शन ने कहा, 'ये सब '**क्लीं**' (कामबीज) की कृपा से माता जगदम्बा का प्रसाद है।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! सुदर्शन ने सर्वप्रथम लीलावती के चरणों में प्रणाम कर उन्हें सान्त्वना दी, 'माँ! वे अपने कर्मवश जगदम्बा द्वारा मारे गये हैं। माँ! मैं आपकी सेवा करूँगा।' जैसे राम ने कैकेयी और ध्रुव ने सुरुचि को दोष न देकर प्रेरक माना, हितैषी माना। वैसे ही सुदर्शन ने अपनी विमाता लीलावती को आदर दिया। लीलावती ने भी सुदर्शन को पुत्रत्वेन स्वीकार कर मनोरमा के साथ बहिन-जैसा स्नेह दिखाया। सुदर्शन ने स्वर्ण सिंहासन पर जगदम्बा की प्रतिमा स्थापित कर, नगर में सबको भगवती की उपासना अनिवार्य कर दी। उधर काशी में भी सुबाहु ने भगवती दुर्गा की स्थापना कर पूजा आरम्भ कर दी'। जनमेजय ने पूछा, 'हे महर्षे! नवरात्र की विधि क्या है? तथा इसका फल क्या है?' व्यासजी ने कहा, 'राजन्! वसन्त तथा शरद् ऋतु यमदंष्ट्र कही जाती है।

**द्वावृतू यम दंष्ट्राख्यौ नूनं सर्वजनेषु वै**

(देवीभागवत ०३.२६.०४)

रोगोत्पादक इस काल में सावधान होकर प्रत्येक प्राणी स्वल्पाहार लेकर भगवती का आराधन करे। अल्पाहार, भूमिशयन, उपासनामय-जीवन और सात्विक-चिन्तन – इन सबके द्वारा व्यक्ति का आत्मबल बढ़ता है। ऋतु-परिवर्तन काल में जबकि प्रकृति में ही परिवर्तन होते हैं, तब व्यक्ति की रक्तसंचार प्रक्रिया में भी अस्थिरतावश रोगोंकी संभावना प्रबल हो जाती है। गोमयोपलिप्त पावनभूमि को बन्दनवार से सजाकर भगवती का सिंहासन स्थापित करें। घट की स्थापना करें, जौ बोयें। योग्य-तत्वविद् आचार्य के निर्देशन में योग्य ब्राह्मणों का वरण करें। स्वस्तिवाचनपूर्वक गणपत्यादि पूजनकर, पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्धादि करके,

***************************************************************************************

सर्वतोभद्रमण्डल या गौरीतिलक मण्डल पर उत्तमोत्तम कलश पर स्वर्णमयी भगवती की प्रतिमा स्थापित करे। तदनन्तर षोडशोपचार या राजोपचार भगवती का समर्चन करें। दाडिम (अनार), नारिकेल (नारियल), केला, बिल्वफलादि सहित यथोपलब्ध उत्तमोत्तम षड्रसोपेत नैवेद्य समर्पित करें। तदनन्तर विधिपूर्वक पञ्चभूसंस्कार व कुशकण्डिकापूर्वक भगवती की प्रीति के लिए होम करे। नित्य कन्यापूजन करें। नित्य एक कन्या का पूजन करें या नित्य एक संख्या बढ़ाकर करें। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक कन्या पूजन सम्पन्न करें।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! अधिकाङ्गी या हीनाङ्गी कन्या का पूजन में परिहार करें। रजोधर्मवती का भी पूजन न करें। सर्व कामार्थ ब्राह्मण कन्या का, विजयार्थ क्षत्रिय कन्या का, लाभार्थ वैश्य कन्या या शूद्र कन्या का पूजन करे। ब्राह्मण केवल ब्राह्मण कन्याओं का ही पूजन करें। क्षत्रिय ब्राह्मण और क्षत्रिय कन्याओं का; वैश्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कन्याओं का शूद्र चारों वर्णों की कन्या का पूजन करे।

नवरात्र में सब दिन पूजन न कर सके, तो अष्टमी को अवश्य करें। इसी दिन दक्षयज्ञ विनाश करने वाली भद्रकाली योगिनियों सहित उत्पन्न हुई थीं। महाष्टमी को अवश्य पूजन करें, भगवती का होम करे, ब्राह्मण भोजन करायें। नव दिन तक उपवास न कर सके तो सप्तमी, अष्टमी और नवमी अवश्य ही व्रत करें।

**सप्तम्यां च तथा अष्टम्यां नवम्यां भक्तिभावतः ।**
**त्रिरात्रकरणात्सर्वं फलं भवति पूजनात् ।।**

(देवीभागवत ०३.२७.१३)

मनोरथपूर्ति के लिए नवरात्र से उत्तम उपासना दूसरी नहीं है। पूजा-होम-कुमारीपूजन-ब्राह्मणभोजन - ये नवरात्र विधि हैं। बिना नवरात्रव्रत किये किसी को वैभव, यश, विद्या, बल, रूप नहीं मिल सकते। जिसके पास नहीं हैं, निश्चित ही उन्होंने पूर्वजन्मों में नवरात्र व्रत नहीं किया। स्वाहा-स्वधारूपा माँ भगवती महामाया का समर्चन जीवन में उत्कर्ष ही प्रदान करता है।

प्राचीनकाल में कौशल देश में एक निर्धन-निर्लोभी-सदाचारी-वृहत्कुटुम्बपालक एक सुशील नामक वैश्य था। अक्रोधी उस वैश्य ने ब्राह्मण से दारिद्रय निवृत्ति का उपाय पूछा।

**धनैषणा मे नैवास्ति कुटुम्बभरणार्थं वै पृच्छामि**

(देवीभागवत ०३.२७.३७)

'धनैषणा नहीं, किन्तु परिवारपालन के कारण पूछता हूँ। बालक भूखे हैं, कन्या विवाहयोग्य है। क्या करूँ?' ब्राह्मण ने नवरात्रव्रत उसे बता दिया तथा कहा, 'इसी नवरात्र व्रत के प्रभाव से राम ने रावण को मारकर सीता को प्राप्त किया था'। उस वैश्य ने नौ वर्ष तक निरन्तर इस व्रत का विधिपूर्वक पालन किया। तब भगवती ने उसे साक्षात् दर्शन दिये तथा वर भी दिये।

## संक्षिप्त राम कथा, नवरात्र विधि द्वारा उन्हें विजय प्राप्त हुई; लक्ष्मणद्वारा राम को सान्त्वना; नहुष की कथा; नारदगमन, नवरात्रोपासना व नारद द्वारा सीता का पूर्व-जन्मचरित्र; नारद के आचार्यत्व में श्रीराम ने नवरात्र व्रत किया

जनमेजय ने व्यासजी से पूछा, 'राम का राज्य क्यों छिना तथा सीताहरणोपरान्त राम ने क्या-क्या किया?' व्यासजी बोले, 'हे नरेन्द्र! त्रेता में अयोध्याधिपति दशरथ को तीन रानियों से चार पुत्र हुए - राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। विश्वामित्र की यज्ञरक्षा में राम ने ताड़का को मारा, सुबाहु को मारा, अहिल्योद्धार कर जनकपुरी में जाकर शिवधनुष को तोड़ने के उपरान्त सीता से विवाह कर लिया। लक्ष्मण का उर्मिला से, भरत का माण्डवी से, शत्रुघ्न का श्रुतकीर्ति से विवाह हुआ। राम युवराज बनने चले तो कैकेयी ने वनराज बनाकर चौदह वर्ष के लिए दण्डकारण्य भेज दिया। दशरथ रामविरह में दिवंगत हो गये। भरत राम की खडाऊँ के व्याज से अयोध्या की सेवाकर तपस्वी जीवन नन्दीगांव में जीने लगे। पञ्चवटी पर रावण द्वारा सीता का अपहरण हुआ।'

*************************************************************************************

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! सीता तो उस पापी की वाणी सुनकर काँप उठी। रावण ने उन्हें उठा रथ पर रख लिया। जटायु के साथ घोरयुद्ध में जटायु के पंख काटकर दुरात्मा ने सीता को अशोकवाटिका में रख दिया। इधर राम और लक्ष्मण जटायु का संस्कार करके कबन्ध का संहार कर, सुग्रीव को बालिवध करके वानरों का राजा बना दिया। यहीं राम-लक्ष्मण ने चातुर्मास्य व्रत भी किया। राम यहाँ अधीर होकर सीतास्मरण करते, कभी अयोध्या के घटनाक्रम पर प्रलाप करते, कभी अपने दुःख भरे जीवन को तथा भाग्य को उलाहना देते। लक्ष्मण उन्हें समयोचित काल की, भाग्य की, दैव की महत्ता सिद्ध करके सान्त्वना देते, 'हे राघवेन्द्र! सुख के बाद दुःख, दुःख के बाद सुख तो आते-जाते रहते हैं। चक्रपंक्ति की तरह, दिन-रात की तरह, धूप-छाव की तरह।

**सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । चक्र नैमिरिवैकं तन्न भवेद्रघुनन्दन् ।।**

(देवीभागवत ०३.२९.४७)

लक्ष्मण ने राम से कहा, 'हे राघव! इन्द्र के ब्रह्महत्याग्रस्त होने पर नहुष इन्द्र बने। इन्द्र एकान्त तप के बल से पुनः इन्द्र बने। किन्तु नहुष अपराधवश ऋषि शाप से सर्प बन गये। अतः भाई कभी भी दिन एक-जैसे नहीं रहते।'

व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! तभी नारदजी वीणा बजाते, हरिगुण गाते आ पहुँचे। राम ने उनका अभ्युत्थानादि द्वारा यथोचित सत्कार किया। नारद ने राम को उदास देखकर कहा, 'राघवेन्द्र! आपका अवतरण, सीताहरण, सुग्रीववरण, सागर पर सेतुकरण – सब रावणमरण के लिए ही हो रहा है। हे राम! एक पुरानी कथा सुनो! पूर्वजन्म में सीता वेदवती नाम की मुनिकन्या थी। इस कन्या को रावण ने बलपूर्वक पत्नी बनाना चाहा, तो इसने उसे फटकार दिया। रावण ने दौड़कर उसके केश पकड़े तो उसने क्रोधपूर्वक शाप दिया, 'रे पापी! तेरे विनाश के लिए मैं अयोनिजा/अवनिजा बनकर आऊँगी।' और शरीर त्याग दिया। ये वही सीता है राघव! जैसे कोई माला समझकर नागिन को गले में डाल ले, ठीक वैसे ही रावण ने सीता नहीं, मौत को गले लगाया हैं। हे राम! पतिव्रता सीता इन्द्रप्रदत्त सुरभि पयपान से अमर है, भूख-प्यास रहित है मैंने देखा है। हे राघव! आप आश्विन् मास में नवरात्र व्रत कीजिये। इस व्रत को विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, विश्वामित्र, भृगु, वसिष्ठ, कश्यप ने भी किया है। बृहस्पति ने तो इस व्रत द्वारा ही चन्द्र से अपनी पत्नी तारा को पाया था। यह व्रत अत्युत्तम अतिशीघ्र फल देने वाला है।'

नारदजी ने कहा, 'राघव! ये भगवती सकल विश्व की निर्मात्री, पालिका व संहारिणी शक्ति हैं। इनके बिना प्रपञ्च में कुछ भी स्पन्दन तक सम्भव नहीं है। हे राघव! आप उपवास करके सिंहासन पर जगदम्बा की मूर्ति स्थापित करें। नौ दिन तक मैं आपका आचार्य बनूँगा।' विधिवत् व्रतोपवासोपासना का फल यह हुआ कि अष्टमी को आधी रात में सिंहारूढ़ा भगवती ने राम को दर्शन दिया तथा बोली, 'राघव! तुम नारायणांश सम्भव हो। पूर्व में भी मत्स्य, कूर्म, वराहादि अवतार लेकर जगत्कल्याण कर चुके हो। अब रावणवधार्थ तुम्हारा आगामी चैत्र नवरात्र भी विधिवत् करने से तुम अवश्य रावण को मारकर अयोध्या प्राप्त कर लोगे।' दशमी को अपराजिता पूजा करके राम ने लंका की ओर प्रयाण किया। इस आख्यान को पढ़ने-सुनने वाला अमरकीर्ति होता है।

× ✻ × ✻ × ✻ × ✻ ×

## ।। समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः ।।

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। चतुर्थः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### जनमेजय के प्रश्न, व्यास द्वारा कर्म की महत्ता गर्भ की पीड़ा, अदिति और कश्यप को प्राप्त श्राप, यज्ञ की निष्फलता का कारण पूर्ण शुद्धि का अभाव, नर-नारायण का तप, नर-नारायण की तपस्या से इन्द्र को ईर्ष्या, नर-नारायण के परस्पर अहंकार की निन्दा

जनमेजय ने अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए प्रश्न किया, 'हे व्यासजी ! वसुदेव देवकी जेल में क्यों रहे? उनके छह पुत्रों को कंस ने क्यों मारा? कृष्ण जेल में किस प्रकार आये? आप कृष्ण चरित्र सुनाकर नर-नारायणावतार के विषय में भी कहें। कृष्ण ने भारी तप करके ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय कुल में जन्म क्यों लिया? यादवकुल का विनाश ब्राह्मणों के शाप या गान्धारी के शाप से हुआ? कृष्ण के रहते उनके घर से उनका पुत्र प्रद्युम्न अपहृत किस प्रकार हो गया? सर्वज्ञ सर्वव्यापक ब्रह्म कृष्ण जरासन्ध के भय से मथुरा छोड़कर द्वारिका क्यों पहुँच गये?'

जनमेजय ने जिज्ञासावश प्रश्न किया, 'हे व्यासजी ! देवांशोत्पन्न और कृष्णाश्रित धर्मशील पाण्डव सदा कष्टमय जीवन क्यों जीते रहे? यज्ञजा-लक्ष्मीरूपा-द्रौपदी की दुर्दशा क्यों हुई? राजसूययज्ञ का परिणाम दु:खद क्यों रहा? हे महर्षे ! सदा इस वंश पर तलवार लटकी ही रही। एक बार आपने नियोग द्वारा इसे चलाया। फिर कृष्ण ने पूज्य पिता को जीवित करके धर्मात्मा राजा परीक्षित ने उत्तम तपस्वी ब्राह्मण के गले में सर्प क्यों डाला?- ये सभी प्रश्न मेरा मन व्यथित किये रहते हैं; कृपया उत्तर दें।' व्यासजी ने कहा, 'राजन् ! कर्म की गति बड़ी विचित्र होती है **-'कर्मणां गहना गतिः'**।

**दुर्ज्ञेया किल देवानां मानवानां च का कथा**

(देवीभागवत ०४.०२.०३)

व्यासजी ने कहा, 'राजन्! देवता भी उसका तत्त्व नहीं जान पाते, फिर मनुष्य बिचारे की क्या कथा? हे राजन्! यद्यपि जीवात्मा जन्म-मरण रहित है, तदपि कर्मबन्धन के कारण पुनः-पुनः विभिन्न योनियों में जीव को जाना पड़ता है। काम, क्रोध, लोभ,

**************************************************************************************

राग, द्वेष – सभी स्वर्ग में भी जीव के साथ लगे रहते हैं। दैव के वशवर्ती ही जीव का आवागमन लगा रहता है। चन्द्र का क्षयरोगग्रस्त होना, शङ्करजी का मुण्डमाल धारणकर श्मशान में रहना, सब कर्म–बन्धन का ही खेल है। इसी के वश विष्णु वैकुण्ठ त्यागकर नाना योनियों में अवतार लेकर कष्ट भी भोगते है; अन्यथा उत्तमोत्तम सुखों को त्याग कोई गर्भ की दारुण पीड़ा को भोगना स्वयं चाहेगा क्या? बड़े–बड़े अमलात्मा–महात्मा गर्भरूपी नरककुण्ड से मुक्ति पाने के लिए रात–दिन कृच्छ्र तप करते है; जीव को जठराग्नि की भट्टी में धधकता, कीटों से पीड़ित, मल–मूत्र परिवेष्ठित, दुर्गन्धमय वातावरण में रहने के बाद जन्मोपरान्त शैशव में भारी कष्ट सहना पडता हैं।

**गर्भावासात्परो नास्ति नरको भुवनत्रये**

(देवीभागवत ०४.०२.२४)

अतः कोई भी स्वेच्छया जन्म नहीं लेता। कर्मपाश बँधे देवता रामावतार के समय में वानर बने, तो कृष्णातवार में यादव बने। हे जनमेजय! इसी क्रम में तुम्हें कृष्णावतार का आख्यान सुनाता हूँ। हे राजन्! कश्यपजी वसुदेव तथा अदिति ही देवकी बनकर यदुवंश में गोपवंश में आये। अदिति ही रोहणी बनी हैं। इन्हें वरुण के शाप के प्रभाव से आना पड़ा।'

जनमेजय ने पूछा, 'हे महात्मन्! वरुण ने कश्यप और अदिति को किस अपराध के कारण शाप दिया? फिर अजन्मा विष्णु क्यों मनुष्योचित छलछद्म, सुख–दुःखादि भाव युक्त होते हैं; कृष्ण का जन्म कारागार में क्यों हुआ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर दें।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! भगवान् के अवतार के हेतु कल्पभेद से विभिन्न होते हैं।' वे कहते हैं, 'हे राजन्! कश्यप ने अपने यज्ञ की पूर्ति के लिए वरुण से गौ ले ली, किन्तु यज्ञ पूरा होने पर याचना करने पर भी उस गऊ को वापस नहीं किया। वरुण ने ब्रह्माजी से शिकायत करते हुए कहा, 'हे ब्रह्मन्! मेरी गायों के विरह में बछड़े रुदन करते हैं; अतः मैंने कश्यप को गोप होने का शाप देकर अदिति को मृतवत्सा होने का शाप दे दिया है – '**गोपालो भव मानुषे** '।

**मृत्वत्साऽदितिस्तस्माद्भविष्यति धरातले**

(देवीभागवत ०४.०३.०७)

ब्रह्माजी ने भी कश्यप को बुलाकर समझाया, 'लोभ पाप का मूल है, इससे बचना चाहिए।'

**लोभं नरकदं नूनं पापाकरमसम्मतम्**

(देवीभागवत ०४.०३.११)

कश्यप के बात न मानने पर ब्रह्माजी ने भी वरुण के प्रदत्त शाप का अनुमोदन कर दिया। व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! दिति ने अदिति को जन्मते ही तेरे पुत्र मर जायेंगे' – ऐसा शाप दिया था।

**जाता जाता विनश्येरंस्तव पुत्रास्तु सप्त वै**

(देवीभागवत ०४.०३.१८)

राजा के कारण पूछने पर व्यासजी ने कहा, 'राजन्! कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ (दिति व अदिति) थीं। अदिति को इन्द्र–जैसा पुत्र हुआ, तो दिति ने भी श्रेष्ठ पुत्र की इच्छा कश्यपजी से व्यक्त की। कश्यप ने पयोव्रत का नियम बताया, जिसका पालन साध्वी दिति तत्परतापूर्वक करने लगी। उसके तप के प्रभाव से तेज से विदग्ध होकर अदिति ने इन्द्र से कहा, 'बेटा! इस शत्रुरूपी गर्भ को शीघ्र नष्ट कर दो, अन्यथा भारी संकट का सामना करना पड़ेगा।'

व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! इन्द्र ने छलपूर्वक दिति की सेवा करने का अवसर खोज लिया। इन्द्र बोले, 'माँ! आप दुर्बल हो गयी हैं; मैं क्या सेवा करूँ, आज्ञा दें।'

**सेवार्थमिह सम्प्राप्तः किं कर्तव्यं वदस्व मे**

(देवीभागवत ०४.०३.३७)

इन्द्र की मीठी बातों में दिति आ गयी। इन्द्र पैर दबाने लगा, दिति क्षणमात्र में सो गयी।

**संवाहनसुखं प्राप्य निद्रामाप सुलोचना**

(देवीभागवत ०४.०३.४०)

अवसर देखकर इन्द्र योगबल से गर्भ में गये तथा गर्भ को सात टुकड़ों में काट दिया। उनके रोने पर इन्द्र ने कहा – '**मा रुद**'! रुको, मत रोओ।' फिर सात सात भागों में काटकर ४९ भाग कर दिये, ये ही उनचास मरुत हैं। दिति ने जगकर इन्द्र का छल जान लिया। साथ ही अदिति की योजना भी जान गयी। उसने क्रोध करके इन्द्र के राज्यभ्रष्ट होने का शाप तथा अदिति को मृतवत्सा तथा कारागार में रहने का शाप दिया।

**तस्याः पुत्रास्तु नश्यन्तु जाता जाताः पुनः पुनः। कारागारे वसत्वेषा पुत्रशोकातुरा भृशम् ।।**

(देवीभागवत ०४.०३.४९)

'हे राजन्! इसी कारण अदिति तथा कश्यप को कष्ट भोगना पड़ा।' जनमेजय ने कहा, 'प्रभो! जब देवराज/ऋषिपुत्र इन्द्र इतना घिनौना कार्य (भ्रूणहत्या) कर सकते हैं, तब औरों की तो बात ही क्या है? मुनिश्वर! शपथपूर्वक माता के साथ छल करना महापाप है। ठीक ऐसा ही कर्म महाभारत युद्ध में भी किया गया। भीष्म को छलपूर्वक मारा, द्रोण के साथ धोखा, पितामह के साथ धोखा, अभिमन्यु के साथ छल; ये सब पाप ही तो हैं। जरासन्ध के साथ भी छल ही किया। हे ऋषे! जब इन धर्मात्मा आप्त पुरुषों की ये दशा है, तब औरों की क्या बात करें? राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध हुआ। ये कैसा यज्ञ है? कृष्ण ने भी छलपूर्वक वामन बनकर बलि को छला, तब उनसे कैसे अपेक्षा करें कि वे सत्य सापेक्ष रहेंगे?'

जनमजेय ने आगे कहा, 'अच्छा! 'विजय वामन की हुई या बलि की' – महात्मन्! आप स्पष्ट करें।' व्यासजी ने कहा, 'राजन्! विजय तो बलि की ही हुई क्योंकि बलि ने सहजतापूर्वक सर्वस्व दान कर दिया। जबकि छल के प्रभाव से कृष्ण वामन बन गये। फिर दाता बड़ा होता है प्रतिग्रहिता छोटा होता है। उन्हें परिणामस्वरूप द्वारपाल तक बनना पड़ा।

**जितं वै बलिना राजन् दत्ता येन च मेदिनी ।। ..... छलनार्थमिदं राजन्वामनत्वं नराधिप ।।**
**सम्प्राप्तं हरिणा भूयो द्वारपालत्वमेव च ।**

(देवीभागवत ०४.०४.२१-२३)

व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! बिना छल के, माया के, असत्य के सत्य ठहर नहीं सकता और जगत् रह नहीं सकता। यही सनातन सिद्धान्त है। सत, रज और तम – तीनों का मिश्रण ही जगत् है। इनके बिना जगत् की सत्ता सन्दिग्ध ही है। सब माया के वशवर्ती हो जाते हैं। सब माया के खिलौने हैं। '**सर्वे मायावशा राजन् सा अनुक्रीडति तैः इह**'। इसी के द्वारा विमोहित प्राणी कृताकृत नहीं जान पाता। काम, क्रोध, लोभ; जैसे बलवान शत्रुओं द्वारा इसकी दुर्दशा रहती है।'

व्यासजी ने कहा, 'हे भूदेव! वैभव आने पर अहंकार, अहंकार से मोह और मोह से मरण होता है। यह ध्रुव-सत्य है। राजन्! अहंकारपूर्वक किया कर्म अशुद्ध होता है। अतः भाव शुद्ध, द्रव्य शुद्ध, काल शुद्ध, क्रिया शुद्ध होगी; तभी यज्ञादि सफल होंगे। यज्ञमान, आचार्य, पण्डित – इन सबका अन्तःकरण शुद्ध होना चाहिए, तब सिद्धि होगी। व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! राजसूययज्ञ में द्रव्यशुद्धि नहीं थी। फलतः विभिन्न राजाओं को परास्त कर उनकी अन्तर पीड़ाओं से सिक्त धन था। यज्ञ सफल नही हो सका। राजन्! सतोगुणी देवताओं में भारी राग, द्वेष, अहंकार, ईर्ष्या भरी है। तब रजोगुणी मनुष्य तथा तमोगुणी पशु-पक्षियों की क्या बात है? हे राजन्! दुनिया में विरले ही होंगे जो नितान्त सत्याचरणशील धर्मात्मा होंगे अन्यथा कलि या द्वापर की छोड़ो ये जगत् तो सतयुग में भी ऐसा ही था।

**धर्मात्मा अद्रोहबुद्धिस्तु कश्चिद् भवति कर्हिचित्**

(देवीभागवत ०४.०५.०१)

इन्द्र तो अकारण ही तपस्वियों के साथ द्रोह करते हैं। सज्जनों के लिए सदा सतयुग तथा दुष्टों के लिए कलियुग रहता है,

*******************************************************************************************

वासना के कारण वृत्ति खराब होती है।'

**सतां सत्ययुगं साक्षात्सर्वदैवावतां कलिः**

(देवीभागवत ०४.०५.०६)

ब्रह्मापुत्र धर्म ने दक्ष पुत्रियों (दस पुत्रियों) से विवाह करके चार उत्तम पुत्र उत्पन्न किये। हरि-कृष्ण योगाभ्यासी, नर-नारायण तपस्वी। नर-नारायण ने बदरिकाश्रम में अत्यन्त कठोर तप किया। इन्द्र के मन में पीडा होने लगी, 'कहीं ये मेरा इन्द्रासन तो नहीं छीन लेंगे।' इन्द्र उनके पास पहुँचकर वर देने का प्रलोभन देने लगे, 'मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। अदेय भी दे सकता हूँ। किन्तु उनका ध्यान भंग नहीं हुआ; तब भयंकर हिसक जीव-जन्तु (सिंह, सर्प आदि) इन्द्र ने उत्पन्न किये, किन्तु नर-नारायण अविचल ही रहे। इसपर भी इन्द्र परास्त हो गया। लोभ, क्रोध के उपरान्त इन्द्र ने काम का सहारा लिया, दिव्य वसन्त ऋतु का आकर्षण वातावरण, खिले-खिले फूल, मदमस्त बहती सुगन्धित-रिमरिझ फुहार, कोयल की कूक, अठखेलियाँ करती अप्सराएँ - वहाँ सब कुछ था। लाख प्रयत्न करके कामदेव, अप्सराएँ और इन्द्र - सब हार गये। नर-नारायण टस से मस नहीं हुए। वे भगवती राजराजेश्वरी के उपासक थे, उनका कोई क्या बिगाड़ सकता था? उन महात्माओं ने जान लिया कि ये इन्द्र की करतूत है। अतः धीरतापूर्वक १६०५० अप्सराओं सहित कामदेव की पूरी सेना का आतिथ्य किया तथा नारायण ने उनका गर्व चूर करने के लिए अपनी जंघा से उर्वशी नामक दिव्य अप्सरा को उत्पन्न कर दिया। उसकी अप्रतिम सुन्दरता को देखकर स्वर्ग का सौन्दर्य लज्जित हो गया। नारायण ने असंख्य सुन्दरियाँ और प्रकट कर दी, जो विविध सेवा भावों से नर-नारायण को प्रसन्न करने लगीं। देवांगनाओं ने ऋषियों को प्रणाम करके क्षमा माँगी तथा उनकी स्तुति की। प्रसन्न होकर ऋषियों ने उर्वशी इन्द्र को उपहार स्वरूप प्रदान कर सबको विदा कर दिया। देवांगनाओं ने उन्हें पति रूप में चाहा तथा कहा, 'हे देवेश ! हमको त्यागने से आपको पाप ही लगेगा।'

**पतिस्त्वं भव देवेश वरमेनं परन्तप**

(देवीभागवत ०४.०६.४९)

नारायण ने कामसुख की निन्दा करके बहुधा उनको समझाया। अन्ततः उनका हठ ही प्रबल रहा, वे विनती करती रहीं। व्यासजी कहते हैं, 'राजन् ! महात्मा अहंकार के कारण धर्मसंकट में फँस चुके हैं। वे सोचने लगे, 'इनके साथ सम्भाषण का ही परिणाम है कि मैंने तपस्या नष्टकरके उर्वशी आदि अप्सराएँ उत्पन्न कर दी।' अब क्या करूँ? मैं तो मकड़ी के जैसा अपने ही जाल में फँस गया हूँ।

**ऊर्णनाभिरिवाद्याहं जालेन स्वकृतेन वै । वद्धोस्मि ......... ।।**

(देवीभागवत ०४.०७.०५-०६)

अब इनके मन की करता हूँ, तो तप समाप्त होता है और नहीं करता, तो ये शाप दे देंगी। क्रोध करना भी ठीक नहीं क्योंकि क्रोध पहले स्वयं को ही जलाता है।

**देहोत्पन्नस्तथा क्रोधः देहं दहति दारुणः**

(देवीभागवत ०४.०७.११)

नर ने समझाया, 'भैया ! क्रोध ठीक नहीं है। पूर्व में हम क्रोध करके प्रह्लाद के साथ युद्ध में अपनी तपस्या नष्ट कर चुके हैं।' जनमेजय ने प्रश्न किया, 'अहंकार भारी दोष है। तपस्वी-भक्त भी अहंकार करेंगे, तो अन्य जनों का क्या होगा? महाराज ! जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही अहंकार मात्र से पुण्य नष्ट हो जाता है। महाराज ! लगता है दुनिया में कोई अनहंकारी है ही नहीं। लोहे की जंजीर से छूटना आसान है, किन्तु अहंकार की शृंखला तोड़ पाना सम्भव नही है।'

**अहंकारावृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगम् ।।**

**अहंकार परित्यक्तो न कोप्यस्ति भुवनत्रये । अहंकार निबद्धस्तु न कदाचित् विमुच्यते ।।**

(देवीभागवत ०४.०७.३१-३२)

*************************************************************************************

व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! कारण से भिन्न कार्य नहीं हो सकता। स्वर्ण बिना कुण्डल नहीं बन सकता, मृत्तिका बिना घट नहीं बन सकता, अहंकार निर्मित ये ब्रह्माण्ड उसी प्रकार अहंकार बिना रह नहीं सकता। तन्तु बिना पट नहीं रहता।

**कार्यं वै कारणाद्भिन्नं कथं भवति भारत**

(देवीभागवत ०४.०७.३४)

'हे राजन्! धर्म का विरोध कम या अधिक सदा रहा ही है। अकेले कलियुग को दोष देना ठीक नहीं। जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है, उन्होंने तीनों भुवन जीत लिये।

**जितेन्द्रियाः सदाचारा जितं तैर्भुवनत्रयम्**

(देवीभागवत ०४.०७.४७)

'हे महामुने! मुझे तो पिताजी की चिन्ता है, उनकी क्या गति होगी? उन्होंने निरपराध योगी के गले में मृत सर्प डालकर भारी अपराध ही किया है। महाराज! मुझे सुनाइए, नर-नारायण के साथ प्रह्लाद का युद्ध क्यों हुआ?'

## च्यवन ऋषि का पातालगमन, प्रह्लाद व नर-नारायण विवाद, विष्णु द्वारा समझौता, भृगुशाप से हरि अवतार, विष्णु ने चक्र से शुक्र-माता का वध किया, भृगुद्वारा विष्णु को शाप, बृहस्पति ने नकली शुक्र बनकर दैत्यों को उल्टा पाठ पढ़ाया

जनमेजय सोचते हैं, 'पुत्र की पुत्रता पिता के नरक (पुंनामक) से उद्धार करने में ... '**पुंनाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः**'। च्यवन को एक सर्प नागलोक ले गया है। मेरे पिता ब्राह्मण के शाप से तक्षक के डसने पर स्नान, दानविवर्जित अन्तरिक्ष में भवन की छत पर मरे है - सब विपरीतता ही है।'

व्यासजी ने कहा, 'राजन्! प्रह्लाद को पातालपुरी का राजा भगवान् नृसिंह ने बनाया था। वे देव, ब्राह्मण, गौभक्त वर्णाश्रम-मर्यादारक्षक थे। एक बार च्यवन ऋषि नर्मदा में स्नान करते थे। तभी एक सर्प उन्हें पाताल में खींच ले गया। भयभीत च्यवन ने जैसे-ही विष्णु का स्मरण किया कि सर्प विषहीन हो गया तथा पत्नियों सहित क्षमा माँगने लगा। च्यवन ऋषि ने उसे क्षमा कर दिया। नागलोक में ही रहते उनकी भेंट दैत्यराज प्रह्लाद से हो गयी। प्रह्लाद की शंका (कि कहीं आप इन्द्र के गुप्तचर तो नही है) को दूरकर च्यवन ने नागलोक तक पहुँचने का वृतान्त सुना दिया। प्रसन्न हो प्रह्लाद ने च्यवन ऋषि का आदर कर उनसे पृथ्वीलोक के श्रेष्ठ तीर्थों की कथा सुनना प्रारम्भ कर दिया। च्यवन ने कहा, 'राजन्! मन वाणी तथा कर्म से शुद्ध प्राणी के लिए पद-पद पर तीर्थ ही तीर्थ हैं; मलिन चित्तों के लिए गंगा भी कीचड़-क्षेत्र ही है।

**मनोवाक्कायशुद्धानां राजस्तीर्थं पदे पदे । तथा मलिनचित्तानां गंगापि कीकटाधिका ।।**

(देवीभागवत ०४.०८.२८)

अन्यथा गंगातटवासी आभीर क्यों न पवित्र हो जायें। मन की पवित्रता पर सबकी पवित्रता टिकी है। तीर्थवासी तो छलपूर्वक अभ्यागतों को वञ्चना द्वारा ठगते है, फलतः तीर्थकृत पाप के कारण महापापी बनते हैं।

**तत्रैवाचरितं पापं आनन्त्याय प्रकल्पते । तीर्थ क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ।।**

'मनःशुद्धि और आचार शुद्धि के बाद ही तीर्थ सिद्धि हो सकती है। हे राजन्! नैमिषारण्य चक्रतीर्थ, पुष्करतीर्थ आदि अनेक तीर्थ हैं, जिनकी गणना नहीं है।

इस प्रकार च्यवन तथा प्रह्लाद पहले नैमिषारण्य देखने के लिए ही चल दिये। नैमिषारण्य तीर्थ में सरस्वती के जल का आनन्द लेते हुए कुछ दिन रहे। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! नैमिषारण्य तीर्थ में एक दिन प्रह्लाद ने नर-नारायण को देखा। उनके पास शांर्ग तथा आजगव नाम धनुष पड़े थे। प्रह्लाद क्रोधपूर्वक बोले, 'धर्म का नाश करने वाले ये पाखण्डी हैं। कहाँ तो जटाचीर वल्कलधारी कहां

************************************************************************************

तीक्ष्ण धनुष-बाण?' उन महात्माओं ने कहा, 'दैत्येन्द्र ! तुम्हें क्या चिन्ता? यह हमारा विषय है - शस्त्र व शास्त्र विद्या। दोनों विद्याओं में हम निपुण हैं। आप अपना रास्ता नापो। बकवास मत करो।'

**गच्छ मार्गे यथाकामं कस्मादत्र विकत्थसे**

(देवीभागवत ०४.०९.१३)

प्रह्लाद व नर-नारायण का परस्पर विवाद होने लगा। पहले कटूक्तियों में, तदनन्तर भीषण संग्राम छिड़ गया। देवता तमाशा देखने अन्तरिक्ष में आ गये। नारद तथा पर्वत ने परस्पर कहा, 'या तो तारकासुर, वृत्रासुर का युद्ध हुआ या ये हो रहा है अद्भुत। हजारों वर्ष चले युद्ध में किसी की पराजय नहीं हुई, तो जीता भी कोई नहीं। हाँ ... ... विजय हुई क्रोध की। क्रोध ने इन सबको जोरदार पटखनी दे दी। विष्णु ने आकर युद्ध विराम करा दिया तथा प्रह्लाद से कहा, 'वत्स ! तपस्वियों से विरोध उचित नहीं हैं। जाओ ! मेरी भक्ति करते हुए भक्तिपूर्वक राज्य करो।'

जनमेजय ने पूछा, 'हे विप्रर्षे ! शान्तचित्त अल्पाहारी नर-नारायण तपोजन्य शान्ति-सुख को त्यागकर क्यों राग-द्वेषाविष्ट हो युद्ध करने लगे? इतना भारी तप और ऐसी दूषित वृत्ति ... ! क्या मिला उनको युद्ध करके?' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन् ! अहंकार के कारण ही सब कुछ होता है। इन महात्माओं की छोड़ो। विष्णु तक को न जाने कैसे-कैसे शरीर धारण करने पड़ते हैं। मैं तुम्हें वैवस्वत-मन्वन्तर की कथा सुनाता हूँ, जिसमें भृगु के शाप से नारायण ने विचित्र अवतार लिया था।'

व्यासजी बताते हैं, 'हे राजन् ! प्राचीन समय में कश्यपपुत्र हिरण्यकशिपु था। उसने त्रिलोकी को जीतकर धर्म का पराभव कर दिया तथा धर्माचरणशील स्वपुत्र प्रह्लाद को भारी क्लेश दिया, तो भगवान् ने नृसिंह बनकर उसे मार दिया। तदनन्तर प्रह्लाद का इन्द्र से युद्ध हुआ, जिसमें प्रह्लाद पराजित हो गये। फलतः प्रह्लाद विरोचनपुत्र बलि को राजा बना तपस्या करने चले गये। बलि ने शुक्राचार्य की शरण ली। शुक्राचार्य ने दैत्यों की मन्त्रबल से रक्षा की। हे राजन् ! शुक्राचार्य ने दैत्यों से कहा कि अब समय आ रहा है, जब विष्णु दैत्यों का वध करेंगें। वे पहले भी कितनी बार ऐसा कर चुके हैं। तुम किसी तरह उचित समय की प्रतिक्षा करो। मैं शिव की साधना से विलक्षण एवं विशिष्ट मन्त्रशक्ति प्राप्त कर लेता हूँ।'

**अहमद्य महादेवं मन्त्रार्थं प्रवजामि वै**

(देवीभागवत ०४.११.०५)

उन्होंने कहा, 'आप सब तबतक तपस्वी बनकर समय यापन करो, मैं अति शीघ्र आ जाऊँगा।' शुक्राचार्य के चले जाने पर दैत्यों ने देवताओं से संधि कर ली तथा तपस्या करने लगे। उधर कैलाश पर जाकर शुक्राचार्य ने भगवान् शङ्कर को प्रणाम करके कहा, 'प्रभो ! आप मुझे वो मन्त्र दीजिए, जो बृहस्पति के पास भी न हो, जिससे देवताओं की हार और दैत्यों की जीत होवे।'

**पराजयाय देवानामसुराणां जयाय च**

(देवीभागवत ०४.११.२२)

शङ्करजी सोच में पड गये। फिर बोले, 'हे शुक्र ! तुम सहस्रवर्ष पर्यन्त शीर्षासन लगाते हुए, धूम्रपान करके, मन्त्र सिद्ध कर लोगे तो सफलता मिलेगी, अन्यथा नहीं।' शुक्राचार्य भगवान् को प्रणाम करके तपस्या में लग गये। उधर देवताओं को पता चला कि सब दैत्य तपस्या का नाटक करते हुए शुक्र की तपस्या पूर्ण होने की प्रतीक्षा कर रहे है, तो देवताओं ने उन्हें घेर लिया। यद्यपि निःशस्त्र पर प्रहार अधर्म है, तदपि दैत्यों के छल का जवाब यही है - ऐसा देवताओं ने सोचा। दैत्य भागकर शुक्राचार्य की माँ भृगुपत्नी की शरण में गये। देवताओं ने भृगुपत्नी के मना करने पर भी दैत्यों को मारना चाहा, तो भृगुपत्नी ने देवों को मन्त्रबल से निद्रावर्ती कर दिया। विष्णु ने इन्द्र की रक्षा की। तब भृगुपत्नी ने इन्द्र को विष्णु सहित योगबल से निगलना चाहा।

**मघवस्त्वां भक्षयामि सविष्णुं वै तपोबलात्**

(देवीभागवत ०४.११.४८)

****************************************************************************************

त्रिलोकी में हा-हाकार मच गया। दोनों इन्द्रोपेन्द्र अभिभूत हो गये, तो विष्णु ने चक्र से शुक्रमाता का सिर काट दिया। अब उन्हें भृगु के शाप की चिन्ता सताने लगी। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! भृगु ने विष्णु से कहा, 'अरे! तुमने स्त्री का, वह भी ब्राह्मणी का वध करके महापाप किया है। मुझ निरपराध को विधुर बना दिया है। हे तमोगुणी! छली!! कपटी!!! पापकर्मा विष्णु!!!! तुम बार-बार गर्भवास की पीड़ा भोगो – यही मेरा शाप है।

**प्रायो गर्भभवं दुःखं भुक्ष्व पापाज्जनार्दन**

(देवीभागवत ०४.१२.०८)

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! भृगु ने शाप देने के उपरान्त अपनी तपस्या के बल से अपनी पत्नी का सिर जोड़कर उन्हें जिन्दा कर दिया। 'एक सन्त की प्रतिज्ञा है कि मैंने ज्ञानानुरूप धर्म का आचरण ठीक-ठीक किया है, तो उस सत्य के प्रभाव से तुम जीवित हो उठो। यदि वास्तव में मैं सदाचारी, सत्यवादी, वेदाभ्यासी तपस्वी हूँ, तो तुम जी उठो।'

**अद्भिस्त्वां प्रोक्ष्य शीताभिर्जीवयामि तपोबलात् । सत्यं शौचं तथा वेदा यदि मे तपसो बलम् ।।**

(देवीभागवत ०४.१२.१४)

और भृगु के जल के छींटे मारने मात्र से (उस जलशक्ति से) भृगुपत्नी जी उठी। इधर इन्द्र अपनी बेटी जयन्ती को लेकर शुक्राचार्य के घर गये। उन्होंने अपनी पुत्री को शुक्राचार्य की तपस्या में विघ्न डालने के लिए उनकी सेवा में भेज दिया। उसने अपनी बेटी से कहा, 'बेटा! अपनी सेवा से उन्हें अपने वश में करके मुझे तथा देवताओं को भयमुक्त करो।' ये है स्वार्थ की पराकाष्ठा कि पुत्री को ही दाव पर लगा दिया। जयन्ती ने जाकर शुक्र की सेवा करना प्रारम्भ कर दिया। शीतल जल लाना, पंखा झलना, फल-पुष्प लाना आदि। शुक्राचार्य इन्द्रयातीत सन्त हैं, तो जयन्ती भी कम नहीं। जयन्ती शुक्र की बहुत काल तक सेवा करती रही। तपस्या पूर्ण होने पर शिव ने शुक्र को सर्वज्ञ होने का वर दिया और कहा, 'तुम अमर भी हो गये, जीवों के अध्यक्ष प्रजापति भी हुए' – ऐसा वर देकर शिव चले गये।

अब शुक्र ने जयन्ती से परिचय पूछा तथा उनपर प्रसन्न हो गये। जयन्ती ने अपना परिचय दे उन्हें पति रूप में वरण कर लिया। शुक्राचार्य दस वर्ष तक जयन्ती के साथ रमण करते रहे। उधर बृहस्पति नकली शुक्र बनकर दैत्यों के बीच पधार गये।

जनमेजय ने कहा, 'हे महर्षि! विज्ञानातिशयसम्पन्न बृहस्पति भी धूर्ततापूर्वक छल-प्रपञ्च करने लगें, तब अन्यों से क्या अपेक्षा हो सकती है? चन्द्र का परस्त्रीगमनत्व आदि – ये क्या है सब? कैसे चलेगा धर्म?' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! सबका लोभ ही प्रपञ्च है। समय आने पर अच्छे-अच्छे लोभाविष्ट हो जाते हैं। विष्णु कभी शेषशय्या पर शयन, कभी दैत्यों के साथ रमण, कभी लक्ष्मी संग रमण, कभी कठोर तपाचरण, कभी विश्वभ्रमण करते देखे जाते हैं। हे राजन्! या तो विवाह ही न करे, स्त्री सम्पर्क ही न करे या करे तो सावधानी से जीये। अन्यथा बृहस्पति की तरह गृहस्थी से उदासीन रहने वालों के घरों को चन्द्र ही बर्बाद करते हैं। हे राजन्! अब गुरुकथा सुनो – बृहस्पति ने शुक्र की अनुकृति कर दैत्यों को मोहित कर लिया। दस वर्ष बाद जयन्ती को छोड़ शुक्र आये, तो दैत्यों ने उन्हें नकली शुक्र जानकर अपमानित कर दिया। बृहस्पति ने कहा, 'पता नहीं, चले आते है कहाँ-कहाँ से नकली शुक्र बनकर। और देखो! मेरे ही सामने पाखण्ड करता है – मारो! इसे भगा दो!!' दैत्य तो नकली शुक्र के पीछे पागल थे, सो भगा दिया। अपने गुरु शुक्र की एक न सुनी। नकली शुक्र ने उन्हें पाठ पढाया कि 'यज्ञ तो हिंसक कर्म होने से पाखण्ड है, इसे नहीं करना चाहिए' आदि-आदि। शुक्राचार्य ने लाख समझाया कि ये बृहस्पति है और मैं शुक्र हूँ। बृहस्पति की माया से मोहित दैत्य नहीं जगे, तो शुक्र ने उन्हें शाप दे दिया, 'अरे पापियों! तुम्हारी बुद्धिभ्रष्ट हो जायेगी, तुम पराधीन हो जाओगे' और चले गये।

उधर बृहस्पति का षडयन्त्र सफल रहा। वे भी चले गये। मारे गये – बिचारे दैत्य। अब क्या करें? कहाँ जायें? पापी-कपटी बृहस्पति ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा। वे प्रह्लाद को लेकर शुक्राचार्य की शरण में गये। उन्होंने डाटते हुए कहा, 'जाओ! उसी पापी नकली गुरु की शरण में! यहाँ कुछ नहीं होगा। मेरा अपमान करते समय तुम भूल चुके थे। अब क्या रखा है?' प्रह्लाद ने चरण पकड़कर विनम्र प्रार्थना की, 'प्रभो आपके अतिरिक्त हमारा कौन है? देवताओं के पक्ष में भगवान् हैं, किन्तु हमारे भगवान् तो आप ही हैं। हमारी रक्षा

करो, नाथ !'। शुक्राचार्य प्रसन्न हो गये तथा दैत्यों से कहा, 'अब मैं हूँ ना, तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।' किन्तु होनी तो होकर रहती है। बलि त्रैलोक्य विजेता होकर भी कालगति के कारण आज न जाने कहाँ हैं?'

एक दिन बलि गधे के रूप में छिपा था। इन्द्र ने पहचान कर पूछा, 'अरे बलि ! तुम और गधे के रूप में कैसे?' बलि ने कहा, 'इन्द्र ! इसमें क्या बड़ी बात है, जब विष्णु मछली, कछुआ, वराह बन सकते हैं, तो कर्मपाशवश मेरा यह शरीर भी ठीक ही है।'

**दैवाधीनस्य किं दुःखं किं सुखं पाकशासन ।। कालः करोति वै नूनं यदिच्छति यथा तथा ।**

(देवीभागवत ०४.१४.५५)

## युद्ध में दैत्यों को मिली विजय, देवताओं को भगवती का दर्शन, इन्द्र द्वारा माँ का स्तवन, प्रह्लाद द्वारा माँ की स्तुति, अवतार कथा, नर-नारायण ने अप्सराओं को विदा किया, कृष्ण-जन्म का कारण, धर्मविमुख राजाओं के अत्याचार से त्रस्त गौरूपा पृथ्वी का देवों सहित माँ की प्रार्थना करना, देवी की देवताओं को आज्ञा, देवकी और वसुदेव का विवाह

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन् ! दैव ही बलवान है। प्रह्लाद के मत को जानकर दैत्यों ने कहा, 'महाराज ! हम क्या जाने दैव क्या है? अतः युद्ध करना ठीक है। देवों और दैत्यों के बीच भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। शुक्राचार्य की मन्त्रशक्ति से दैत्य विजयी हुए। निराश इन्द्र ने भगवती की स्तुति की,

**जय देवि महामाये शूलधारिणी चाम्बिके । शंखचक्रगदापद्म-खड्गहस्तेऽभयप्रदे ।।**
**नमस्ते भुवनेशानि शक्तिदर्शननायिके । दशतत्त्वात्मिके मातर्महाबिन्दुस्वरूपिणि ।।**

(देवीभागवत ०४.१५.११-१२)

'हे महामाये ! हे आम्बिके !! हे भुवनेशानि !!! आपको नमस्कार है। हे माँ ! दैत्यों द्वारा पराजित हम देवों की रक्षा करो। हे माँ ! जो तुम्हारा ध्यान करते है; वो तो सुखी हो जाते हैं।'

**ध्यायन्ति येपि सुखिनो नितरां भवन्ति दुःखान्विता विगतशोकभयास्तथान्ये ।**
**मोक्षार्थिनो विगतमानविमुक्तसंगाः संसारवारिधिजलं प्रतरन्ति सन्तः ।।**

(देवीभागवत ०४.१५.१६)

'मोक्षार्थि संसारवारिधि से पार चले जाते हैं। हे माँ ! आपके तत्त्व को ब्रह्मादि देवता भी नही जान सकते। संसार में वे ही धन्य हैं; जो तुम्हारी भक्ति करते हैं।' स्तुति से प्रसन्न भगवती प्रकट हो गयी तथा निर्भय करके दैत्यों के समीप पहुँच गयी। प्रह्लाद आदि दैत्यों ने माता की श्रेष्ठ स्तुति की, 'हे माँ ! आप जगत् की जननी हैं। आपके द्वारा उत्पन्न दैत्य तथा देवता आपके लिए समान ही हैं। हे माँ ! हम जैसे भी हैं – अच्छे या बुरे – आपके ही हैं। आपने ही लीला विनोद के लिए, अपने बच्चों का युद्ध देखने की भावना से, खेल रचा है। आप ही एकमात्र विश्व की प्रशासिका हैं। माँ ! समुद्रमन्थन के सारे रत्न देवताओं ने छलपूर्वक पा लिये। हमें मिला मात्र परिश्रम ही। इन्द्र की धर्मशीलता कि गौतम की पत्नी अहिल्या के प्रति दुर्भाव कैसे कहें कि कौन धर्मात्मा है? स्वयं बृहस्पति का उतथ्यपत्नी से सम्बन्ध है फिर भी वे सन्त हैं, साधु हैं, पूज्य हैं। माँ ! वामन ने बलि का सर्वस्व हरण किया, यही विष्णु की साधुता है क्या?' माता ने कहा, 'दैत्यो ! तुम धर्मपूर्वक पाताल में राज्य करो। समय की प्रतीक्षा करो।' कहकर जगदम्बा अन्तर्धान हो गयी।

व्यासजी ने कहा, 'राजन् ! संक्षेप में अवतार कथा सुनो। चाक्षुष मन्वन्तर में धर्म से नर-नारायणावतार हुआ। द्वितीय कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर में अत्रिपुत्र दत्तात्रेय हुए। अनुसुया सतियों में प्रमुख थी। उन्होंने ब्रह्मांश से चन्द्र, विष्ण्वांश से दत्तात्रेय, शिवांश से दुर्वासा को पुत्र रूप में पाया था। चौथे कल्प के सतयुग में नृसिंहावतार हुआ। तदनन्तर त्रेता में बलि को छलने के लिए वामनावतार हुआ। तदन्तर उन्नीसवें त्रेता में जमदग्निपुत्र परशुराम हुए। इसके बाद अट्ठाइसवें त्रेता में रघुवंशी राम का अवतार हुआ। द्वापर में

*****************************************************************************************

कृष्णावतार हुआ। हे राजन्! इन सभी अवतारों के मूल में भगवती पराम्बा ही है।

जनमेजय ने पूछा, 'हे महात्मन्! नर-नारायण का प्रसंग आगे कैसे बढ़ा? उन्होंने कैसे अप्सराओं को विदाकर के स्वयं को मुक्त किया?' व्यासजी बोले, 'हे राजन्। नारायण ने क्रोध शान्त करके कहा, 'हे दिव्यांगनाओ! इस जन्म में तो विवाह न करने का हमने संकल्प ले लिया है, दूसरे जन्म में आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा। कृष्णावतार में आप मेरी भार्या होंगी।

**तदाभवत्यो मद्दाराः प्राप्यजन्म पृथक्-पृथक् । भूपतीनां सुता भूत्वा पत्नी भावं गमिष्यथः ।।**

(देवीभागवत ०४.१७.१६)

और उन्हें सन्तुष्ट करके विदा कर दिया। उधर उर्वशी आदि को पाकर धन्यातिधन्य इन्द्र महात्मा नर-नारायण की प्रशंसा करने लगा। हे राजन्! ये नर-नारायण ही कृष्णार्जुनरूप से अवतरित हुए।' जनमेजय ने कहा, 'प्रभो! कृष्णावतार की कथा विस्तार से सुनाइए। उनका जन्म, कर्म, गोकुलगमन, बाललीलाएँ, कंस-वध, तथा द्वारिकापुरी गमन भी सुनाइए। प्रभो! ब्राह्मण शाप से यदुवंश क्यों नष्ट हुआ? पाण्डवों पर अत्याचार हुए, तब वे क्यों सहन करते रहे? कृष्ण ने क्यों इसका निराकरण नहीं किया? सर्वसमर्थ कृष्ण उग्रसेन की सेवकाई-सी क्यों करते रहे? क्यों चोर की तरह रुक्मिणी का अपहरण किया। (लगता है, जनमेजय अत्यन्त जिज्ञासु सैकड़ों प्रश्नों का भण्डार है। एक प्रश्न पूरा नहीं होता, ऊपर से सैकड़ों प्रश्न तैयार रखता है।) एक और संशय ... ... ... 'हे महात्मन्। द्रौपदी के पाँच पति होना क्या माना जाये? क्या ये पशुधर्म नहीं हैं?'

**पाञ्चाल्याः पञ्चतृर्तत्वं लोके किं न जुगुप्सितम्**

(देवीभागवत ०४.१७.५२)

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! भगवान् के अवतार के प्रयोजन मुख्यतया भूभारहरणपूर्वक धर्मस्थापन ही है। एकबार भयाक्रान्त पृथ्वी गौरूप में देवों सहित ब्रह्माजी के पास गयी। ब्रह्माजी ने पीड़ा सुनकर वैकुण्ठ में जाकर विष्णु की पुरुषसूक्त द्वारा स्तवनकर प्रार्थना की, 'प्रभो! आपके अतिरिक्त पृथ्वी का कष्ट कौन दूर सकता है? आप कृपया इस ओर ध्यान दें।' विष्णु ने कहा, 'ब्रह्माजी! मैं भी उनके संकेत से ही विभिन्न अवतार लेकर कष्ट भोगता हुआ, जैसे-तैसे धर्मकार्य सम्पन्न करता हूँ। कैसे भूल सकता हूँ रामावतार के अरण्यवासकालिक कष्ट - वन-वन भटकना, रात-दिन का रोना। सब उन महामाया का ही प्रताप है। ब्रह्माजी! सीतापहरण ... ...। आप विचार करो किसी की पत्नी चुरा ली जाये, कैसे बीतेगा उसका दिन कैसे बीतेगी रात? उत्ताल तरंगों से लहराता भयंकर सागर! नागपाश में बन्धे हम, रावण-जैसे महान विलक्षण योद्धा से सामना, साथी हैं – वानर, शस्त्र हैं – वृक्ष। उस द्वन्द्व का स्मरण आज भी अन्तर में सिहरन पैदा कर देता है। मैं झुक जाता हूँ जगदम्बा के सम्मुख। उनकी कृपा न होती तो क्या होता? मैं सत्य कहता हूँ कि मैं भी तुम्हारी ही तरह पराधीन हूँ।'

**परतन्त्रस्य का वार्ता वक्तव्या विवुधेन वै ।। परतन्त्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय ।**

(देवीभागवत ०४.१८.५९-६०)

व्यासजी कहते हैं, 'हे ब्रह्मन्! याद करो मैं, तुम, शिव – तीनों ने मणिद्वीप में जाकर किनका दर्शन किया था? आओ! उन्हीं महामाया का स्मरण करें।

**तस्मात्तां परमां शक्तिं स्मरन्त्वाद्य सुराः शिवाम्**

(देवीभागवत ०४.१९.०८)

स्मरण करते ही भगवती प्रकट हो गयी। जिन्हें देखते ही देवताओं ने नतमस्तक हो प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया तथा प्रार्थना की, 'माँ! आपके बिना कोई भी कुछ नहीं कर सकता। हे माँ! हम संकटग्रस्त हो आपको प्रणाम करते हैं। आपका ध्यान करते हैं।'

**महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि । तन्नो देवि प्रचोदयात् ।।**

(देवीभागवत ०४.१९.१३)

*****************************************************************************************

इन्द्र ने कहा, 'भगवती! आपके बिना ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी कुछ नहीं कर सकते।' विष्णु ने कहा, 'हे जगन्माता! यह-सत्य है कि बिना आपकी कृपा के पत्ता तक नहीं हिल सकता।' भगवती प्रसन्न हो गयी तथा वर माँगने को कहा। देवता बोले, 'माँ! जैसे आपने महिषासुर, चण्ड-मुण्ड, शुम्भ-निशुम्भ को मारा; ठीक वैसे ही अब पृथ्वी का क्लेश दूर करने के लिए पाप प्रायः राजाओं को मार दीजिए।' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! भगवती ने प्रसन्न होकर कहा, 'चिन्ता मत करो देवताओं! अब समय आ गया है, पृथ्वी से पापियों के विदा होने का। विष्णु भृगु के शापवश वसुदेव के अंश से अवतरित होंगे। मैं भी यशोदा की कोख से आ रही हूँ।

**तदाऽहं प्रभविष्यामि यशोदायां च गोकुले**

(देवीभागवत ०४.१९.३४)

मैं ही कृष्ण को नन्दगांव पहुंचाऊगी, मैं ही शेष को देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दूँगी। आप सभी देवता पाण्डवादि रूपों में भूमि पर पधारे। मैं इन सब के बहाने कुरुक्षेत्र की भूमि पर सबका संहार करूँगी।

**कुरुक्षेत्रे करिष्यामि क्षत्रियाणां च संक्षयम्**

(देवीभागवत ०४.१९.४१)

देवता यदुवंशियों के रूप में भगवती आद्याशक्ति के स्वागतार्थ आ गये। उनके स्वागत के लिए प्रकृति भी तैयार हो गयी। पृथ्वी भी आश्वासन पाकर सन्तुष्ट हो गयी। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! भृगु का शाप तो बहाना है। योगमाया की इच्छा से ही विष्णु कृष्ण बनकर आये। आश्चर्य की बात नहीं। राजन्! माँ अम्बा ब्रह्मादि देवताओं को भी नचाती हैं औरों की तो बात ही क्या?'

**किं चित्रं नृप देवी सा ब्रह्मविष्णुसुरानपि । नर्तयत्यनिशं माया त्रिगुणा न परान्किमु ।।**

(देवीभागवत ०४.२०.०४)

'देवताओं को भालू-बन्दर बनाना। सच्चाई यह है राजन्! मैं-मेरा-तू-तेरा पक्षों से बंधा जीव संसार में धक्के खाता है। कोई व्यक्ति एक बार भी 'भुवनेशि' कह देता है, तो उसे माँ तीनों भुवन दान कर देती हैं।'

**भुवनेशीत्येव वक्त्रे ददाति भुवनत्रयम्** (देवीभागवत ०४.२०.०९)

'हे राजन्! जैसे कठपुतली बाजीगर के इशारे पर नाचती हैं। ठीक वैसे-ही सब प्रपञ्च उन महामाया के संकेत पर ही नर्तन करता है। इन देवताओं का नाम अमर होने पर भी इन्हें भी मरना जीना, रोना, धोना, नाचना, गाना, लड़ना, झगड़ना, राग-द्वेष, हर्ष-शोक लगा ही रहता है। प्रमाणतः ब्रह्मा का स्वपुत्री मोह, चन्द्र का क्षयरोग, सूर्य का ग्रहण, शनि-मन्द, सती (शिवपत्नी) अग्निदाह, इन्द्र भी बैल बने, शिव सती वियोग में कामान्ध हो यमुना में कूद पड़े। फलतः यमुना जल श्यामकाय हो गया।

**कामाग्निदग्धदेहस्तु कालिन्द्यां पतितः शिवः । साऽपि श्यामजला जाता तन्निदाहवशान्नृप ।।**

(देवीभागवत ०४.२०.३५)

राम का सीता वियोग में 'हाय-हाय' चिल्लाना, वृक्षों, पक्षियों, पशुओं से सीता का पता पूछना। हे राजन्! सब योगमाया के प्रताप का प्रभाव है कि सारा विश्व नाचा करता है।

**यया विश्वमिदं सर्वं भ्रामितं भ्रमते किल**

(देवीभागवत ०४.२०.५१)

हे राजन्! यमुना नदी के किनारे मधुपुत्र लवण की बसाई मथुरा में लवणासुर को मारकर शत्रुघ्न ने अपने पुत्रों सुबाहु, श्रुतसेन, शूरसेन को राजा बनाया। कालान्तर में सूर्यवंशोपरान्त चन्द्रवंशी शूरसेन राजा हो गये। इन्हीं शूरसेन के पुत्र थे – वसुदेव। वसुदेवजी वैश्य वृत्ति से (गोपालनादि) से जीवन चलाते थे।

**वैश्यवृत्तिरतः सोऽभून्मृते पितरि माधवः**

(देवीभागवत ०४.२०.६१)

***************************************************************************************

उग्रसेन का पुत्र कंस अत्याचारी था। उसके चाचा उग्रसेन के अनुज देवक ने अपनी पुत्री देवकी का विवाह वसुदेव से किया। विदाई के समय आकाशवाणी हुई, 'अरे कंस! इसका आठवाँ गर्भ तुझको मार डालेगा।'

**अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता**

(भागवत १०.०१.३४)

**कंस कंस महाभाग देवकीगर्भसंभवः । अष्टमस्तु सुतः श्रीमांस्तव हन्ता भविष्यति ।।**

(देवीभागवत ०४.२०.६४)

कंस ने देवकी को मारने का निश्चय कर लिया। 'न रहेगा बांस न बजेगी बाँसुरी' – कारण बिना कार्य नहीं हो सकता। नंगी तलवार लेकर देवकी के केश पकड़े तो **'मुञ्च मुञ्चेति प्रोचु'** सभी सभ्य लोग 'छोड़ दो, छोड़ दो' कहकर चीखने लगे। दोंनो पक्षों में भारी विवाद व घोर युद्ध भी होने लगा। वृद्धों के बीच बचाव करने से कुछ शान्ति हुई।

**तद्युद्धमभवद्घोरं वीराणां च परस्परम्**

(देवीभागवत ०४.२०.७४)

'अरे कंस! इतना निन्दित कुकृत्य मत करो। निरपराध सभी को मारने से तुम नष्ट हो जाओगे। आकाशवाणी का क्या भरोसा?' वसुदेवजी ने अपनी चुप्पी तोड़ी बोले, 'हे कंस! मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि देवकी के बच्चों को जन्म लेते ही तुम्हें सौप दूँगा।'

**कंस सत्यं ब्रवीम्यद्य सत्याधारं जगत्त्रयम् । दास्यामि देवकीपुत्रानुत्पन्नांस्तव सर्वशः ।।**

(देवीभागवत ०४.२०.८३)

अपने वचन का पालन न करने पर मेरे पितर नरक में गिर पड़े। वसुदेव की बात पर तो कंस भी विश्वास करता है, देवकी का जीवन बच गया।

## नारदोपदेश से कंस ने मारे देवकी के छह पुत्र, देवकी के षड्पुत्रों के पूर्वजन्म की कथा, कृष्ण जन्म, संक्षिप्त कृष्ण कथा, कृष्ण द्वारा पुत्रार्थ शिवाराधन

व्यासजी कहते हैं, राजन्! यथासमय पुत्र होने पर वसुदेव ने देवकी को पूर्वकृत प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाकर सत्यरक्षार्थ अपने नवजात शिशु को कंस के हाथों सौंपना निश्चित कर लिया। देवकी ने कर्मभोग की अनिवार्यता को सिद्ध कर दुःखी मन से कहा, हे नाथ! तदपि उद्योग अवश्य करना चाहिए। वसुदेवजी ने कहा, देवि! संचित क्रियमाण तथा प्रारब्ध कर्मो में से वर्तमान कर्म (क्रियमाण) का ही प्रायश्चित्त द्वारा निदान सम्भव है तथा सञ्चित कर्मो को भी शास्त्रोक्त विधि से नष्ट किया जा सकता है; किन्तु प्रारब्ध कर्म भोगे बिना नष्ट नहीं होते।

**प्रायश्चित्तेन नश्यन्ति वर्तमानानि भामिनि ।। सञ्चितानि तथैवाशु यथार्थं विहितेन च ।**

(देवीभागवत ०४.२१.२७–२८)

किन्तु **'प्रारब्धकर्मणां भोगात्संक्षयो नान्यथा भवेत्'** अतः एक बालक के लिए सत्य का त्याग उचित नहीं ,जिसके जीवन से सत्य चला गया उसका जीवन ही व्यर्थ है।

**सत्यं यस्य गतं कान्ते वृथा तस्यैव जीवितम्**

(देवीभागवत ०४.२१.३१)

सारा नगर वसुदेव की सत्यता धर्मशीलता की प्रशंसा करने लगा, जब वे बालक को लेकर कंस के पास पहुँचे तो कंस–जैसा क्रूर भी पिघल गया, बोला, 'वसुदेव! इस बालक से नहीं, मुझे तो आठवें से भय है; मैं तुम्हारी सत्यता से प्रसन्न हूँ और पुत्र लौटा दिया। सबके जाने के बाद आ गये अकेले में नारदजी।

***********************************************************************************

**गतेषु तेषु सम्प्राप्तो नारदो मुनिसत्तमः**

(देवीभागवत ०४.२१.४६)

नारदजी का स्वागत करके कंस ने बिठाया और पूछा, 'महाराज! कैसे आना हुआ है? अच्छे कर्म का फल सन्त दर्शन है। नारदजी बोले, 'कंस! तुम हमारे खास व्यक्ति हो, इसीलिए चला आया! तुम्हें पागलपन चढ़ा है जो वसुदेव के पुत्र को छोड़ दिया, क्या भरोसा है विष्णु का; वो उल्टी गिनती शुरू कर दे, कह दे आठवाँ पहले आयेगा। तब क्या कर लोगे तुम?' बलि का प्रसंग याद करो, जो खम्भा फाड़कर निकला, कपट सुन्दरी बन गया, वराह बन गया, वह क्या क्रमांक नहीं बदल सकता? तुम सच्चे सीधे व भोले हो उनका कपट नहीं जान पाये। अतः तुम्हारे हित के लिए ही आया हूँ। एक गोल क्रम से आठ चिह्न बनाकर बताओ कौन-सा आठवाँ हैं?'

नारदजी बोले, 'अरे नादान! ये सभी 'आठवाँ' हो सकते है।' अच्छा! अब चलते हैं। नारदजी तो कंस को उग्र करके शीघ्र पाप का घड़ा पूरा कराकर कृष्ण द्वारा उसकी मुक्ति कराना चाहते हैं। उनका मित्र या शत्रु कोई नहीं है। जनमेजय ने पूछा, 'महाराज! इस शिशु का क्या पाप, जो अकाल काल कवलित हो गया तथा नारद को यह पाप कराकर क्या मिला? व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! नारदजी पवित्रात्मा होते हुए भी कौतुकवश देवकार्यार्थ धर्मरक्षा के हेतु तथा असुरयोनि में पड़े पाशबद्ध जीव की शीघ्र मुक्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। वे निष्पक्ष हैं। तभी तो सबके यहाँ उनका समान आदर है। देवकी के ये छहों बालक षडगर्भ नामक देव हैं। राजन्! पूर्वजन्म में ये मरीचिभार्या ऊर्णा के पुत्र थे। ब्रह्माजी तथा सरस्वती के एकान्त विहार को देखकर ये हँस पड़े। लज्जित से ब्रह्मा ने इन्हें दैत्ययोनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। फलतः ये कालनेमि के पुत्र हुए। तदनन्तर हिरण्यकशिपु के पुत्र बने। वहाँ इन्होंने तपस्या करके ब्रह्माजी से अमर होने का वर माँगा। वर तो मिल गया, किन्तु हिरण्यकशिपु ने नाराज होकर इन्हें शाप दे दिया। 'अरे! पिता को त्याग पितामह (ब्रह्मा) तुम्हें भाया। जाओ! पाताल में निद्राग्रस्त रहो और अन्त में क्रमशः देवकी के गर्भ से जन्म लेकर तुम अपने पूर्व पिता (कालनेमि) कंस द्वारा मारे जाओ।'

**ततस्तु देवकीगर्भे वर्षे वर्षे पुनः पुनः। पिता वः कालनेमिस्तु तत्र कंसो भविष्यति ।।**
**स एव जातमात्रान् वो वधिष्यति सुदारुणः ।**

(देवीभागवत ०४.२२.२१)

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! सप्तम गर्भ (शेषजी) को महामाया द्वारा रोहिणी में स्थानान्तरित करने से लोक चर्चा हुई कि गर्भस्त्रवित हो गया। बिचारी देवकी अभागिन है क्या बताएँ? अष्टम पुत्ररूप में श्रीमन्नारायण देवकी के गर्भ में आ गये।' व्यासजी से जनमेजय ने प्रश्न किया, 'हे व्यासजी! किस देवता के अंश से कौन उत्पन हुआ? कृपया यह बतायें।' व्यासजी इस प्रकार कहते हैं –

| **प्रथम जन्म** | | **द्वितीय जन्म** | **प्रथम जन्म** | | **द्वितीय जन्म** |
|---|---|---|---|---|---|
| कश्यप | – | वसुदेव | अदिति | – | देवकी |
| शेषजी | – | बलराम | नारायण | – | कृष्ण |
| नर | – | अर्जुन | धर्म | – | युधिष्ठिर |
| वायु | – | भीम | अश्विनीकुमार | – | नकुल और सहदेव |
| सूर्य | – | कर्ण | धर्म | – | विदुर |
| बृहस्पति | – | द्रोणाचार्य | शिव | – | अश्वत्थामा |
| समुद्र | – | शान्तनु | गन्धर्वराज | – | देवक |
| द्यौवसु | – | भीष्म | मरुत | – | विराट् |
| अरिष्टनेमि पुत्रहंस | – | धृतराष्ट्र | मरुदंश | – | कृपाचार्य |
| मरुदंश | – | कृतवर्मा | कलि | – | दुर्योधन |

*************************************************************************************

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| द्वापर | – | शकुनि | सुवर्य | – | सोमप्ररू |
| अग्नि | – | धृष्टद्युम्न | राक्षस | – | शिखण्डी |
| सनत्कुमार | – | प्रद्युम्न | वरुण | – | द्रुपद |
| लक्ष्मी | – | द्रौपदी | विश्वेदेवा | – | द्रौपदी पुत्र |
| सिद्धि | – | कुन्ती | धृति | – | माद्री |
| मति | – | गान्धारी | विप्रचित्ति | – | जरासंध |
| कृष्णपत्नियाँ | – | देवांगनाएँ | हिरण्यकशिपु | – | शिशुपाल |
| प्रह्लाद | – | शल्य | कालनेमि | – | कंस |
| हयग्रीव | – | केशी | अनुह्लाद | – | धृष्टकेतु |
| भगदत्त | – | वाष्कल | खर | – | धेनुकासुर |
| वाराह | – | चाणूर | किशोर | – | मुष्टिक |
| बलिपुत्री | – | पूतना | | | |

यम, रुद्र, काम, क्रोध का समेकितावतार – अश्वत्थामा

**यमो रुद्रस्तथा कामः क्रोधश्चैव चतुर्थकः । तेषामंशैस्तु संजातो द्रोणपुत्रो महाबलः ।।**

(देवीभागवत ०४.२२.४७)

'हे राजन्! ब्रह्मादि देवता पृथ्वी सहित जब विष्णु के पास गये, तब उन्होंने अपने दो बाल – एक काला (कृष्ण), एक सफेद (बलराम) दिये थे। उनसे ही ये दोनों उत्पन्न हुए हैं।

**हरिणा च तदा दत्तौ कैशौ खलु सितासितौ । श्याम वर्णस्ततः कृष्णः श्वेतः संकर्षणस्तथा ।।**

(देवीभागवत ०४.२२.५०-५१)

व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! उधर रोहणी से बलराम हो गये। इधर कंस ने द्वारपालों को सचेत कर दिया। देवकी के लिए कारागार का पहरा भी कड़ा हो गया। अब रात-दिन स्वप्न में तथा जाग्रत में कंस कृष्ण का ही चिन्तन करता है। देवकी के दिव्य-तेज-आभा-प्रभा-कान्ति-दीप्ति-मण्डल को देखकर कंस तो चकरा गया। बोला, 'आ गया! आ गया!! नहीं छोड़ेगा! मैं नहीं छोड़ूँगा!!! आदि। '**मृत्यु रूपः स बालकः**' ये मेरी मौत है बालक।'

व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! इधर ये व्याकुल है पापात्मा, किसी का जीवन लेने के लिए। उधर देवकी व्याकुल है, किसी को जीवन देने के लिए। ये अपनी रक्षा के लिए मरा जा रहा है, देवकी और की रक्षा मे घुली जाती हैं। ये अमर को मारना चाहता है, पर मार नहीं पाता। किन्तु देवकी भक्ति की शक्ति है कि वह अजन्मा को भी जन्म देकर दिखाती है, एक साधु परमार्थ में जीवन देते हैं और असाधु अपने लिए सबको मार सकता है। उस अपूर्व क्षण में प्रसव पीड़ा के मध्य देवकी ने यशोदा के साथ हुई वार्ता वसुदेव को सुनायी, 'हे देव! नन्दरानी ने कहा था, तुम अपना पुत्र मेरे यहाँ भेज देना। मैं उसका तुम्हारी ही तरह पालन करुँगी तथा बदले में तुम्हें अपनी संतान दे दूँगी, तुम कंस को दे देना।'

**नन्दपत्न्या मया सार्धं कृतोऽस्ति समयः पुरा ।। त्वया पुत्रः मम मन्दिरे प्रेषितव्य ।।**

(देवीभागवत ०४.२३.१६-१७)

'**अपत्यं ते प्रदास्यामि**' जिसे उसके विश्वास के लिए तुम कंस को लौटा देना। कहते-कहते निशीथ बेला में अद्भुत बालक को जन्म दे दिया। '**बाले बाले कानि ब्रह्माण्डानि यस्य सः बालकः**' - '**रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड**' (रामचरितमानस ०१.२०१) बालक के दिव्यस्वरूप से विमुग्ध दम्पती उसकी रक्षा की चिन्ता करने लगे। तभी आकाशवाणी ने कहा,

*************************************************************************************

'वसुदेव! तुम बालक को गोकुल ले जाओ। यहाँ सब अचेत कर दिये गये हैं, द्वार खोल दिये गये हैं।'

**मया निद्राविमोहिताः सर्वे द्वारपालाः । विश्रृंखलानि विवृत्तानि कृतानि अष्टकपाटानि च ।।**

'योगमाया को ले आओ।' वसुदेवजी चले, तो वर्षाकालीन तीव्रगामिनी यमुना भी मार्ग देकर धन्य हो गयी। नन्द घर पहुँचे, तो स्वयं सर्वेश्वरी भगवती ने सैरन्ध्री (नाइन) बनकर योगमाया (बालिका) वसुदेव को दी तथा बालक को लेकर यशोदा के पास सुला दिया।

**तत्रागत्य ददौ देवीं सैरन्ध्रीरूपधारिणी । वसुदेवः सुतं दत्वा सैरन्ध्रीकरपङ्कजे ।।**

(देवीभागवत ०४.२३.३४)

वसुदेवजी पुनः जेल में आ गये। कन्या के रोदन से पहरेदार जग गये। दौड़ा-दौड़ा कंस आ गया और जैसे-ही रोते देवकी की गोद से उसने बालिका को लेकर देखा चकित हो गया, 'अरे! आकाशवाणी झूठी, नारद झूठे, ज्योतिषी झूठे। ये तो कन्या है।' स्वार्थान्ध कंस ने बिना सोचे उस बालिका का पैर पकड़ घुमाया और जैसे-ही पटकना चाहता था कि चमत्कार ... ... ... !! हाथ से छुटकर अष्टभुजी भगवती अन्तरिक्ष में खड़ीं होकर बोलीं, 'अरे पापी! मुझे मारने से क्या? तेरा मारने वाला तो उत्पन्न हो चुका है; जो तुझे निश्चित मारेगा।'

**किं मया हतया पाप जातस्ते बलवान् रिपुः ।। हनिष्यति दुराराध्यः सर्वथा त्वां नराधमम् ।**

(देवीभागवत ०४.२३.४६-४७)

हतमनोरथ हुए कंस ने खिन्न होकर सभा की तथा सद्यजात शिशुओं को मारने की आज्ञा पूतना आदि को दे दी। व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! गोकुल कंस के सन्देह में था ही; नारदजी ने भी बताया था कि नन्दादि समस्त गोप और गोपी देवता हैं।'

**गोकुले ये च नन्दाद्यास्तत्पत्न्यश्च सुरांशजाः**

(देवीभागवत ०४.२४.०४)

पूतना, वकासुर, वत्सासुर, धेनुकासुर, प्रलम्ब आदि को मारकर कृष्ण ने गोवर्धन को भी उठा लिया। तब कंस ने युक्तिपूर्वक धनुषयज्ञ के बहाने अक्रूर द्वारा कृष्ण बलराम को मथुरा बुलवा लिया, मानो अपनी मौत को बुलाया है। यहाँ आते ही कृष्ण और बलराम ने तोड़-फोड़ शुरू कर दी। मामा-नाना का घर तो आनन्द के लिए होता ही है। धनुष, तोड़ा धोबी मारा, कुवलयापीड़ हाथी मार दिया। चाणूर, मुष्टिक, शल, तोषल को मारकर कंस को भी मार दिया। मानो उपहास करते हुए बोले, 'मामा लो प्रसाद ...!' उग्रसेन को राजा बनाया।

अब वसुदेव ने उनका उपनयन संस्कार कराके उज्जैन में सन्दीपनि ऋषि के यहाँ पढ़ने भेजा। वे पढ़कर आ गये। सत्तरह बार कंस के श्वसुर जरासंध को परास्त कर अपनी राजधानी द्वारिका बनाकर सबको वही सुरक्षित भेजा तथा कालयवन को मुचुकुन्द द्वारा मरवा दिया। उस समय आगे-आगे कृष्ण भागते है, पीछे-पीछे कालयवन। कृष्ण गुफा में घुस गये जहाँ मुचुकुन्द सोये थे। उस कालयवन ने कृष्ण जानकर उन्हें पैर की ठोकर मारी। (**'स पादेन अताडयन्नृपम्'**) मुचुकुन्द ने आँखें खोलीं तो उनकी दृष्टि के तेज से यवन भस्मसात् हो गया। मुचुकुन्द को ये वर था कि जो उन्हें जगायेगा, वह भस्म हो जायेगा। इन्होंने देवासुर-संग्राम में देवताओं की सहायता करके दीर्घकाल तक निर्विघ्न निद्रा सुख माँगा था। मुचुकुन्द ने कृष्ण के दर्शन किये। तदनन्तर क्रमशः रुक्मणि, जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रवृन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा, नाग्नजिती – ये आठ पटरानियाँ कृष्ण की हुईं। रुक्मणि से प्रद्युम्न हुए, उन्हें शम्बरासुर चुरा ले गया। कृष्ण ने दुःखी हो भगवती की स्तुति की, 'हे माँ! मेरे ऊपर कृपा करके मेरा पुत्र प्रदान करो। माँ! पुत्रजन्मोत्सव-जैसा संसार में दूसरा सुख नहीं है, तो पुत्रमरण जैसा शोक भी नहीं है। अब आपको छोड़कर कहाँ जाऊँ? मैं तो तुम्हारी शरण में आ गया। अब आप चाहे जो करो। मैं आपको संतुष्ट कर देने वाला यज्ञ अथवा व्रत करूँगा।' (**'यज्ञ करोमि तव तुष्टिकरं व्रतं वा'**)।

व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! श्रीकृष्ण के सम्मुख भगवती प्रकट हो गयी तथा बताया, 'कृष्ण! शम्बरासुर ने तुम्हारा पुत्र हर

*************************************************************************************

लिया है। सोलह वर्ष बाद शम्बारासुर को मारकर सपत्नीक वह घर आयेगा।'

**आगमिष्यति पुत्रस्ते मत्प्रसादान्नसंशय**

(देवीभागवत ०४.२४.६१)

जनमेजय कहते हैं, 'हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वज्ञ विष्णु की ये हालत कि उनका अपना पुत्र चुरा लिया जाय तथा पता न चले और वे रोते रहें।' व्यासजी बोले, 'राजन्! ईर्ष्या, द्वेष, मद, मात्सर्य, काम, क्रोध, जरा, मृत्यु, शोक, संशय, हर्ष और विषाद लगते ही लगते हैं, चाहे वह कोई हो; स्वयं विष्णु ही क्यों न हो। देखो! राम की क्या हालत हुई? वानरों की सहायता से वे सीता पा सके। परमात्मा होने पर भी मानवोचित कर्म करने के कारण ही वे मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। वैसे ही कृष्ण भी मानवोचित जीवनजी रहे हैं। अतः शंका ठीक नही है। पत्नी की इच्छा से कल्पवृक्ष लाना तथा पुत्रार्थ उपमन्यु को गुरु बनाकर शिवाराधन करना। मुण्डी बने एक मास तक फलाहारी रहे।'

**उपमन्युं गुरुं कृत्वा दीक्षां पाशुपतीं हरिः ।। ......... उग्रं तत्र तपस्तेपे मासमेकं फलाधनः ।।**

(देवीभागवत ०४.२५.३०-३१)

दूसरे मास एक पैर पर खड़े रहकर जलाहारी रहे। तीसरे निराहारी पैर के अँगूठे पर खड़े रहे। इसी प्रकार छह मास तक तप किया। शिव प्रसन्न हो गये। कृष्ण ने दण्डवत् प्रणाम किया। शिव ने कहा, **'वरं ब्रूहि'** - वर माँगो। कृष्ण ने भव्य स्तुति की, 'हे देवाधिदेव महादेव! हे गंगाधर!! हे वृषभध्वज!! हे आशुतोष!!! मैंने जीवन में भारी कष्ट पाया है – जेल में जन्म, नन्दगांव का कष्टभरा जीवन, कंसादि के अत्याचार, मथुरा का त्याग करके यहाँ आया तो गृहस्थी का जंजाल। उबारो नाथ! इस संकट से ...। मैं आपकी शरण में आया हूँ।'

**शरणं तेऽद्य सम्प्राप्तो रक्षणार्थं त्रिलोचन ।। ........ त्राहि मां शरणं प्राप्तं भवभीतं भवाधुना ।**

(देवीभागवत ०४.२५.४३-४४)

'हे देव! मैं तो पुत्राकांक्षा से आया हूँ। (**याचे पुत्रसुखं विभो**) व्यासजी कहते हैं, 'शिव प्रसन्न हुए और १६०५० रानी तथा प्रत्येक से १०-१० पुत्र होने का वर दे दिया।'

**स्त्रीणां षोडशसहस्त्रं भविष्यति शतार्धकम् ।। तासु पुत्रा दश दश भविष्यन्ति महाबलाः ।**

(देवीभागवत ०४.२५.५७-५८)

भगवती उमा ने कहा, 'कृष्ण! गान्धारी तथा ब्राह्मण के शाप से तुम्हारे वंश का १०० वर्ष बाद विनाश होगा।' कृष्णजी गुरु उपमन्यु को प्रणाम करके द्वारिका आ गये। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! प्रपञ्च माया के वशवर्ती हैं। अतः ब्रह्मादि को भी देखकर शंका नहीं करनी चाहिए तथा सदा माँ से प्रार्थना करें, माँ! मेरा जन्म हो, तो उस घर में ना हो जहाँ आपकी आराधना नहीं होती। इस आख्यान का श्रोता भाग्यशाली होता है।'

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं चतुर्थः स्कन्धः ।।*

*************************************************************************************

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। पञ्चमः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### प्रणवार्थ निरूपण, तीनों देवों में शिव श्रेष्ठ, भगवती की महिमा विशेष है, बंधन का कारण अहंकार है, महिषासुर का तप, महिषासुर ने स्वर्ग पाने की लालसा में इन्द्र के पास दूत भेजा, महिषासुर और इन्द्र का युद्ध, ब्रह्मादि की पराजय

शौनकादि ऋषियों ने सूतजी से पूछा, 'हे सूतजी! सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण ने शिव की उपासना क्यों की? क्या शिव विष्णु की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं?' सूतजी कहते हैं, 'ऋषियों! यही प्रश्न जनमेजय ने भी किया था, जिसका उत्तर देते हुए व्यासजी ने कहा था, 'राजन्! श्रीकृष्ण परमात्मा होते हुए भी लोकशिक्षा के लिए वर्णाश्रमधर्म का पालन करते देवाराधन करते हैं, वृद्धों-गुरुजनों की सेवा करते हैं। साधारण नर-जैसा आचरण करते हैं। उनके देखते-देखते ही गान्धारी तथा ब्राह्मण (अष्टावक्र) के शाप से उनका वंश नष्ट हो गया। फिर कृष्ण शिव की उपासना करें, तो क्या अचरज? क्योंकि विष्णु की उत्पत्ति तो शिव से ही हुई है।

**स हि सर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम्**

(देवीभागवत ०५.०१.२१)

'हे राजन्! ॐ में अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार सदाशिव, अर्धमात्रा भगवती शिवा हैं। ये सभी क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहे जाते हैं।'

**अकारो भगवान् ब्रह्माप्युकारः स्याद् हरिः स्वयम् ।।**
**मकारो भगवान् रुद्रोप्यर्धमात्रा महेश्वरी । उत्तरोत्तर भवेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः ।।**

(देवीभागवत ०५.०१.२२-२३)

शिवजी स्वेच्छा से ही ब्रह्मा के ललाट से उत्पन्न होकर जगत्पूज्य हुए। ये सब भगवती के सान्निध्य का ही परिणाम है। सब कुछ भगवती की प्रेरणा ही कराती हैं। कृष्ण अपने परिजनों की इच्छा पूर्ण करते हैं। रुक्मिणी का हरण किया गया, सब मााया परवश हो

*************************************************************************************

कर ही किया। वास्तव में तो जगत में बन्धन के कारक स्त्री, पुत्र सम्बन्धी नहीं, अहंकार ही होता है।'

**न नारी न धनं गेहं न पुत्रः न सहोदराः ।। बन्धनं प्राणिनां राजन्नहंकारस्तु बन्धकः ।**

(देवीभागवत ०५.०१.३८-३९)

'जिसने अहंकार त्याग दिया, वह शुद्ध-मुक्त स्वरूप हो जाता है। उसके लिए न शोक, न रोग, न राग कुछ नहीं रहता। विष्णु ने भी वैकुण्ठ त्यागकर कभी स्वेच्छया अवतार नहीं लिया; अपितु माया के वश होकर ही लिया हैं। ये तीनों देव भी मायातन्त्री परवश ही हैं।' जनमेजय ने व्यासजी से विस्तारपूर्वक भगवती का चरित्र जानना चाहा, तो व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! पूर्व में भयंकर बलशाली महादैत्य महिषासुर ने सुमेरु पर्वत पर जाकर दस हजार वर्ष तक भारी तप किया। ब्रह्माजी ने आकर प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'वत्स! वर माँगो।' असुरराट् ने तो अमरत्व माँगा – '**यथा मृत्युभयं न स्यात्तथाकुरु पितामह**'। ब्रह्माजी बोले, 'वत्स! संसार का नियम है – जन्म लेने वाला मरण अवश्य पाता है, मृत जन्म अवश्य लेता है।'

**उत्पन्नस्य ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च**

(देवीभागवत ०५.०२.०९)

तब विचार करके महिषासुर ने कहा, 'ब्रह्मन्! तब ठीक है। मेरा मरण स्त्री के अतिरिक्त किसी से न हो। ये अबला बिचारी मुझे क्या मार पायेगी?'

**तस्मान्मे मरणं नूनं कामिन्याः कुरु पद्मज । अबला हन्त मां हन्तुं कथं शक्ता भविष्यति ।।**

(देवीभागवत ०५.०२.१३)

ब्रह्माजी ने 'तथास्तु' कह दिया, 'जब भी तुम मरोगे, तब स्त्री के हाथों ही मरोगे'। व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! वर प्राप्त करके मदोन्मत्त महिषासुर अपने भवन में आ गया।' जनमेजय ने पूछा, 'परन्तु इसे महिष जैसा रूप क्यों मिला?' तब व्यासजी ने उत्तर दिया, 'हे राजेन्द्र! दनु के दो पुत्र थे – रम्भ और करम्भ। उन्होंने पुत्र प्राप्त्यर्थ भारी तप किया। इन्द्र ने करम्भ को जल के अन्दर ही ग्राह बनकर मार डाला। अपने भाई की मृत्यु से दुःखी रम्भ भी मरना चाहता था। तबतक अग्निदेव ने उसे आत्महत्या से रोककर कहा, 'अरे दानवेन्द्र! जिस स्त्री पर तुम्हारा मन आ जायेगा, उसी से तुम्हें त्रैलोक्य विजेता श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त होगा। वह काम रूपधारी होकर भी अजेय होगा। हे नरेन्द्र! रम्भ का मन एक महिषि पर आ गया। उसकी मस्ती से आकर्षित रम्भ ने महिष का रूप धारण करके उससे ये पुत्र प्राप्त किया। एक दिन वन्य महिषियों के साथ युद्ध में रम्भ मारा गया। ये बिचारी यक्षों की शरण जाकर कथमपि बच पायी। वहाँ तभी सती होते हुए ही महिषासुर का जन्म हुआ।'

**महिषस्तु चिता मध्यात् समुत्तस्थौ महाबलः**

(देवीभागवत ०५.०२.४७)

'पुत्र वात्सल्यवश रम्भ पुनः रक्तबीज बनकर प्रकट हो गया। महिषासुर को दानवेन्द्र के पद पर अभिषिक्त कर दिया गया।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजेन्द्र! महिषासुर ने चिक्षुर को सेनापति बनाकर सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में कर लिया तथा ताम्रासुर को कोषाध्यक्ष बनाया। भयभीत राजा इसे कर देने लगे और ब्राह्मण यज्ञ भाग देने लगे।'

**ब्राह्मणा वशगा जाता यज्ञभागसमर्पकाः**

(देवीभागवत ०५.०३.०७)

महत्वाकांक्षी अभिमानी महिषासुर ने पृथ्वीलोक से ऊपर स्वर्ग को जीतने की इच्छा से इन्द्र को सन्देश भेजा, 'अरे इन्द्र! या तो स्वर्ग छोड़ दो या फिर हमारी सेवा करो। अरे अहिल्याजार! तुम्हें जो इष्ट हो, शीघ्र करो।' इन्द्र ने जैसे ही सुना तो भड़क उठा, 'अच्छा, तो अब इसका मदज्वर उतारना ही पड़ेगा' – '**चिकित्सां संकरिष्यामि**'। इन्द्र ने कहा, 'तुम पशुवृत्ति के तृणभक्षक! गर्वीले महिष के दोनों सींगो को उखाड़कर धनुष बनाऊँगा, तेरे प्राण ले लूँगा।' दूत ने आकर सन्देश महिषासुर को दे दिया। भयंकर क्रोधाविष्ट महिषासुर

***************************************************************************************

ने दैत्यसभा में देवताओं के साथ युद्ध की घोषणा कर दी, 'अरे! ये महाछली है। इन्द्र हो या उसका छोटा भाई उपेन्द्र, इनसे सावधन होकर युद्ध करना होगा। अपनी सेना को संगठित कर चलो। शङ्कर भी मेरा सामना नहीं कर सकते, फिर विष्णु इन्द्रादि की क्या बात है?' स्वर्ग भोग पाने की लालसा में सभी दैत्य इकट्ठे हो गये। शुक्राचार्य की सम्मति से युद्ध सज्जा प्रारम्भ हो गयी। हे राजेन्द्र! बृहस्पति ने देवों से कहा, 'उधर इन्द्र ने भरी सभा के बीच महिषासुर का सन्देश सबको सुना दिया है। अब इस पापात्मा से सन्धि करना तो उचित है ही नहीं; किन्तु सहसा युद्ध करना भी ठीक नहीं हैं। पहले गुप्तचरों द्वारा उनकी गतिविधियाँ जान लेना चाहिए। हे देवों! बिना विचारे किया गया कार्य दुःखदायी होता है।'

**सहसा विहितं कार्यं दुःखदं सर्वथा भवेत्**

(देवीभागवत ०५.०४.१४)

'गुप्तचरों से सारी जानकारी प्राप्त करके देवराज इन्द्र ने देवगुरु से विचार विमर्श किया। बृहस्पतिजी ने जय अथवा पराजय से विचलित हुए बिना उद्योग को ही श्रेष्ठ बताया। उन्होंने कहा, 'हे इन्द्र! वास्तव में प्राणी का अधिकार कर्म करने में ही है, उसका फल तो दैव प्रदान करता है। अतः कभी भी प्राणी को शोक एवं मोह के सागर में नहीं पड़ना चाहिए। अनित्य शरीर की रक्षा में नित्य जीवात्मा क्यों क्लेश पायें? न तो मैं शरीर हूँ, न शरीर से मेरा कोई सम्बन्ध है। अतः सुख-दुःख से निर्लिप्त कर्म करो। ममता ही परम दुःख है। निमर्मत्व ही सुख है। सन्तोष से बड़ा सुख दुनिया में दूसरा नहीं है।'

**ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम् ।। सन्तोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते ।**

(देवीभागवत ०५.०४.४५-४६)

'हे देवेन्द्र! सुख सदा पुण्य को क्षीण करते हैं। दुःख पाप को क्षीण करते हैं। अतः बुद्धिमान दुःख आने पर सदा प्रसन्न होते हैं, अज्ञानी केवल रोते हैं।'

**सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष । तस्मात् सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ।।**

(देवीभागवत ०५.०४.४९)

'देवराज! प्रयत्न करो। होनी तो होकर रहेगी।' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! देवराज ने युद्ध की घोषणा कर दी। इन्द्र ने कहा, 'हे गुरुदेव! आप ही मेरी शक्ति हैं, शस्त्र मेरा वज्र है, हरि सहायक हैं तथा उमापति महादेव भी समर्थक ही हैं। अतः निरुद्यम रहना ठीक नहीं।' रक्षोघ्नमन्त्रों के पाठ तथा गुरु की सम्मति से इन्द्र ने तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। यद्यपि बृहस्पति ने इन्द्र के उत्साह को तोलने के लिए कहा, 'हे देवेन्द्र! मैं जय अथवा पराजय का विश्वास नहीं दिलाता हूँ तथा न तुम्हें प्रेरित करता हूँ, न ही रोकता हूँ कि 'तुम युद्ध करो या मत करो' क्योंकि जय अथवा पराजय संदिग्ध होती हैं। स्वयं मेरा जीवन कितना दुःखभरा रहा है। मेरी पत्नी को चन्द्र ने हर लिया था। इन्द्र ब्रह्माजी की शरण में गये। वहाँ से शङ्कर के यहाँ गये। विष्णुलोक भी गये तथा विष्णु का स्तवन पुरुषसूक्त द्वारा किया। अन्ततः सभी देवताओं ने अपने-अपने वाहन सजाकर भारी युद्ध की तैयारी कर दी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय, गणेश; सब चल दिये। देवसेना ने दैत्यों की भारी सेना को (विडाल, चिक्षुर, ताम्रासुर को) परास्त कर दिया।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! ताम्रासुर के अचेत होने पर महिषासुर गदा लेकर इन्द्र की ओर दौड़ा तथा 'बलिभोक्ता', 'निर्बल' कहकर गदा का प्रहार किया, जिसे वज्र प्रहार से निरस्त करके इन्द्र ने भारी युद्ध किया। तभी महिषासुर ने शाम्बरी माया से करोड़ों स्वयं सदृश महिषासुर पैदा कर दिये।

**कोटिशो महिषास्तत्र तद्रूपास्तत्पराक्रमाः**

(देवीभागवत ०५.०६.०८)

'भयाक्रान्त देवसेना की रक्षा के लिए ब्रह्मा, विष्णु महेश आ गये। श्रीविष्णु ने दिव्य तेजोमय चक्र द्वारा माया का नाश किया। अब तो महिष, उग्रास्य, उग्रवीर्य, चिक्षुर, असिलोम, वाष्कल, अन्धकादि ने भारी संग्राम किया। अंधकासुर विष्णु के साथ पचास दिन

*************************************************************************************

तक युद्ध करता रहा। इस युद्ध में अमोघ सुदर्शनचक्र तक को अन्धक ने व्यर्थ कर दिया। तब भगवान् ने कौमोदकी गदा लेकर अन्धक व महिषासुर को अचेत कर दिया तथा पाञ्चजन्य ध्वनि से विजयघोष किया। फलतः दैत्य भाग गये।

व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय ! महिषासुर सिंह बनकर युद्ध करने लगा। विष्णु ने चक्र-प्रहार किया, तो वह पुनः महिष बन गया तथा सींग से प्रहार करके विष्णु को विकल कर दिया। वे वैकुण्ठ भाग गये। महिषासुर की उन्मत्त बलशालिनी सेना के साथ भयंकर युद्ध में देवता पराजित हो गये। अपने सींगों से महिषासुर पर्वतों को उखाड़ देता था। १०० वर्ष के युद्धोपरान्त महिषासुर देवलोकाधिपति इन्द्र बन गया। राज्यभ्रष्ट पीडात्रस्त अस्त-व्यस्त देवता ब्रह्माजी के पास गये तथा अपनी प्रार्थना से उन्हें अपने अनुकूल बना लिया। ब्रह्माजी ने कहा, 'हे देवेन्द्र ! वरोन्मत्त प्रमत्त दैत्येन्द्र का वध नारी ही कर सकती है, अतः सभी मिलकर शिवजी के पास गये। सबका स्वागत सत्कार करके शिव ने आने का कारण जानकर मुस्कराते हुए कहा, 'ब्रह्माजी ! तुम्हारे बोये बीजों का फल ही तो है महिषासुर। आप बिना बिचारे बेतुका वर देकर जगत् की शान्ति भग्न कराते हैं। अतः आओ ! चलो, विष्णु के पास चलें। वे बुद्धिमान हैं; किसी प्रपञ्च या बुद्धिकौशल से कार्य सम्पन्न कर लेंगे।'

**प्रपञ्चेन च बुद्ध्या स संविधास्यति साधनम्**

(देवीभागवत ०५.०७.५५)

## सर्वदेव तेज से दुर्गा प्रकट हुईं, देवस्तुति, देवी की गर्जना, असुर का दूत प्रेषण, भगवती का सन्देश ले दूत महिष के पास गया, असुर सभा में विमर्शोपरान्त 'युद्ध ही श्रेयस्कर है' - ये निर्णय हुआ, बाष्कल दुर्मुख वध, चिक्षुर तथा ताम्रासुर वध, बिडालाक्ष-असिलोमा वध

श्रीव्यासजी कहते हैं, 'हे राजन् ! तीनों लोकों से निराले वैकुण्ठ में अद्‌भुत आनन्द का वातावरण हुआ। वहाँ जाकर देवताओं ने विष्णु से अपनी पीड़ा व्यक्त की तथा उसकी पुरुषों से अबध्यता के साथ-साथ लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती व शची आदि से भी अबध्यता कही।' विष्णुजी ने कहा, 'यदि सभी देवताओं के संगठित तेज से दिव्य नारी का प्रादुर्भाव हो तथा उन्हें हम सब मिलकर शस्त्रास्त्र देकर युद्ध में भेजें तो विजयश्री हम सबका वरण कर लेंगी।'

**हन्तुं योग्या भवेन्नारी शक्तांशैर्निर्मिता हि नः**

(देवीभागवत ०५.०८.२९)

**हनिष्यति दुरात्मानं तं पापं मदगर्वितम्**

(देवीभागवत ०५.०८.३२)

ऐसा कहते ही सभी के मुखों से रक्तवर्ण का दिव्य तेज निकला। ब्रह्मतेज से रक्त रजोगुण रूप, विष्णुतेज श्याम वर्ण सत्वोपवृंहित, शिवतेज रजताभ गौरवर्ण तमोगुणरूप, तदनन्तर अन्य देवताओं के तेज सम्मिलित हो गये। उसी दिव्य तेज से महालक्ष्मी का उद्‌भव हुआ। जिनके अट्ठारह भुजाएँ थीं।

**त्रिगुणा सा महालक्ष्मी सर्वदेव शरीरजा। अष्टादश भुजा रम्या त्रिवर्णा विश्व मोहिनी ।।**

(देवीभागवत ०५.०८.४४)

व्यासजी महाराज कहते हैं, 'हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्रादि कोई भी माँ भगवती की महिमा को व्यक्त नहीं कर सकते।'

**न ब्रह्मा न हरिः साक्षान्न रुद्रो न च वासवः। याथातथ्येन तद्रूपं वक्तुमीशः कदाचन ।।**

(देवीभागवत ०५.०८.५५)

मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि वे प्रकट हुई। अन्यथा वे तो सर्वरूप हैं, सर्वत्र हैं, वे देवकार्यार्थ प्रकट हो जाती हैं। शिव तेज से मुखकमल बना, यमतेज से काली घुंघराली अलकाबलियाँ, अग्नि तेज से त्रिनेत्र, वायु तेज से कर्ण, कुबेर तेज से नासिका, प्रजापति

*************************************************************************************

तेज से दाँत, विष्णु तेज से अट्ठारह भुजाएँ; तदनन्तर सभी देवताओं ने माँ को आभूषण अर्पित किये। श्रीव्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय! क्षीरसागर ने दिव्य पीताम्बर, हार, कुण्डल, चूड़ामणि, कंकण, केयूरादि प्रदान किये; त्वष्टा ने नूपुर, वरुणजी ने न कुम्हलाने वाले कमलों की माला, हिमालय ने सिंह, विष्णुजी ने चक्रोत्पन्न करके चक्र दिया।

**विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्य ददावस्यै रथाङ्गकम्**

(देवीभागवत ०५.०९.०१)

शिवजी ने त्रिशुल से त्रिशूल दिया, वरुण ने शंख दिया, अग्नि ने द्रुतगामिनी शक्ति (बरछी) प्रदान की, वायु ने धनुष बाण दिये, इन्द्र ने वज्र प्रदान कर घंटा भी दिया, यमराज ने यमदण्डोत्पन्न यमदण्ड दिया, ब्रह्माजी ने गंगाजलपूर्ण कमण्डलु दिया, त्वष्टा ने कौमोदकी गदा दी; जिससे सैकडों घण्टानादों की ध्वनि निकलती थी। इस प्रकार शस्त्रास्त्रालंकारालंकृत सिंहासनारूढ़ा माँ भगवती की भव्य झाँकी से आकृष्ट देवता स्तुति करने लगे।

**नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः । भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः ।।**

(देवीभागवत ०५.०९.२३)

'हे माँ! कल्याणि! शिवे! शान्ति! पुष्टि! आपको नमन है। हे भगवती! हे रुद्राणी देवी! निरन्तर आपको नमस्कार है। हे माँ! आप माया से नहीं, माया आपसे है। हम देवगण आपकी शरण में देवारि-दैत्येन्द्र-महिषासुर के त्रास से त्रस्त होकर मुक्ति पाने आये हैं।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजेन्द्र! माता ने उन्हें आश्वस्त किया कि अब निर्भय हो जाओ। उस अधम धर्मविरोधी पापी को मैं मार डालूँगी।' और ऐसा कहकर दैत्यों को कँपाने वाला भारी अट्टहास किया। अन्तरिक्ष, आकाश, दिशाएँ सभी काँप उठे। दैत्यराज महिष ने पूछा, 'अरे! ये क्या है? जाओ! पता लगाओ। जो भी हो मन्दायुष्य को पकड़ लाना। मैं मार डालूँगा।'

दैत्यदूतों ने जाकर देखा, तो जगदम्बा की दिव्य झाँकी है। दिव्यायुधसम्पन्न-पराशक्ति को देख, बिना कुछ कहे ही, महिष के समीप जाकर समाचार कहा, 'हे महाराज! वह स्त्री अद्भुत-दिव्य है। सुन्दरता, वीरता, कमनीयता, कठोरता, स्त्रीत्व, शस्त्रधारिता, मधुपानता, सिंहासनारूढ़ता - ये अद्भुत समागम उस स्त्री में हैं।' दैत्येन्द्र ने सेना सहित सचिव को भेजकर उन माता को बुलाने का प्रयत्न किया, 'हे सचिव! मैं उसे पटरानी बना लूँगा। जाओ! साम, दाम, दण्ड द्वारा उसे लेकर आओ।' सचिव ने जाकर भगवती से निवेदन किया, 'हे देवि! यदि उचित समझें, तो आप चलें हमारे महाराज महिषासुर के पास अथवा मैं उनको ही ले आऊँ।'

**तर्ह्येहि मृगशावाक्षि समीपं तस्य धीमतः। नो चेदिहानयाम्येनं राजानं भक्तितत्परम् ।।**

(देवीभागवत ०५.०९.६६)

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! भगवती महालक्ष्मी ने उस दूत से कहा कि मैं देवताओं की माता महालक्ष्मी हूँ, दैत्यों के वधार्थ आयी हूँ। जाकर पापी महिष से कहो, 'तुरन्त पाताल लोक चला जाये, अन्यथा उसका जीवन अधिक नहीं रहेगा। ब्रह्मा के वरदान की पूर्ति करना ही मेरा धर्म है। मैं वही हूँ, जो तेरा काल है।' दूत ने कहा, 'हे देवि! ये कैसे सम्भव है कि एक अबला स्त्री एक भारी बलवान् का सामना कर सके। कहाँ कमलिनी, कहाँ उन्मत्त हाथी। अरे! चलो! अभिमान का त्याग करके सुखपूर्वक भोगोपभोग करो।' भगवती ने कहा, 'हे दूत! वह पशु है शरीर से, तुम पशु हो बुद्धि से। अरे! मैं स्त्रीं-पुरुष कुछ नहीं, मात्र ब्रह्मा के वर की रक्षा के लिए उसे मारने ही आयी हूँ। उस मूर्ख से कहना - 'स्त्री के हाथों मरण तो नपुंसकता है वीर के लिए। वही उसे रतिसुख दे रहा है। हे दूत! समय खराब होने पर तृण वज्रोपम हो जाता है। समयानुकूलता में वज्र भी रुई-जैसा कोमल हो जाता है। मैं स्त्री देखने में कोमल तृण जैसी हूँ, किन्तु पापी महिष का समय खराब आ गया है। अतः वज्र जैसी कठोर होजी रही हूँ।'

**विपरीतं यदा दैवं तृणं वज्र समं भवेत्**

(देवीभागवत ०५.१०.३६)

'हम नहीं मर सकते' - ऐसा संकल्प ही अज्ञानमूलक है। जाओ! अपने स्वामी से कहो कि या तो पाताल जाये या युद्धभूमि में

********************************************************************************

बेमौत मारा जाये।' व्यासजी कहते है, 'राजन्! दूत ने विचार करके देवी की सारी बातें महिषासुर को बता दीं, 'महाराज! वे तो कहती हैं, दुनिया में कोई स्त्री भैंसे का वरण नही कर सकती।'

**का मूढा कामिनी लोके महिषं वै पतिं भजेत्**

(देवीभागवत ०५.१०.६१)

'उसने यह भी आगे कहा, 'मैं तो उसकी मृत्यु हूँ' – ऐसा कहकर दूत चुप हो गया। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! महिषासुर ने मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा की। कटु औषध के समान अप्रिय होने पर भी सत्य ही हितकर होता है, किन्तु उसके श्रोता, मन्त्र, वक्ता अत्यन्त दुर्लभ हैं। अतः अन्तिम निर्णय बहुमत से होगा। सब अपना पक्ष रखें। विरुपाक्ष ने युद्ध को उचित बताया तथा युद्धार्थ सेना लेकर जाने लगा। दुर्धर ने भी समर्थन किया तथा देवि के सन्देश में कामपरक (शृंगारपरक) अर्थ लगाकर समझा दिया; जैसे बाण कटाक्ष, युद्ध कामकला–नैपुण्य, समर शय्या – रतिस्थल।' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! ताम्रासुर ने इन सबसे अलग रात्रि स्वप्न के व्याज से कहा, 'हे दैत्येन्द्र! ये सब अनहोनी (अठ्ठारह हाथ वाली स्त्री, एकाकी स्त्री, चेतावनी) सब अनिष्ट को सूचित करती हैं। मैंने मृत्युसूचक स्वप्न ऊषाकाल में देखा था। एक कृष्णाम्बरा नारी आँगन में रुदन करती थी। अस्तु! जो भी हो, जीवन–मरण दैवाधीन है। युद्ध करना ही उचित रहेगा।' महिषासुर ने ताम्रासुर को युद्ध के लिए भेज दिया। ताम्रासुर ने जाकर देवी को समझाने का प्रयत्न किया कि आप युद्धाभिलाषा त्यागकर रमण का सुख भोगो।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! माता ने कहा, 'हे ताम्र! उस पशुवृत्ति वाले दैत्येन्द्र का काल सन्निकट ही है। अतः व्यर्थ की बातें करता है। मैं ब्रह्मादिक देवताओं का वरण नहीं करती, तब इस दुर्गुणी पशु का वरण? फिर मेरा पति है, सर्वसाक्षी सर्वज्ञ पूर्ण शिव। हे ताम्र! जीवन प्रिय है, तो पाताल चले जाओ। अन्यथा युद्ध करके अपने प्राणों से हाथ धो बैठोगे।' व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय! माता ने भयंकर गर्जना करके सबको कँपा दिया। दैत्य स्त्रियों के गर्भ गिर गये। कुछ बहरे हो गये। ताम्र तो भागकर महिष के पास पहुँच गया। पुनः गंभीर मन्त्रणा होने लगी क्या करें? क्या न करें? विडालाक्ष ने कहा, 'हे दैत्येन्द्र! ये स्त्री विलक्षणा है। हो न हो, दैत्यसाम्राज्य का विनाश इसी स्त्री से निश्चित् होगा, अतः युद्ध न करना ही ठीक है।' किन्तु दुर्मुख, वाष्कल, दुर्धरादि ने मिलकर युद्ध को ही उचित माना और कहा, 'हे दैत्येन्द्र! तीन प्रकार के मन्त्री होते हैं – १. सात्विक – सर्वतोभावेन स्वामी के हितैषी; २. रजोगुणी समय के साथ करवटें बदलने वाले आत्महितैषी; ३. तमोगुणी – हर अवस्था में पापरत अनिष्ट करके अपना लाभ देखने वाले।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजेन्द्र! वाष्कल एवं दुर्मुख – दोनों अभिमानी मन्त्री सेना लेकर युद्ध करने चले। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। परस्पर एक–दूसरे के बाणों प्रहारों को विफल कर देते हैं। अन्ततः माँ जगदम्बा ने त्रिशूल प्रहार से वाष्कल को धराशायी कर दिया। प्राणान्त हो गया वाष्कल का ... ... । अब तो दुर्मुख अत्यन्त क्रोध करके माँ की ओर दौड़ा। भयंकर मार–काट में राक्षसों के रक्त से नदी सी बह चली। माता ने उसका रथ तोड़ दिया। उसने भी गदा के प्रहार से सिंह को विचलित करना चाहा, किन्तु सफल न हो सका। क्रोधपूर्वक माँ ने तलवार से उसका मस्तक काट गिराया। मर गया पापात्मा क्षण में ... ... ।'

**खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद मौलिमत्**

(देवीभागवत ०५.१३.४७)

'देवताओं ने जय–जयकार के साथ पुष्पवृष्टि की।' व्यासजी कहते हैं, 'हे नरेन्द्र! महिषासुर ने दुर्मुख व वाष्कल का वध सुन काल को ही बलवान् कहा, 'अरे! यही समय सुख–दुःख की प्राप्ति में हेतु है।'

**कालो हि बलवान् कर्ता सततं सुखदुःखयोः ।। नराणां परतन्त्राणां पुण्यपापानुयोगतः।**

(देवीभागवत ०५.१४.०३)

'अरे! एक स्त्री ने मेरे वीरों को मौत की नींद सुला दिया। आश्चर्य हैं!' तब भगवती को मारने का संकल्प करके भारी सेना लेकर चिक्षुर गया। माता ने घंटा, शंख व धनुष की टंकार से सारी सेना का आधा बल हर लिया। तदपि साहस करके सेनापति चिक्षुर ने कहा, 'हे विशालाक्षि! स्त्री को अवध्य माना गया है तथा उनसे युद्ध करना भी उचित–सा नहीं। अतः तुम्हें मैं मारना नहीं चाहता।'

****************************************************************************************

**स्त्रीवधे दूषणं ज्ञात्वा तथैवाकीर्तिसम्भवम्**

(देवीभागवत ०५.१४.१४)

भगवती जगदम्बा ने कहा, 'अरे मूर्खसेवी ! तुम तथा तुम्हारा स्वामी अतिशीघ्र रक्तरंजित मृतक के रूप में धरती का आलिंगन करोगे।' भयंकर युद्ध के बीच गदा प्रहार से माँ ने चिक्षुर को अचेत कर दिया। तब तक ताम्र आ गया। क्षणोपरान्त ताम्र तथा चिक्षुर – दोनों मिलकर माँ से युद्ध करने लगे। ताम्र ने जैसे–ही सिंह पर लोहे का मूसल मारकर अट्टहास किया, जगदम्बा ने उसका सिर काट दिया। तदनन्तर पाँच बाण मारकर चिक्षुर के तलवार से हाथ काटे, शेष तीन बाणों से उसका मस्तक काट गिराया। आकाशमण्डल से देवताओं की जय–जयकारपूर्वक पुष्पवर्षा होने लगी।' व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय ! अब तो पराजय से बौखलाए महिष ने असिलोमा और विडालाक्ष को समरांगण में भेजा। वहाँ उन्होंने देवी से पूछा, 'आप हम निरपराध दैत्यों का वध क्यों करना चाहती हो?'

**आगतासि किमर्थं वा हंसि दैत्यान्निरागसः**

(देवीभागवत ०५.१५.०५)

'हम संधि करना चाहते हैं – '**त्वया सन्धिं करोम्यहम्**'। हे देवि ! बुद्धिमत्ता यही है कि सुख एवं शान्तिपूर्वक जीवन जीया जाये। हे देवि ! संसार में आकर, दुःख त्यागकर सुख सेवन करना ही उचित है। नित्य–अनित्य भेद से सुख भी दो प्रकार का है – आत्मज्ञान नित्य, भोगज अनित्य। नाशवान् सुख को त्यागकर नित्य अविनाशी सुख पाने का प्रयत्न करना चाहिए।' विडालाक्ष की बातें सुनकर देवी ने कहा, 'हे दैत्य ! मैं न तो कहीं से आई हूँ, न ही जाने का ही प्रश्न है। मैं तो न्यायान्याय के अनुसार फल प्रदान करने के लिए सर्वत्र विचरण करती हूँ। न तो मेरा किसी से राग है, न द्वेष है। मैं तो साधु–रक्षण तथा असाधु–नाश करती हूँ। वैदिक वर्णाश्रम की रक्षार्थ युग–युग में मेरा अवतार होता है।

**साधूनां रक्षणं कार्यं हन्तव्यमप्यसाधवः। वेदसंरक्षणं कार्यं अवतारैरनेकशः ।।**

(देवीभागवत ०५.१५.२२)

'अब मैं महिषासुर के वधार्थ आयी हूँ। सन्धि हो सकती है, यदि महिषासुर देव–सम्पदा को वापिस करके पाताल चला जाये तो ...। अन्यथा उसे मरना ही होगा।' देवी के वचन सुनकर उचितानुचित के चिन्तनोपरान्त दैत्यों ने युद्ध का ही निर्णय किया और विडालाक्ष ने देवी के ऊपर सात बाण मारे। बदले में माता ने उसके बाणों को काटा और प्राणों का अपहरण कर लिया। असिलोमा ने कहा, 'हे दिव्ये ! मैं जानता हूँ कि समर में मरण ही होगा, तदपि युद्ध करना ही अब धर्म है।' भारी युद्ध करता हुआ रक्तरंजित सिंह को भी विचलित करने की इच्छा से आगे बढ़कर, सिंह पर चढ़ जगदम्बा के ऊपर गदा प्रहार करने की कामना करता; तब तक माता ने उसका सिर काट गिराया। दैत्यसेना में हाहाकार मचा। देवताओं ने दुन्दुभी बजाकर पुष्प–वर्षा कर हर्ष मनाया।'

## महिष द्वारा भगवती से वार्ता, महिष द्वारा मन्दोदरी की कथा, दुर्धर, अन्धकासुर, महिषासुर वध, भगवती की स्तुति, शुम्भ-निशुम्भ का चरित्र, शुम्भ और निशुम्भ की वर हेतु तपश्चर्या

व्यासजी बोले, 'हे कौरवेन्द्र ! अपनी पराजय सुनकर क्रोधाक्रान्त महिष ने दारुक को बुलाकर अपना सहस्र–गर्दभवाही रथ मँगाया। मनुष्य वेश में महिष रथारूढ़ हो चल दिया। सम्मुख जाकर बोला, 'देवि ! संसार में संयोग सुख देता है, वियोग दुःख देता है। सुनो ! संयोग मुख्यतया त्रिविध होता है : १. सुप्रीति संयोग – माता पिता को सन्तान के प्रति, उत्तम संयोग; २. हेतूत्थ संयोग – भाई का भाई के प्रति प्रयोजन विशेष से, अतः मध्यम; ३. स्वभावोत्थ संयोग – नौकारूढ बहुत से यात्री क्षणिक संयोगवश मिलते व घाट पर उतरकर अलग हो जाते है; अतः अधम है। इनकी अपेक्षा उत्तमोत्तम संयोग तो स्त्री और पुरुष का ही है।

**माता पित्रोस्तु पुत्रेण संयोगस्तूत्तमः स्मतृः। भ्रातुर्भ्रात्रा तथा योगः कारणान्मध्यमो मतः ।।**

(देवीभागवत ०५.१६.०७)

***************************************************************************************

**नाविकानां तु संयोगः अत्यल्प सुख । दातृत्वात्कनिष्ठोऽयं स्मृतो बुधैः ।।**

(देवीभागवत ०५.१६.१९)

**नारीपुरुषयोः कान्ते समानवयसोः सदा । संयोगः यः समाख्यात स एव अत्युत्तमः स्मृतः ।।**

(देवीभागवत ०५.१६.२१)

'इसलिए हे देवि ! आओ ! मेरी सहचरी बनकर आनन्द करो। क्या रखा है झगड़े-झंझटो में? तीनो लोकों की महारानी बनकर जीओ।' माँ ने सोचा, 'अधम है। अब क्या हूँ मैं?' दैत्येन्द्र ने कहा, 'मैं त्रैलोक्यविजेता दैत्येन्द्र आपका सेवक, आप मेरी स्वामिनी; जो आज्ञा करोगी, वही करूँगा।' वह विविध प्रकार से कामपीडित हो, जगदम्बा के आगे अनुनय विनय करने लगा। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन् ! माता ने कहा, 'हे दैत्येन्द्र ! परमपुरुष के बिना मैं किसी पुरुष को नहीं चाहती। उनकी इच्छाशक्ति हूँ, प्रकृति हूँ, शिवा हूँ; जड़ होने पर भी उनकी कृपा से चेतन हुई हूँ। जैसे जड़ लोहा चुम्बकाकर्षण से चेतन-जैसा हो जाता है; वैसे ही तुम मूर्ख हो ! ग्राम्य सुखासक्ति में बँधे हो। सच कहा है, 'स्त्री शृंखला के बन्धन-जैसी है नर के लिए। लोहे से बँधा मुक्त हो जाये, किन्तु स्त्रीबद्ध नहीं खुल सकता।'

**नरस्य बन्धनार्थाय शृंखला स्त्रीप्रकीर्तिता । लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्री बद्धो नैव मुच्यते ।।**

(देवीभागवत ०५.१६.३९)

'अरे अधम ! मल-मूत्रागार की आकांक्षा पतन का कारण बनती है। तेरी बातें अच्छी लगी, अतः तू जीवित बच सकता है। 'सज्जनों की मित्रता सात पग साथ चलने भर से हो जाती है। हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारा कल्याण इसी में है या तो तुम पाताल चले जाओ या फिर युद्ध करो।' राक्षस बोला, 'न तो पाताल ही जा सकता हूँ, न ही तुम्हें युद्ध में मार सकता हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो मुझे स्वीकार कर लो या फिर स्वेच्छया चाहे जहाँ चली जाओ। देखो ! स्त्री कभी भी पुरुष बिना, पुरुष स्त्री बिना सुख नहीं पा सकते। तुम मेरी बात मानकर मेरा वरण कर लो, अन्यथा मन्दोदरी के समान भारी क्लेश पाना पडेगा।'

भगवती ने पूछा, 'ये मन्दोदरी कौन थी?' महिषासुर प्रवक्ता, माता श्रोता। कथा प्रारम्भ हुई। दैत्येन्द्र बोला, 'देवि ! सिंहल नामक देश, वहाँ चन्द्रसेन नामक राजा धर्मपूर्वक प्रजापालन करता था। महारानी गुणवती के पावन गर्भ से मन्दोदरी का जन्म हुआ। समय होने पर राजा ने अपनी पुत्री का विवाह मद्रदेशवासी सुधन्वापुत्र कम्बुग्रीव यशस्वी के साथ निश्चित किया। किन्तु मन्दोदरी ने कहा, 'मैं विवाह नहीं, ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी।'

**नाहं पतिं करिष्यामि नेच्छा मेस्ति परिग्रहे । कौमारं व्रतमास्थाय कालं नेष्यामि सर्वथा ।।**

(देवीभागवत ०५.१७.१५)

'परतन्त्रता में क्लेश हैं, मैं तपस्या करूँगी। ससुराल के बन्धनों से मुक्ति कदापि संभव नहीं है। कदाचित सुनीति-जैसी घटना घट जाये ... ... । कोई सौत आ जाये, तो जीतेजी नरक हो गया। माँ ! वैसे भी स्त्री को संसार में सुख नहीं हैं। पति मरण पर वैधव्य, परदेश जाने पर विरह ...। सर्वथा मरण-ही-मरण है। अतः मैं विवाह नहीं करूँगी।' युवती होने पर भी मन्दोदरी का चित्त भगवद्भाव में ही रमा रहा। एक दिन उद्यान में सखियों सहित क्रीडा करती हुई इसने कौशल देश के राजा वीरसेन के निमन्त्रण को भी ठुकरा दिया। शतधा सखियों के समझाने पर भी हठपूर्वक वह नहीं मानी। वीरसेन तो अपनी नगरी चला गया। ये भी सब महल में आ गयी।'

महिषासुर कहता है, 'हे देवि ! मन्दोदरी की छोटी बहिन इन्द्रमती थी। स्वयंवरविधि से उसका विवाह सम्पन्न किया। तभी वहाँ मद्रदेश का एक दुश्चरित्र धूर्त राजा मन्दोदरी को भा गया। उसने कहा, 'हे पिताजी ! मेरा विवाह भी कर दीजिए। चन्द्रसेन ने मद्राधिपति चारुदेष्ण से मन्दोदरी का विवाह प्रसन्नतापूर्वक कर दिया। किन्तु चारुदेष्ण दासियों तक से भोग करता था। फलतः मन्दोदरी पश्चात्ताप करने लगी, 'अरे ! मैं न तो घर की रही न घाट की। आत्महत्या महापाप, पिता गृहवास उचित नहीं, इस पापी के साथ निभ पाना संभव नहीं।' विचार करके मन्दोदरी ने वैराग्यपूर्वक वहीं रहना निश्चित कर लिया। 'हे देवि ! कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें भी मन्दोदरी जैसे धोखा खाना पड़े। अतः मेरा वरण कर सुखभोग लो।' माता ने कहा, 'अरे अधम ! कथा बन्द कर ! पाताल जा अथवा युद्ध कर ! !'

************************************************************************************

**मन्दात्मन् गच्छ पातालं युद्धं वा कुरु साम्प्रतम्**

(देवीभागवत ०५.१८.२१)

व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! इस प्रकार दोनों में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। दुर्धर को मारकर माता ने त्रिनेत्र और अन्धकासुर को भी मार दिया। गदा मारकर महिषासुर को अचेत कर दिया। महिष क्षण में सिंह, क्षण में हाथी बन जाता। सिंह ने उसको घायल करके बेहोश कर दिया। महिषासुर शरभ बन गया। उसको पराजित कर माँ ने द्राक्षासव का पान किया।'

**पीत्वा द्राक्षासवं मिष्टं शूलमादाय सत्वरा**

(देवीभागवत ०५.१८.५५)

तदनन्तर माता ने सुनाभ चक्र से उसका सिर काट गिराया। संसार में अपार हर्ष हो गया। पुष्पवृष्टि जय जयकार होने लगी। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन! सभी देवता प्रमुदित हो भगवती की आराधनापूर्वक स्तुति करते हैं, 'हे माँ! आपकी अनुकम्पा से ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश इस सकल प्रपञ्च का सृजन-पालन तथा संहार करते हैं। आपकी शक्ति बिना वे तृण भर भी नहीं कर सकते। अतः आप ही सर्वेश्वरी राजराजेश्वरी हैं।'

**ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः शक्तत्या तवैव हरते ननु चान्तकाले ।**
**ईशा न तेऽपि च भवन्ति तया विहीनास्तमात्व मेव जगतः स्थिति नाशकर्त्री ।।**

(देवीभागवत ०५.१९.०२)

'हे माँ! आप कण-कण में व्याप्त उसकी मौलिक सत्ता हैं। यश, कीर्ति, धन, विद्या, श्री, कान्ति, शोभा, ज्ञान, सौन्दर्य, कला - सब कुछ आप ही हैं। हे माते! आपकी कृपा के बिना कोई एक शब्द तक नहीं बोल सकता। '**वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवन्ति शक्ताः**' - माँ! जिन विष्णु, शिव की उपासना में रात-दिन एक कर देने वाले उपासक साधक भी शान्ति पा सकते हैं, जबकि बिचारे ये स्वयं शान्त नहीं हैं। भृगुजी के शापवश विष्णु को मीन, कमठ, नृसिंहादि अवतार लेने पड़ते हैं तथा शिवजी के लिङ्ग का पतन भी पुराण-प्रसिद्ध हैं।

**शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु। पश्चान्नृसिंह इति यश्छल कृत्धरायां ।।**
**तान्सेवतां जननि! मृत्युभयं न किं स्यात्।**

(देवीभागवत ०५.१९.१८)

**शंभो पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं शापेन तेन च भृगो विपिने गतस्य**

'हे माते! जो आपकी उपासना करता है, उसे जननी जठर में नहीं आना पड़ता। वही धन्य है।

**ते नाप्नुवन्ति जननी जठरे तु दुःखं धन्यास्तु एव मनुजाः त्वयि ये विलीनाः।**

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! इस प्रकार स्तुत होने पर माँ ने कहा, 'जब जब संकट आवे मुझे याद कर लेना।' देवों ने कहा, 'हे माँ! हे करुणामयी माँ! हे दयामयी माँ! आपकी कृपा से सब कार्य सम्पन्न हो गया।

**भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते**

दुर्गासप्तशती ०४.३४

**सर्वं कृतं त्वया देवि कार्यं नः खलु साम्प्रतम् । यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।।**

(देवीभागवत ०५.१९.३६)

'हे माँ! हम सत्य कहते हैं। (**मनसा कर्मणा वाचा ब्रूमः सत्यं पुनः पुनः**) हर अवस्था में आपकी कृपा का अनुभव करते रहें। आपके चरण-कमल की रज के अलावा हमारी शरण नहीं हैं।

**अन्यथा शरणं नास्ति त्वत्पादाम्बुजरेणुतः**

(देवीभागवत ०५.१९.४३)

*****************************************************************************************

जनमेजय ने पूछा, 'महाराज! मातृचरित्र के श्रवणमात्र से मानव देवता बन जाता है।'

**पीतेन येन अमरतां प्रयाति धिक् तान् नरान् ये न पिबन्ति सादरम्**

(देवीभागवत ०५.२०.०२)

जो भगवती गुणगाथा नहीं गाते, उन्हें धिक्कार है। पीड़ित, रोगी, आर्त, शोकाकुल, अशक्त, संसारानल दग्ध को तो अवश्य ये कथा सुननी चाहिए। 'हे महाराज! मेरी तो अटल धारणा है – जिन्होनें पूर्वजन्मों में माता की आराधना श्रद्धाभावपूर्वक कुन्द, चम्पा के पुष्प तथा विल्वपत्रों द्वारा की; वे ही सुखी राजोचित जीवन जीने वाले हैं। जिन्होंने आराधना नहीं की वे परतन्त्र, श्रमजीवी, दरिद्र, भृत्य होकर क्लेश भोगते हैं। हे महाराज! महिषासुर को मारकर, देवताओं को वर प्रदान करके वे कहाँ चली गयी?' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! वे जगदम्बा अपने मणिद्वीप पर ही विहार करने के लिए चली गयी। देवताओं ने सूर्यवंशी शत्रुघ्न को महिषासुर के स्थान पर राजा बनाया। पृथ्वी पर पुनः धर्मराज्य की स्थापना हो गयी। जल वर्षा समय पर होने लगी। वर्णाश्रमाचार प्रचार हो गया। सात्विकता का प्रभाव भूमि पर बढ़ गया। फलतः अधर्म नष्ट प्रायः हो गया। चोर, लुटेरे, डाकू, दम्भी, पापी, पाखण्डी, छली – सब नष्ट ही हो गये। ब्राह्मण दान-धर्मपरायण वेदनिष्णात्, क्षत्रिय पालनतत्पर, वैश्य व्यापारनिरत, शूद्र सेवा आदि करने लगे।

**बभूवु र्व्रत निष्णाता दान धर्म परास्तथा ।।**

**क्षत्रिया पालने युक्ता वैश्याः वणिज वृत्तयः । कृषि वाणिज्य गोरक्षा कुसीद वृत्तयः परे ।।**

(देवीभागवत ०५.२०.४६-४७)

व्यासजी सुनाते हैं, 'नृपेन्द्र! प्राचीनकाल में शुम्भ और निशुम्भ नामक भयंकर चरित्र वाले दैत्य हुए। इनकी मृत्यु पुरुष द्वारा सम्भव नहीं थी। अतः देवताओं के राज्य को भी इन्होंने अपने वश में कर लिया। ये दोनों सहोदर पाताल त्यागकर युवावस्था में ही दिव्य तीर्थ पुष्कर में जाकर तप करने लगे। दस हजार वर्ष तक एक ही आसन पर तप किया। ब्रह्माजी आ गये, बोले – '**वरं ब्रूहि**' (वर माँगो)। उन्होंने उठकर दण्डवत् प्रणाम किया तथा बोले, 'अमरता दे दो।' ब्रह्माजी बोले, 'असम्भव! त्रैलोक्य में ऐसा सम्भव ही नहीं। मेरी तक उम्र निश्चित् है, तब तुम्हारी क्या बात? फिर जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित, जिसकी मृत्यु उसका जन्म निश्चित है। अवतारी का मरण नहीं, मुक्त का जन्म नहीं। अवतरण जन्म नहीं हैं, मोक्ष मौत नहीं हैं।

**जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च**

(श्रीमद्भगवद्गीता २१.२५)

व्यासजी कहते हैं, 'हे नरेन्द्र! उन दैत्यों ने विचारकर वर माँगा, 'हे ब्रह्मन्! ठीक है। आप हमें स्त्री वध्यत्व प्रदान करें। कोई पुरुष हमें न मार सके, स्त्री का हमें भय नहीं है।'

**पुरुषैरमराद्यैश्च मानवै मृग पक्षिभिः। अवध्यत्वं कृपासिन्धो देहि नौ वाञ्छितं वरम् ।।**

(देवीभागवत ०५.२१.२५)

'स्त्री स्वाभाविक अबला है। अतः उनकी हमें चिन्ता नहीं है।' ब्रह्माजी वरदान देकर चले गये। इन्होंने शुक्र को आचार्य बनाया तथा स्वयं राजा बन गये। चण्ड और मुण्ड सेनापति बने। रक्तबीज भी दो अक्षौहिणी सेना लेकर आ गया, धूम्रलोचन भी आ गया। इन्होंने इन्द्र को पराजित कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। इस काल की गति विचित्र है। राजा को रंक, रंक को राजा बना देता है। सौ यज्ञ करने वाला इन्द्र दर-दर की ठोकरें खाता फिरता है। सम्पूर्ण यज्ञों के भोक्ता शुम्भ और निशुम्भ ही हो गये।

## देवों ने भगवती की स्तुति, शुम्भ द्वारा दूतप्रेषण, धूम्रलोचन वध, चण्ड और मुण्ड का वध, रक्तबीज युद्धार्थ रणभूमि में पहुँचा, भगवती के विविध रूप, रक्तबीज वध

एक हजार वर्ष तक स्वर्ग पर शुम्भ का शासन रहा (१००००वर्ष तक तप, १००० वर्ष तक स्वर्ग)। देवता बिचारे गुरु की

*************************************************************************************

शरण में गये। उन्होंने आराधना की, 'हे कृपालो! हे गुरो! त्राहि माम्।' बृहस्पति ने कहा, 'देवताओं! दैव बलवान है। उसी के कारण ये दुर्दशा है। यज्ञों के मन्त्रों के उपासनाओं के फलदाता आज अत्यन्त त्रस्त होकर शोकाकुल हैं। फिर भी उपाय करना ही बुद्धिमत्ता है। सुनो! पहले माता ने महिषासुर के त्रास से हमारी रक्षा की थी तथा वरदान दिया था कि विपत्ति में स्मरण करने पर मैं पुनः आ जाऊँगी। अतः भगवती का आराधना करनी चाहिए।'

**स्मृताऽहं नाशयिष्यामि युष्माकं परमापदः**

(देवीभागवत ०५.२२.१७)

गुरु की आज्ञा से देवता हिमालय गये तथा '**ह्रीं**' बीज् (माया बीज) का विधिपूर्वक अनुष्ठान किया तथा स्तुति की 'हे माँ! आप आनन्दप्रदा हैं, दानवान्तकारिणी हैं, मनोरथ पूर्ण करने वाली माँ! आपके नाम और रूप अनन्त हैं। आपकी शक्ति ही तो जगत को चलाती है।'

**नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते ।**
**नमो दानवान्त प्रदे मानवानामनेकार्थ दे भक्ति गम्य स्वरूपे ।।**

(देवीभागवत ०५.२२.२५)

'हे माँ! आप ही स्मृति-मेधा-तुष्टि-पुष्टि-धृति-क्षमा-शान्ति हैं।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! इस प्रकार स्तुता देवि गंगा स्नानार्थ जाती थी, वहीं देवों को दर्शन दिया। देवताओं ने कातर दृष्टि से जगदम्बा की ओर देखकर और रोकर प्रार्थना की, 'माँ! पापी शुम्भ-निशुम्भ से हमारी रक्षा करो। आपके बिना कोई रक्षक नहीं दिखता है।' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! भगवती ने अपने स्वरूप से पृथक् स्वरूप प्रकट किया, जो 'कौशिकी' नाम वाली देवि हुई। शेष कृष्ण वर्ण वाली काली हुई।

**कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते। तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णा भूत्सापि पार्वती ।।**
**कालिकेति समाख्याता हिमाचल कृताश्रया । कृष्ण रूपाथ संजाता कालिका सा प्रकीर्तिता ।।**

(देवीभागवत ०५.२३.०२-०३)

'देवताओं को आश्वस्त कर माँ कालिका सहित शुम्भ के उपवन में जाकर काम को मोहित करने वाले स्वर में गाने लगीं। प्रकृति भी प्रसन्न होकर शान्तभाव से मुग्ध हो गयी। चण्ड-मुण्ड ने भी मधुरगान सुना। पागल से आ गये बोले, 'अरे! तुम कौन हो? कहाँ से आयी हो?' उन्होंने सीधे जाकर अपने स्वामी से कहा, 'महाराज! दुनिया में अद्वितीय स्त्रीरत्न है, प्राप्त करो। आपने जगती के सारे द्विव्य रत्न अपने अधीन किये हैं। अतः ये भी देख लो।'

**स्त्रीरत्नमेषां कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते**

(दुर्गासप्तशती ५.१००)

**त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्र नेदृशी वर्तते प्रिया**

(देवीभागवत ०५.२३.३०)

चण्ड और मुण्ड की बात सुनकर शुम्भ ने सुग्रीव को दूत बनाकर भेजा। सुग्रीव ने साम, दाम, नीति, द्वारा विविध प्रलोभन देकर माता को अनुकूल बनाने का प्रयास किया, 'हमारे महाराज त्रैलोक्यविजेता हैं, देवता उनसे काँपते हैं। आप चलकर उनका वरण कर लो। भगवती ने कहा, 'ठीक है सुग्रीव (दूत)! तुम्हारे महाराज बलवान्, धनवान्, महान् हैं; किन्तु क्या करूँ? अज्ञानतावश मेरी प्रतिज्ञा ने सब कार्य बिगाड़ दिया। जो युद्ध में मेरी समानता करके मुझे जीत लेगा, वही मेरा पति होगा।'

**श्रूयतामल्प बुद्धित्वाप्रतिज्ञा या कृता पुरा ।।**
**यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति । यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ।।**

(दुर्गासप्तशती ५.११९-१२०)

*************************************************************************************

'हे दूत! जाकर अपने स्वामी से कहो, मैं उनसे प्रभावित हूँ; किन्तु प्रतिज्ञाबद्ध होने से व्यथित हूँ। प्रतिज्ञा पूरी करके शुम्भ या निशुम्भ, जो चाहे, वरण कर ले।'

**जित्वां मां समरेणात्र विवाहं कुरु सुन्दर**

(देवीभागवत ०५.२३.६६)

व्यासजी कहते हैं, 'हे नृपेन्द्र! सुग्रीव ने कहा, 'देवि! ये क्या पागलपन है? जिनके सम्मुख बड़े-बड़े देवता तक नहीं टिक पाते, तुम अबला क्या कर सकोगी? बिना बिचारे बोलना उचित नही हैं। तुमको बलपूर्वक केश खींचते हुए यदि वहाँ ले जाया गया, तब क्या आदर रहेगा? अतः चुपचाप चली चलो।' भगवती ने कहा, 'हे दूत! क्या करूँ? अब जो होना होगा, वो तो होकर ही रहेगा; पर मै अपनी प्रतिज्ञा नहीं त्याग सकती। अतः तुम जाकर अपने स्वामी से कहो कि युद्ध के बिना वरण सम्भव नहीं है।' दूत ने जाकर के शुम्भ से यथार्थ कह सुनाया। विचार करके शुम्भ और निशुम्भ ने उस भगवती को पकड़ कर लाने के लिए धूम्रलोचन को सेना सहित भेज दिया तथा कहा, 'उसका सहयोगी चाहे जो हो उसे मार देना।'

**तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः । स हन्तव्योऽमरो वापि यो गन्धर्व एव वा ।।**

(दुर्गासप्तशती ०६.०५)

धूम्रलोचन ने जाकर विनम्रतापूर्वक देवी को स्वामी का सन्देश सुना दिया, 'हे देवि! तुम रतिज तथा उत्साहज संग्रामों में रतिज की बात करती ही अच्छी लगती हो। अतः चलो! मैं आदरपूर्वक आप को लेने आया हूँ।' व्यासजी कहते हैं, 'हे नरश्रेष्ठ! भगवती ने अट्टहास करके कहा, 'अरे जाल्म विदूषक! सिंहनी और सियार, हस्थिनि और गदर्भ का जैसे योग असम्भव है, वैसे ही पापात्मा शुम्भ और भगवती का योग सम्भव ही नहीं हैं। तुम युद्ध करो। या पाताल जाओ बस ... ... ।' क्रोध के कारण धूम्राक्ष की आँखें तमतमा उठीं। वह धनुष से बाण वर्षा करने लगा। भगवती ने उसके रथ को नष्ट किया। तदनन्तर अपनी हुंकार से उसको जला दिया।

**हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः**

(दुर्गासप्तशती ०६.१३)

**हुंकारेणैव तं भस्म चकार तरसाम्बिका**

(देवीभागवत ०५.२५.२२)

दैत्यसेना में भगदड़ मच गयी। शुम्भदूतों से जगदम्बा की शक्ति जानकर चिन्तित हो गया। फिर चिन्तन करके उसने चण्ड-मुण्ड को युद्धभूमि में भेजा। कालिका को मारकर अम्बिका को पकड़ने के लिए विशाल सेना लेकर चण्ड-मुण्ड चले। पहले तो समझाने लगे, 'देवि! तुमको तो युद्ध शोभा नहीं देता। चलो! हमारे स्वामी तुम्हें क्षमा करके अपना लेंगे।' भगवती ने गर्जनापूर्वक कहा, 'रे मूर्ख! न जाने कितने शुम्भ-निशुम्भ पशु मेरी मृगया के शिकार बने हैं। मैं उनको मारने के लिए ही आयी हूँ। अब तुम भी यमपुरी को चलो।' भयंकर युद्ध छिड़ गया। सभी योद्धा परस्पर प्रहारों को विफल कर अपने लक्ष्य को बींधने के लिए तत्पर दिखते है। विशालमुख वाली, लपलपाती जीभ से युक्त, आँखें खोह-जैसी सूखा मांस वाली काली ने भयंकर क्रोध के साथ कराल तलवार लेकर पशुओं को काटना प्रारम्भ किया। अस्थिमात्र, बिखरे केश, कंकाल-मात्र, भयावनी आकृति से असुरों के प्राणों का हरण करती काली ने अर्धचन्द्राकार बाण से मुण्ड को गिरा दिया। भ्रातृवध से कुप्त चण्ड गदा लेकर भगवती काली की ओर दौड़ा। भगवती ने दोनों को बाण-पाश में बाँधकर देवी के सम्मुख प्रकट किया तथा बोलीं, 'भद्रे! ये यज्ञपशु हैं, इनका क्या किया जाये?' माता ने कहा, 'इन्हें मारो भी मत, छोड़ो भी मत।'

**वधं मा कुरु मा मुञ्च चतुरासि रणप्रिये**

(देवीभागवत ०५.२६.६१)

काली ने तलवार के वार से दोनों का सिर काट दिया तथा उनका रक्त पी लिया।

*************************************************************************************

**चकर्त तरसा काली पपौ च रुधिरं मुदा**

(देवीभागवत ०५.२६.६४)

भगवती ने कहा, 'हे कालिके ! तुमने चण्ड और मुण्ड को मारा है। अतः तुम्हारा नाम 'चामुण्डा' प्रसिद्ध होगा।'

**यस्माच्चण्डं च मुण्डं च ग्रहीत्वात्वमनुपागता । चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यति ।।**

(दुर्गासप्तशती ०७.७७)

**चामुण्डेति सुविख्यातं भविष्यति धरातले**

(देवीभागवत ०५.२६.६६)

'हे राजन् ! सारी दैत्यसेना चण्ड और मुण्ड के मरते ही भाग उठी तथा शुम्भ के सामने रोकर जाति कुल रक्षा की प्रार्थना करने लगी, 'हो न हो, आपके वरदान की पूर्ति का समय समीप ही आ गया हो। ये नारीरत्न तुमको मारने के लिए ही आयी हैं।'

**तस्मात् त्वां हन्तुं कामैषा प्राप्ता योषित् वरा प्रभो**

(देवीभागवत ०५.२७.१८)

'महाराज ! यही गायत्री, सन्ध्या, सावित्री, विजया, नित्या आदि नामों से जानी जाती हैं। अतः इनकी शरण ही सुखद है। किन्तु शुम्भ ने ललकारकर कहा, अरे कातरों ! कल की क्या चिन्ता? जो होनी है, होकर ही रहेगी। प्रयास भी वैसे ही होते हैं, जैसी भावी स्थिति होती है। फिर बिना प्रयत्न के कोई कार्य सम्पन्न नहीं होता। 'दैव दैव' तो कातर ही जपते हैं।

**उद्यमेन बिना कामं न सिद्धयन्ति मनोरथाः । कातराः एव जल्पन्ति यद्भाव्यम् तद् भविष्यतिः ।।**

(देवीभागवत ०५.२७.३७)

तब तक रक्तबीज ने कहा, 'अरे ! मस्त रहो। इसको मैं अपने वश में कर लूँगा।' ऐसा कहकर भारी सेना सहित युद्ध करने पहुँच गया तथा बोला, 'देवी ! ज्यादा बोलना मेरा स्वभाव नहीं है। फिर भी तुम मेरी बात सुनो ! और मानो ! चलो, शुम्भ-निशुम्भ आज भी तुम्हें स्वीकार कर ही लेंगे।' भगवती ने कहा, 'अरे अधम ! मेरी प्रतिज्ञा अटल है। मैं अपने अनुरूप ही पति का वरण कर सकती हूँ। रक्तबीज ने अपनी अवज्ञा जानकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। रक्तबीज तीखे-तीखे बाण छोड़ता है, उन्हें माता काट गिराती हैं। सेना में कम्बोज वीर, कालकेय वीर शामिल हो गये। इधर माता की सहयोगी के रूप में प्रत्येक देवता की पृथक् शक्ति प्रकट हो गयी। ब्रह्मशक्ति हंसारूढ़ा सरस्वती, ब्रह्माणी, चतुर्भुजा गरुड़ारूढ़ा वैष्णवी, वृषभारूढ़ा त्रिशूलधारिणी शांकरी, ऐन्द्री, वाराही, नारसिंही, कौवेरी, वारुणी, आदि शक्तियाँ भी आयी। 'शिवदूती' नाम से विख्यात शिव-शक्ति ने सन्धि के लिए प्रयत्न किया। किन्तु विफल ... ... । फलतः भयंकर महासंग्राम हुआ। सात्विकी शक्तियाँ आसुरी शक्तियों पर भारी पड़ने लगीं।

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन ! शिव से वर प्राप्त करके रक्तबीज उन्मत्त के समान विचरण किया करता था। उसके रक्त की बूँद भूतल पर जहाँ गिरती, उसी उसी स्थान पर उसके समान वीर उत्पन्न हो जाता। असंख्य रक्तबीजों से भूतल आच्छादित हो गया।

**रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः। समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ।।**

(दुर्गासप्तशती ०८.४१)

रक्तबीज को मारें तो रक्त निकले, रक्त निकले तो रक्तबीज पैंदा हों, न मारें तो वह काल बना सबको नष्ट किये देता है। बड़ी द्विविधा है। मन की वृत्तियाँ ही रक्तबीज हैं। एक वृत्ति को नष्ट करो तो अन्य वृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इनसे युद्ध करने से ये समूल समाप्त नहीं होती हैं। देवी की कृपाशक्ति से ही ये समूल समाप्त हो जाती हैं। 'इस संकट की घड़ी में भगवती ने चण्डिका काली से कहा, 'देवि ! तुम अपना विशाल मुख खोलकर पापात्मा के रक्त का पान करती जाओ।'

इस प्रकार क्षीणरक्त से ये असुर मारा जायेगा। चण्डिका ने इन रक्तबिन्दुओं का पान तत्परता से किया। अन्ततः रक्तबीज की माया नष्ट हो गयी, वह मारा गया। तब जाकर चैन की सांस ली। शेष दैत्यों को सिंह ने अपना भोजन बना लिया। भगदड़ मच गयी। शुम्भ

को भारी आघात लगा और बोला, 'तदपि भयवश पलायन नहीं करूँगा। विमल यश के लिए ये अनित्य शरीर त्याग दूँगा। निशुम्भ ने शुम्भ को आश्वस्त करके रथारूढ़ हो युद्ध के लिए प्रयाण किया।

## निशुम्भ-शुम्भ वध, राजा सुरथ व समाधि वैश्य सुमेधा ऋषि के पास गये, नवरात्र विधि, सुरथ और समाधि का तप करना व उन पर कृपा

व्यासजी कहते हैं, जनमेजय ! निशुम्भ ने आते ही देवी के साथ भीषण संग्राम प्रारम्भ कर दिया। विजयाशा में प्रमत्त निशुम्भ अपनी मौत से जूझने आ गया। शुम्भ भी युद्ध करने आ गया। भारी संग्राम प्रारम्भ हुआ, जिसका पार नहीं है। आकाशमण्डल बाणवर्षा से आच्छादित हो गया। गहन अंधकार-सा छा गया। परस्पर विजय की कामना से उद्योग किये जाते, विचित्र शस्त्र-अस्त्र लेकर कलाकौशलपूर्वक देवासुर संग्राम होने लगा। निशुम्भ गदा लेकर माता की ओर आया। उसके वार को बचाकर चण्डिका ने तलवार से निशुम्भ का वध कर दिया। सिर काटा फिर हाथ-पैर भी काट डाले। भ्रातृ-वध से शुम्भ को भारी शोक हुआ। भाई की मृत्यु ने उसको तोड़ दिया था। सभी पाताल चलने की प्रार्थना करने लगे, 'दैत्यों के लिए समय अनुकूल नहीं है। अतः प्राणरक्षा परमधर्म हैं।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय ! सबकी बातें सुनकर शुम्भ ने कहा, 'अरे ! मुझे मृत्यु का भय नहीं, जीवन और मरण तो साथ -साथ चलते नदी के किनारे हैं। तीनों देवताओं तक की उम्र निश्चित है। तब मुझे अपनी क्या चिन्ता?' ऐसा कहकर शुम्भ सेना सहित रणांगण में आ गया। वहाँ देवी के अनुपम सौन्दर्य को देखा तो चकित हो गया। 'ऐसी सुकुमारता और कठोरता, वीरता अद्‌भुत है' - ये क्या माया है? ऐसी कमनीयता और युद्ध में भयंकर शूरवीरों का मरण ... ... ... । असम्भव ... ! क्या करें? अन्ततः देवी के सम्मुख जाकर युद्ध के लिए सावधान करने लगा, 'हे देवि ! तुम्हारा ये व्यवहार उचित नही हैं।' भगवती ने कहा, 'अरे दुर्बुद्धे ! ठहर ! अभी प्रवचन की दक्षिणा पा ले।' और संग्राम प्रारम्भ हो गया। भगवती ने काली से कहा, 'हे काली ! तुम इसको मार डालो - **'जहि एनं कालिके क्रूरम्'**। चण्डिका ने शुम्भ की चन्दनचर्चित बाँयी भुजा काट डाली। तदनन्तर दाहिनी भुजा काट दी। अन्ततः उसका मस्तक भी कालिका ने काट डाला।'

**चकर्त मस्तकं कण्ठात् रुधिरौघवहं भृशम्**

(देवीभागवत ०५.३१.६१)

'शुम्भ को मृत जानकर सारे दैत्य प्राण बचाकर भाग गये। आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। नृत्य, वादन, गायन होने लगे जय-जयकार होने लगी।' व्यासजी कहते हैं, 'हे नृपेन्द्र ! इस चरित्र का श्रवण करने तथा कराने वाला मनोरथपूर्ति में समर्थ हो जाता है। निर्धन धन पाता है, भयाक्रान्त निर्भय हो जाता है।'

**अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनश्च धनं बहु रोगी च मुच्यते रोगात् सर्वान्कामानवाप्नुयात्**

(देवीभागवत ०५.३१.६७)

जनमेजय ने प्रश्न किया, 'हे महर्षे ! सबसे पहले इस चरित्र को सुनकर भगवती की कृपा पाने वाला सौभाग्यशाली कौन हैं? देवी-उपासना-विधि क्या है? हवनविधि क्या है?'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन् ! स्वारोचिष मन्वन्तर में सुरथ नामक राजा यवनों के आक्रमण से पराजित हो गये। उनके मन्त्री सेनापति सब बिक चुके थे। लोभी नर क्या नहीं कर सकता? अतः सब ओर से निराश राजा सुरथ सुमेधा नामक महात्मा के यहाँ पहुँचे। अहिंसा प्रतिष्ठित-आश्रम में पवित्र वातावरण, ज्ञान-विज्ञान साधना का केन्द्र आश्रम। वहाँ महात्मा की शरण में बैठकर राजा को शान्ति मिली, तो राजा ने अपनी व्यथा भी सुना दी। मुनि का आश्रय पाकर भी एक दिन राजा को राज्य की चिन्ता सताने लगी। तब तक एक समाधि नामक वैश्य वहाँ आ गया। परस्पर परिचय हुआ। पारिवारिक सम्बन्धियों के व्यवहार से पीड़ित निष्कासित, तिरस्कृत, उपेक्षित वैश्य रोने लगा। किन्तु फिर भी परिवार की, पुत्रों की, स्त्री की, चिन्ता करता है। राजा सुरथ कहता है, 'जिन्होंने तुम्हें धक्का देकर

*************************************************************************************

निकाल दिया, उनकी याद ... ... ? आश्चर्य है ! त्याग दो वैश्य ! किन्तु राजा उपदेश भर दे रहा है, जबकि इसके मन में भी राज्य बैठा है। वैश्य ने कहा, 'महाराज ! चाहता तो मैं भी यही हूँ, किन्तु क्या करूँ? मन नहीं मानता। आओ चलें ! ऋषि के समीप चलें।'

राजा ने सुमेधा ऋषि से समाधि वैश्य का परिचय कराया तथा पूछा, 'महाराज ! आज हम दोंनों राज्य और परिवार से भ्रष्ट होकर भी क्यों शोक-मोहग्रस्त हो रहे हैं? चिन्ता रात को सोने नहीं देती। दिन में चैन नहीं लेने देती, क्यों है ये सब? कृपया बतावें। मै जानता हूँ। मन चंचल है, संसार मिथ्या है, सम्बन्धी अनित्य है, स्वप्न जैसा मिथ्या-संसार मात्र नाटक है। फिर भी मोह नहीं जाता।' सुमेधा नामक ऋषि ने उत्तर दिया 'हे राजन् ! महामाया आदिशक्ति के अधीन सकल प्रपञ्च हैं। इनकी कृपा से ही प्राणी मोहग्रस्त रहता है। बड़े बड़े ज्ञानी-मोहमुक्त नहीं हो पाते। फिर तुम्हारी तरह सामान्य क्षत्रिय की, वैश्य की क्या बात?'

**ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।**

(दुर्गासप्तशती ०१.५६)

'हे राजन् ! सतयुग में विष्णु ने श्वेतद्वीप जाकर हजारों वर्षों तक तप किया था। ब्रह्मा भी तपार्थ गये। दोनों की भेंट हुई। चतुर्मुख ब्रह्मा चतुर्भुज विष्णु परस्पर पूछने लगे, 'तुम कौन हो? तुम कौन हो?'

**मिलितौ मार्गमध्ये तु चतुर्मुख-चतुर्भुजौ । अन्योन्यं पृष्टवन्तौ तौ कस्त्वं कस्त्वमितिस्मह ।।**

(देवीभागवत ०५.३३.२०)

दोनों स्वयं को ज्येष्ठ श्रेष्ठ बताने लगे। विवाद के मध्य शिवलिंग ज्योतिरूप में प्रकट हुआ। आकाशवाणी हुई, 'जो इसको पार कर लेगा, वही श्रेष्ठ होगा।' विष्णुजी पाताल में, ब्रह्माजी अन्तरिक्ष में जाकर थक गये; किन्तु ओर-छोर नहीं मिला। लौटते समय ब्रह्माजी ने केतकी पुष्प से कहा, 'शिव शिर से गिरते हैं। हे केतकी ! तुम मेरी गवाही दे देना।' ब्रह्माजी हर्षित होकर आये। विष्णु निराश हैं। ब्रह्माजी ने कहा, 'अरे विष्णु ! बड़ी कठिनतापूर्वक पता लग गया। मैं प्रमाण के लिए केतकी पुष्प ले आया हूँ।' केतकी ने गवाही दे दी 'हाँ ! ब्रह्माजी मुझे शिवमस्तक से उठा लाये हैं। ब्रह्माजी ने लिंग का तत्व पा लिया हैं।' विष्णु ने कहा, 'नहीं ! मैं तो शिव को ही प्रमाण मानता हूँ।'

**महादेव प्रमाणं मे यद्यसौ वचनं वदेत्**

(देवीभागवत ०५.३३.४३)

इस मिथ्यावाद से शिव कुपित होकर बोले, 'केतकी ! तुम झूठी हो। अतः मेरी पूजा से तुम्हारा बहिष्कार हो गया। ब्रह्मा ने केतकी को बीच में से पकड़ा था।' ब्रह्मा लज्जित हो गये। अतः राजन् ! माया बड़ी विचित्र है। सबको मोहित कर देती है। वह ब्रह्मारूपा है, दिव्य है। उनका पार पाना कठिन है। सकल प्रपञ्च का निर्माण उनकी कृपा से ही होता है। वेद भी जिन्हें 'नेति-नेति' कहकर मौन हो जाते हैं। उनका पार मैं भी कैसे पा सकता हूँ।' राजा सुरथ ने पूजाविधि पूछी, तो मेधातिथि ने कहा, 'नित्यकर्म सम्पन्न कर स्नानादि के अनन्तर पवित्र वस्त्र पहनकर गोमय से शोधित स्थान पर आसन बिछाकर, आचमन, प्राणायामपूर्वक भूशुद्धि-भूतशुद्धि करे। अन्तर्मातृका-बहिर्मातृका न्यासकर प्राणप्रतिष्ठा करें। संकल्प करके रक्त चन्दन से षट्कोण यन्त्र लिखे। ताम्रपत्र पर षट्कोण के बाहर अष्टकोण लिखकर वेदोक्त-तन्त्रोक्त प्रतिष्ठा करे। यन्त्राभाव में धातु की प्रतिमा की पूजा करे। नवाक्षर मन्त्र का जप करते रहें। बाह्यपूजा के साथ-साथ आन्तरिक पूजा, मानसिकी अविच्छिन्न ध्यानमयी पूजा भी चले। तदनन्तर दशांश होम, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन, करावे। नित्य कवचादि सहित चरित्रत्रय का पाठ रहस्यान्त करें। चारों नवरात्र (चैत्र, आश्विन, आषाढ़ और माघ) तो अवश्य ही करे।'

**नवरात्रव्रतं चैव विधेयं विधिपूर्वकम्**

(देवीभागवत ०५.३४.१२)

'होम भी करे। व्रत के अन्त में खीर, शाकल्य, घृत, मधु, शर्करादि से या विल्वपत्र, लालकनेर, जपाकुसुम (गुड़हल) में तिल शक्कर से होम करे। अष्टमी, चतुर्दशी व नवमी को होम अवश्य करे। इन दिनों विशेष पूजा करें।' उत्सवादि करे। वित्तादि की चिन्ता

बिना, कन्या पूजन करे। अष्टमी या नवमी को विधिपूर्वक होमादि महापूजा सम्पन्न करके ब्राह्मण भोजन कराकर दशमी को पारायण करे। एकादशीव्रत, प्रदोषव्रत पूर्णिमाव्रत – ये पन्द्रह दिन पूरे ही व्रत करें। ये पन्द्रह दिन शक्ति अर्जन करने के लिए हैं। यदि सम्भव हो तो विशेष फलाग्राही को पूरे पक्ष ही भगवती की आराधना करनी चाहिए। प्रकृति भी संकेत देती है कि चैतन्य शक्ति विशेष होती है। नवरात्र काल सुन्दर खिले पुष्प–काष्ठ भी अंकुरित होने की क्षमता पा लेता है। नव वृक्षारोपण इन दिनों में विशेष सफल होता है। इसीलिए चैत्र मास ही नववर्ष प्रारम्भ होता है।

'जगतीतल पर किसी भी कारण से पीड़ित प्राणी नवरात्र व्रत करके शक्ति पा लेता है। जो दुःखी है, निश्चित् ही उन्होंनें भगवती का व्रतपूर्वक पूजन नहीं किया तथा आगे भी नरक जाएँगे।

**नाराधिता भगवती यैः ते नरक भागिनः**

(देवीभागवत ०५.३४.४०)

**भवन्ति कृतपुण्याः ते शक्ति भक्ति पारायणाः**

(देवीभागवत ०५.३४.४३)

व्यासजी कहते हैं, 'नृपेन्द्र! सुमेधा ऋषि के वचनों को सुनकर सुरथ और समाधि विनम्रतापूर्वक खिल उठे तथा ऋषि के चरणों में प्रणाम कर स्वयं की पूर्वजन्मादि पुण्यसम्पत्ति का परिणाम बताकर स्वयं को धन्य बताने लगे तथा बोले, 'अब यहीं निराहार, नवार्ण मन्त्र का जप करके जीवन को धन्य बनावेंगे। आप कृपया मन्त्र प्रदान करें।' और दीक्षा लेकर एकान्त में नदी किनारे शान्तभाव से जप–ध्यान में लीन हो गये। कवचादि का पाठ तदनन्तर जप चरित्रत्रय, रहस्यत्रय; तदनन्तर जप एक मास पूरा तप करते हो गया। नित्य गुरु को प्रणाम, नित्यपाठ, पूजन, ध्यान, जप वर्ष बीत गया। कन्द, मूल, फल ही खाते थे। दूसरे वर्ष केवल सूखे पत्ते खाते, पत्राहार करते। दो वर्ष बीतने पर उन्हें स्वप्न में माँ रक्ताम्बरा के दर्शन हुए। अब वे प्रसन्नचित्त हो, तीसरे वर्ष निर्जलव्रतपूर्वक तप करने लगे। तीन वर्षोपरान्त उन्होंने साक्षात्दर्शन की आकांक्षा की, अन्यथा प्राणोत्सर्ग करें। अग्निकुण्ड में स्वमांस काटकर हवन करने लगे। भगवती प्रकट हो गयी, 'वर माँगो।' राजा रजोगुणी की अभी राज्य की प्यास शेष थी। राज्य माँग लिया। माँ ने 'तथास्तु' कहा, 'राजन्! दस हजार वर्ष तक शासन कर आगे, तुम मनु बनोगे'। वैश्य ने विशुद्ध ज्ञान माँगा, 'माँ! ये संसार तो बन्धन है, माया है।'

व्यासजी बोले, 'राजन्! वैश्य को ज्ञान मिला। राजा को धन और मान मिला। इन दोनों ने वर पाकर सबसे पहले गुरु के चरणों में प्रणाम किया। राजा राज्य करने लगा। वैश्य ज्ञानवान् होकर तीर्थाटन करने लगा। इस प्रकार व्यासजी ने जनमेजय को भगवती का पावन चरित्र सुनाया। सूतजी कहते हैं, 'हे शौनकजी! ये पावन चरित्र है माँ का।'

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं पञ्चमः स्कन्धः ।।*

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। षष्ठः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### त्रिशिरा-विश्वरूप का तप, इन्द्र द्वारा विश्वरूप का वध, वृत्रोत्पत्ति, वृत्रासुर का तप, युद्ध में इन्द्र की पराजय, छलपूर्वक मित्र बनाकर इन्द्र ने किया वृत्र का वध, इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी, राजा नहुष बने इन्द्र, इन्द्राणी ने किया तप, नहुष ऋषिशाप से सर्प बने, कर्मभेद, कलियुग में स्वधर्म रक्षा का उपाय

जनमेजय ने विविध प्रश्नों के साथ वृत्रासुर वध सुनने की इच्छा की, साथ ही पूछा, 'हे गुरो! वृत्र ब्राह्मण होने पर भी इन्द्र द्वारा क्यों मारा गया? सौ यज्ञ करने पर भी सात्विक योनि इन्द्र राग-द्वेषग्रस्त क्यों? विष्णु इन्द्र के छल में शामिल क्यों? वृत्र को इन्द्र ने मारा या भगवती ने?' व्यासजी ने राजा की जिज्ञासा, श्रद्धा व शुश्रूषा का अभिनन्दन करके कहा, 'हे नृप! श्रोता तन्मय होकर सुनता है तो वक्ता भी तन्मय हो जाता है। प्रीतिपूर्वक प्रवचन करता है।

**श्रोता यदैकप्रवणः शृणोति वक्ता तदा प्रीतमना ब्रवीति**

(देवीभागवत ०६.०१.२०)

'हे राजन्! पुराणों में, उपनिषदों में, वेदों में, प्रसिद्ध कथा है – वृत्र को मारकर दुनिया सुखी हुई, किन्तु इन्द्र को ब्रह्महत्या लगने से पीड़ा हुई। विश्वरूप (त्रिशिरा) त्वष्टा का पुत्र था। उसने वन में जाकर घोर पञ्चाग्नि तप किया। ऐसे अद्भुत पवित्र तपस्वी की तपस्या से इन्द्र का सिंहासन तो नहीं, हाँ! मन डोल उठा, 'अरे! इतना घोर तप तो इन्द्र पद के लिए ही हो सकता हैं। इसकी तपस्या भंग करूँ ... ...।' कामदेव को अप्सराओं सहित भेज दिया। शतधा प्रयत्न करने पर भी अविचल भाव से त्रिशिरा तप करता रहा। वे निराश होकर लौट आये। इन्द्र ने लोक-लाज त्यागकर त्रिशिरा के वध का विचार किया।

**विसृज्य लोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम् । चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते ।।**

(देवीभागवत ०६.०१.६०)

********************************************************************************

व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! इन्द्र ने त्रिशिरा के समीप जाकर उन्हें समाधिस्थ देखकर भी अपने वज्र से त्रिशिरा (निरपराध को) मार दिया।

**तदभिधात हतः स धरातले निपपात ममार च तापसः**

(देवीभागवत ०६.०२.०५)

महात्माओं ने निरपराध तपस्वी के मारे जाने पर 'ब्रह्महत्या इन्द्र को लगे' – ऐसा शाप दिया। तेजस्वी त्रिशिरा को देख इन्द्र चिन्तित होकर समीपस्थ त्वष्टा से बोले, 'इसका सिर काट दो'। त्वष्टा ने कहा, 'ऐसा पापकर्म मैं नहीं कर सकता'। किन्तु लोभ और लाभ की महिमा अपार है। इन्द्र ने उसे यज्ञ में भाग देने का लोभ दिया। जैसे ही यज्ञ में भाग मिलने की बात सुनी, त्वष्टा तैयार हो गया।

**मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि**

(देवीभागवत ०६.०२.१९)

त्वष्टा ने कुठार से तीनों शिर काटे, तो वेदपाठी अमृतपायी शिर से कपोत (कपिञ्जल) निकले। जिस मुख से निरीक्षण करता था, उससे तित्तिर निकले। जिस मुख से मधु (सुरा) पीता था, उससे गौरैय्या निकली। इन्द्र प्रसन्न मन स्वर्ग चला गया। इधर पुत्र विरह में त्वष्टा ने इन्द्रघाती पुत्र पाने का संकल्प कर लिया तथा यज्ञ करके '**इन्द्र शत्रु र्विवर्धस्व**' वृत्र को उत्पन्न किया। आकाश के समान विशाल अग्निकुण्ड से उत्पन्न वृत्र ने पिता से कहा, 'पिताजी! आज्ञा करें! उस पुत्र से क्या? जो पिता की शोकाग्नि को न शान्त कर सके। सागर को पी डालूँ। बादलों को चूर-चूर कर दूँ। पृथ्वी को उखाड़कर सागर में फेंक दूँ। समुदित सूर्य को रोकूँ या इन्द्र को मारूँ?' त्वष्टा प्रसन्न होकर बोले, 'बेटा! (**वृजिनात् त्रायते इति वृत्र**) तुम मुझे संकट से उबार रहे हो। अतः तुम वृत्र नाम से विख्यात हो जाओगे।'

**वृजिनात्त्रासुमधुना यस्मादुक्तोऽसि पुत्रक । तस्मात् वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति ।।**

(देवीभागवत ०६.०२.४४)

त्वष्टा प्रसन्न होकर फिर बोले, 'बेटा! तुम अपने ज्येष्ठभ्राता के वध का बदला लो। इन्द्र ने निरपराध तपस्वी को मारा है। तुम इन्द्र को मारो। यही आज्ञा है।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! वृत्रासुर वैदिक मंगलाचरण कराकर युद्ध के लिए चल दिया। स्वर्ग में अपशकुन होने लगे। इन्द्र चिन्तित होकर बृहस्पतिजी से वार्ता करने लगे तथा उत्पातों-अनिष्टों का कारण तथा निवारण जानने लगे तो गुरु बृहस्पति ने कहा, 'हे इन्द्र! तुमने निरपराध महात्मा विश्वरूप का वध करके निन्दित कर्म किया है। उसी का फल है ये सब। इन्द्र! दूसरे की पीड़ा को बढ़ाने वाला कर्म नहीं करना चाहिए, इससे सुख नहीं होता।'

**परोपतापनं कर्म न कर्त्तव्यं कदाचन । न सुखं विन्दते प्राणी परपीडापरायणः ।।**

(देवीभागवत ०६.०३.२३)

'हे इन्द्र! तुम्हें ब्रह्महत्या लगी है। अब वृत्रासुर अवध्य होकर आ रहा है। इसका निराकरण नही है। सहसा वृत्र तो आ धमका। दैत्यों देवताओं के मध्य सौ साल तक भारी संग्राम हुआ। इस युद्ध में वृत्र ने देवताओं को पराजित करके ऐरावत ले जाकर पिता को उपहार में दिया। इन्द्र तो ऐरावत को छोड़कर भाग गया।' प्रसन्न त्वष्टा ने कहा, 'वत्स! आज मैं पुत्रवान् होने का अनुभव करता हूँ। देवता कपटी हैं। इनका विश्वास किये बिना सदा सावधान रहकर तप करना।'

**तपबल रचहि प्रपंच बिधाता । तपबल बिष्णु सकल जगत्राता ।।**
**तपबल सम्भु करहि संहारा । तपबल बिप्र सदा वरिपारा ।।**

(रामचरितमानस ०१.७३.०२)

पिता की बात मानकर गन्धमादनपर्वत पर जाकर वृत्र ने तप किया। वृत्रासुर के तप में विघ्न सब असफल हो गये। सौ वर्षोपरान्त ब्रह्माजी आये, '**वरं ब्रूहि, वत्स वृत्र! वरं ब्रूहि**'। वृत्र उठा, प्रणाम किया तथा भावोद्रेकपूर्वक बोला, 'प्रभो! मैं देवताओं के

*************************************************************************************

लिए अजेय रहूँ; सूखे, गीले, लोहे, काठ, बाँस, धातु आदि से मेरा वध न हो।'

**मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोह-काष्ठ-शुष्कार्द्रवंश-निचयैरपरैश्च शास्त्रैः**

(देवीभागवत ०६.०४.०८)

ब्रह्माजी ने 'तथास्तु' कहा और चले गये। वृत्रासुर आया, पिता को प्रणाम किया। अपने तप की सफलता और ब्रह्मा के वरदान की गाथा सुनाई। त्वष्टा ने कहा, 'पुत्र! वास्तव में पुत्र की पुत्रता तीन कारणों से सिद्ध होती है : १. जीतेजी माता-पिता की आज्ञा का पालन करे; २.मरणोपरान्त उनके निमित्त श्राद्धादि के ब्याज से (दशाह कृत्य सम्पन्न करके एकादशाह द्वादशाह निमित्तक और्ध्वदेहिक (शास्त्रीय कर्मकाण्ड निष्णात् विद्वान् द्वारा) कर्म सम्पन्न कराकर ही तेरहवें दिन तन्निमित्तक ब्रह्मभोज करें, आजकल की कुप्रथा की तरह नहीं कि तीसरें पाँचवे या सातवें दिन तेरहवीं करके छुट्टी पा लेते हैं, वार्षिकी श्राद्ध भोज करे; ३.गया में जाकर पिण्डदान करे।

**जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात् । गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ।।**

(देवीभागवत ०६.०४.१५)

'अतः वत्स वृत्र! तुम इन्द्र को मारकर मेरा पुत्रशोकजन्य सन्ताप मिटाओ।' वृत्र ने पिता की आज्ञा मानकर इन्द्र पर चढ़ाई कर दी। उस भयंकर युद्ध में वृत्र ने इन्द्र को निगल लिया।

**अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितो वृत्रः शताक्रतुम्**

(देवीभागवत ०६.०४.२९)

देवसेना में हाहाकार मच गया। बृहस्पति ने इन्द्र की मुक्ति के लिए तांत्रिक-कर्म किया। उससे जभाँई पैदा हुई। जँभाई आने से वृत्र का मुख खुला और इन्द्र बाहर आ गये। फिर भी देवताओं की पराजय हो गयी। वृत्रासुर स्वर्गाधीश्वर हो गये। देवता रोते हुए शिवजी के पास गये। वहाँ से विष्णु के पास गये तथा पुरुषसूक्त से स्तवन किया। विष्णुजी के पूछने पर देवताओं ने कहा, 'हे देवेश! संकट के समय आप ही समर्थक बने हैं। आज वृत्र के कारण हम दुखी हैं।' विष्णु ने कहा, 'चलो! तुम्हारा काम तो चाहे जैसे मैं करूँगा ही। बुद्धि-बल-अर्थ या छल जैसे भी हो, करूँगा।'

**अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना । बुद्धया बलेन चार्थेन येन केनच्छलेन वा ।।**

(देवीभागवत ०६.०५.०७)

'इन्द्र! तुम इस अजेयशत्रु से जाकर मित्रता कर लो। तदनन्तर छलपूर्वक मार देना। मैं स्वयं वज्र में छिपकर प्रविष्ट हो जाऊँगा। शक्तिशाली शत्रु शक्ति से नहीं, युक्ति व छल से वश में आता है। अब आप सब मिलकर भगवती जगदम्बा का स्तवन करें, तो शीघ्र ही सफलता मिलेगी। पूर्वकाल में उनकी कृपा से ही मैंने मधु-कैटभ को मारा था।' विष्णु की आज्ञा से देवता सुमेरू पर जाकर भगवती का स्तवन करने लगे, 'हे माँ! अपराधी पुत्र होने पर भी माता की भावना उसके हित में ही रहती है, ये मर्यादा भी तो आपकी ही है। अब माँ! आपके चरणों में आये अपने इन बालकों की रक्षा करें।'

**माता सुतान्परिभवात्परि पाति दीना नीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान् ।**
**कस्मान्न पालयसि देवि विनापराधानस्मांत्वदंघ्रि शरणान्करुणारसाब्धे ।।**

(देवीभागवत ०६.०५.३७)

'हे माँ! आप पहले भी महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भ, चण्ड-मुण्ड से हमारी रक्षा कर चुकी हैं। अब आप वृत्रासुर को मारकर हमें भयमुक्त करें। माता! वृत्रासुर को अपने बाणों से मारकर पवित्र कर उसका उद्धार करो। हे माता! पूजन क्या करें, किससे करें? क्योंकि सब कुछ आपका ही बनाया है। अतः आपके चरणों में प्रणाम कर लेते हैं।' जब पुष्पादि-मन्त्र-स्वयं हम आपका ही रूप हैं, अतः माँ! जीवन तो उसी का धन्य है जो भवसागर से पार जाने के लिए आपके चरणों का सहारा लेकर बैठा है। स्वाहा, स्वधारूपा देवि! आपको नमन है।' व्यासजी कहते हैं, 'भगवती दिव्यावरणाभरण सज्जित प्रकट हो गयी तथा प्रसन्नतापूर्वक कार्य पूछा। तो कार्य

तो वही था 'वृत्रासुर का वध'। माँ ने 'तथास्तु' कहा तथा अन्तर्धान हो गयी। देवताओं ने जाकर विनम्रतापूर्वक वृत्रासुर से मैत्री कर ली। ऋषियों ने कहा,

**सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा**

(देवीभागवत ०६.०६.१५)

छल-छद्म त्यागकर तुम दोनों मैत्री कर लोगे तो सर्वत्र शान्ति व सुख का साम्राज्य होगा। सत्य पर पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र, वायु टिके हैं। यद्यपि मुनियों के वचनों से प्रभावित वृत्र ने इन्द्र को धोखेबाज कपटी कहा, तदपि ऋषियों ने उसकी शीलता और योग्यता का वचन देकर वृत्र को मना दिया। वृत्र ने शर्त रखी, 'मैं सूखे, गीले, पत्थर काष्ठ, वज्रादि द्वारा दिन या रात में भी इन्द्रादि से सदा अवध्य रहूँ तो मित्रता चले, सन्धि हो।' इन्द्र ने वृत्रासुर की शर्त स्वीकार करके और अग्नि को साक्षी करके मित्रता कर ली। अब तो इन्द्र घनिष्ठता बढ़ाता गया। आहार, विहार, आमोद, प्रमोद, खाना, पीना, संग संग चला। वृत्र निश्चिंत, किन्तु इन्द्र मौका खोजता है कब मारूँ? त्वष्टा ने वृत्र को सावधान किया, 'हे वृत्र! ये पापी इन्द्र अन्दर से कुटिल है, इससे सावधान ही रहना। ये अपनी मौसी विमाता दिति का सगा नहीं हुआ। उसने गर्भगत शिशु को उनचास खण्डों में काट डाला। अतः पुत्र सुनो! पापी को पाप करने में क्या लज्जा होगी? इससे सचेत रहना।'

**कृत पापस्य का लज्जा पुनः पुत्र प्रकुर्वतः**

(देवीभागवत ०६.०६.४८)

'एक दिन सन्ध्याकाल (गोधूलि वेला) में (न दिन, न रात) समुद्रतट पर वृत्र भ्रमण करते थे। इन्द्र तो मौका खोजता था, उसने समुद्र फेन को उठाया। अरे! ये न गीला है, न सूखा। विष्णु का स्मरण किया, वे वज्र में प्रविष्टि हो गये। भगवती का स्मरण किया, वे फेन में आ गयीं। वज्र के ऊपर समुद्र फेन लगाकर इन्द्र ने वृत्र का वध कर दिया। इन्द्र की प्रशंसा देवता और सिद्ध ऋषि करने लगे। ऐसे कपटी विश्वासघाती की कायरता नीचता की प्रशंसा कैसे संभव है? इन्द्र ने भगवती का आराधन करके नन्दनवन में भगवती का मन्दिर बनवाया। त्रिकाल पूजा माँ की होने लगी। इस प्रकार वृत्रहन्ता इन्द्र है, विष्णु है, माता जगदम्बा भी हैं।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! विष्णु चिन्तित, इन्द्र को ब्रह्महत्या का भय, महात्माओं को विश्वासघात करने का भय मन में बैठ गया। वे स्वयं को धिक्कारने लगे हमने ये छल क्यों किया? ये साधु का आचरण साधु नहीं हैं। पाप का विश्वासघात का समर्थक भी बराबर पापी होता है।

**मन्त्रकृत् बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम् । पापभाक् स भवेन्नूनम् पक्षकर्ता तथैव च ।।**

(देवीभागवत ०६.०७.०६)

'पश्चातापाग्नि में झुलसते महात्मा विचारमग्न हैं। उधर त्वष्टा ने वृत्र का वध सुना तो शोकाकुल होकर दहाड़ मारकर रोने लगा। वृत्र के क्रियाकर्म सम्पन्न कर इन्द्र को क्लेश भोगने का शाप दिया तथा सुमेरू पर जाकर तप करने लगा।' व्यासजी कहते हैं, 'इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी तो कोई साथ नहीं आया, विष्णु भी नही। आपत्ति के समय स्वजन भी साथ छोड़ देते हैं। कर्ता को ही कर्म का फल भोगना पड़ता है – यही सिद्धान्त है।

**भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा**

(देवीभागवत ०६.०७.२४)

'तीनों लोकों में भारी निन्दा होने लगी, अरे! ये इन्द्र तो ब्रह्महत्यारा, विश्वासघाती, झूठा, कपटी हैं, नीच है। हँसी बना देते लोग राह चलते, मुँह फेर लेते, धिक् धिक् कहते, भृगुपत्नी का सिर काटने पर तो विष्णु को भिखारी वामन बनना पड़ा। पत्नी विरह में राम बनकर रोना पड़ा। तब इन्द्र की तो बात ही क्या? स्वर्ग सुख भी इन्द्र को शान्ति नहीं दे पाते। विकलता-बैचेनी-से पीड़ित रहता है, 'क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?' अन्ततः एक कमल नाल में छिप कर रहने लगा। बिना इन्द्र के सारी व्यवस्था बिगड़ गयी। फलतः राजा नहुष को इन्द्र बना दिया गया। वे इन्द्राणी को पाने के चक्कर में ऋषियों के शाप से सर्प बन गया।'

*************************************************************************************

व्यासजी कहते है, 'हे राजन्! नहुष की मति विकृत हो गयी। वे इन्द्राणी को हर हाल में पाने का प्रयत्न करने लगा। इन्द्राणी बृहस्पति की शरण में गयी। सप्तर्षियों ने परस्त्रीगमन को महापाप बताकर समझाया, किन्तु नहीं माना। उलटा बोला, 'अच्छा! इन्द्र गौतमपत्नी अहिल्या, चन्द्र गुरुपत्नी तारा, बृहस्पति ज्येष्ठ भ्रातृपत्नी ममता के साथ रहे तो तुम्हें चिन्ता नहीं होती; मेरे धर्मपूर्वक इन्द्र होने पर इन्द्राणी को पाने से अधर्म हो जाता है, तो तुम्हारी चिन्ता बढ जाती हैं। चाहे जैसे हो इन्द्राणी को शीघ्र लाओ!' देवताओं को बृहस्पति ने उपाय बताया। इन्द्राणी नहुष के पास जाकर कुछ समय माँग ले कि मैं तुम्हारी सेवा के लिए तत्पर हूँ, किन्तु 'पूर्व पति जीवित तो नहीं है' अतः एक बार उसे खोज लिया जाये।' शची ने जाकर नहुष को अनुकूल बनाकर इन्द्र को खोजने के बहाने समय ले लिया। देवता विष्णु के पास गये। उपाय पूछा कि 'इन्द्र को हत्या से मुक्ति कैसे मिलेगी' भगवान् ने 'अश्वमेघ यज्ञ द्वारा पवित्रता होगी।' बता दिया। इन्द्राणी नित्य जगज्जननी माँ जगदम्बा की पूजा करें, तो वे प्रसन्न होकर शोक दूर कर देंगी। अश्वमेधोपरान्त ब्रह्महत्या को चार स्थानों पर फेंका वृक्ष, नदी, पृथ्वी-पर्वत एवं स्त्रियाँ।

**विभज्य ब्रह्महत्यान्तु वृक्षेषु च नदीषु च । पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैवाक्षिपत् विभुः ।।**

(देवीभागवत ०६.०८.४८)

इन्द्राणी श्रद्धापूर्वक माँ की पूजा करती रही। उसने बृहस्पति से मन्त्रदीक्षा ली*। पूजा से संतुष्ट भगवती प्रसन्न होकर प्रकट हो गयी। ॐ रूपा '**ह्रीं**' मयी देवी को देख इन्द्राणी भावविभोर हो, नतमस्तक प्रणाम करने लगी। वर रूप में पति और राज्य माँगा तथा नहुष से निर्भयत्व माँगा। माँ ने कहा, 'जाओ मानसरोवर पर विश्वकामा नाम की मेरी मूर्ति है। वहीं तुम्हें इन्द्र मिलेंगे, ये नहुष भी नष्ट ही समझो।' शची मानसरोवर पहुँची। वहाँ इन्द्र से मिलकर उसका तन-मन सारा पुलकित हो गया। शची ने इन्द्र से सारी करुण कथा कही। इन्द्र ने कहा, 'देवि! स्त्री के चरित्र की, सतीत्व की रक्षा पहरा नहीं, प्रतिबन्ध नहीं, पराये लोग नहीं, उसका शील ही करता है।'

**शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः**

(देवीभागवत ०६.०९.१५)

'अब जब तुम्हें नहुष बुलावे तो चली जाना; किन्तु कहना 'हे देव! आप ऐसी पालकी पर बैठकर आओ, जिस पर कोई आज तक बैठा न हो। हंस भी नहीं, गरुड़ भी नहीं, बैल भी नहीं, हाथी, घोड़ा, मूषक, मोर, कोई नहीं। हाँ! सप्तर्षि तुम्हारी पालकी ढोवें और आप आओ! तब बनेगी कुछ बात ... ...। दूसरों की नकल की तो क्या की? ऐसा करो जो किसी ने किया न हो, आप नरेन्द्र भी है देवेन्द्र भी। अतः मेरी इच्छा पूरी करो, तो मैं आपकी सेवा को तैयार हूँ।' इन्द्र ने पुनः कहा, 'हे शची! तुम इस उपाय का आश्रय लो। वह कामान्ध महात्माओं के शाप से जल मरेगा। तुम भगवती का स्मरण करती रहना, शीघ्र तुम्हें सफलता मिलेगी।' शची इन्द्र से विदा होकर आ गयी तथा नहुष से योजनापूर्वक सप्तर्षि-चालित पालकी वाली शर्त रखी। नहुष तो खुशी से पागल हो उठा। शची की मीठी प्रेमभरी बातों में इतना खोया उसे होश ही नहीं रहा।

**इच्छाम्यहं अपूर्व वै वाहनं ते सुराधिप । वहन्तु त्वां महाराज मुनयः संशितव्रताः ।।**

(देवीभागवत ०६.०९.३६)

नहुष ने शर्त स्वीकार कर ली तथा बिना प्रतीक्षा किये सप्तर्षियों को पालकी लाने के लिए कह दिया। अगस्त्य प्रमुख बूढ़े-बूढ़े ऋषि बिचारे जो शारीरिक श्रम क्या जाने? 'पालकी ढोना' - किन्तु राज्ञाज्ञा है, अतः तैयार हो गये। नहुष पालकी में बैठकर चला, तो सन्तोष कहाँ? शीघ्रता के चक्कर में सर्प-सर्प (जल्दी चलो, जल्दी चलो) कहकर पादस्पर्श सिर में करने लगा - '**सर्पसर्पेति चाब्रवीत्**'। कोड़ा मारकर चलाने लगा बड़ा उतावला है, शची के अलावा कुछ दिखता ही नहीं। अगस्त्यजी क्रोध को देर तक पीते रहे;

--------------------

* 'स्त्रियों को गुरु बनाना निषेध है, फिर शची का बृहस्पति को गुरु बनाना क्या है? - शची ने पृथक् गुरु नहीं बनाया, अपितु पति का गुरु ही गुरु है। पतिरूप गुरु को पाने के लिए उपाय विशेष की प्राप्ति का। फिर ये मानवी चरित्र नहीं दैवीय चरित्र हैं, फिर भगवती की आराधना लोकोपचार से लोकप्रसिद्ध है ही।

*************************************************************************************

अन्त में बोले, 'अरे नीच! हम तपस्वी वृद्ध महात्माओं को पालकी में लगाकर 'सर्प-सर्प' कहता है, जा सर्प हो जा – **'सर्पो भव दुराचार'**। युधिष्ठिर के दर्शन से शापमुक्त होगा द्वापर में। नहुष सर्प बना, इन्द्र फिर इन्द्र बनें। हे राजन्! ये वृत्र की पूर्ण कथा तुम्हें सुनाई।' जनमेजय ने पूछा, 'हे मुनीश्वर! शतक्रतु भी इन झंझटों में फँस जाते हैं। ऐसा क्यों?' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! कर्मों को फल सबको भोगना पड़ता है, चाहे जो हो। कर्म तीन प्रकार के होते हैं – १.संचित कर्म, २.प्रारब्ध कर्म, ३.क्रियमाण (वर्तमान) कर्म। जन्म-जन्मान्तर के अभुक्त समुपार्जित कर्म ही सञ्चित है, ये भी तीन प्रकार के हैं – १.सात्विक, २.राजस व ३.तामस। पूर्वजन्मों के शुभाशुभ कर्म ही पुण्य और पाप बनते हैं। इस जन्म के कर्म ही क्रियमाण कहलाते हैं। जिस कर्म से वर्तमान योनि प्राप्त हुई, वह प्रारब्ध कर्म है; इसे भोगना ही पड़ता है। सञ्चित कर्मों के मध्य से कर्म विशेष के आधार पर शरीर मिलता है, प्रारब्ध कर्म है।'

**सञ्चितानां पुनर्मध्यात् समाहृत्य कियान् किल । देहारम्भे च समये कालः प्रेरयतीव तत् ।।**

(देवीभागवत ०६.१०.१३)

'ये निश्चित् सिद्धान्त है – जीव जो भी सुख या दुःख, अनुकूलता या प्रतिकूलता, हर्ष या शोक, अच्छा या बुरा; जो भी पाता है – सब कुछ अपना ही बोया हुआ उसी का फल है, अतः सावधानी से क्रियमाण पर दृष्टि रखे। इस जन्म के कर्म पर दृष्टि रखे। इसी क्रियमाण कर्म से ही सञ्चित या प्रारब्ध बनते हैं। क्रियमाण कर्म पवित्र शास्त्रानुरूप परमार्थिक होंगे तो सब कुछ धीरे-धीरे ठीक ही होगा। प्रारब्ध कर्म से शरीर बना वर्तमान कर्म भी ठीक है। फिर भी समस्याएँ जो आती हैं। वे सञ्चित कर्मों का शनैः शनैः परिणाम बीच बीच में आता जाता है। हे राजन् ! नरावतार अर्जुन के जीवन में भारी कष्ट भी कर्म की बलवत्ता का संकेत ही करता हैं। जो देवता नहीं, वह अन्नदान नहीं कर सकता। जो विष्णु का अंश नही वह पृथिवी पति नहीं होगा। ऋषि अंश ही काव्य रच सकता है। जो रुद्र नहीं, वह शिवार्चन नहीं कर सकता। दुनिया में शक्तिमान्, विद्यावान् , भाग्यवान् , दानवान् है – वह देवीशोद्भूत है।'

**यः कश्चित् बलवानल्लोके भाग्यवानथ भोगवान् । विद्यावानदानवान् वापि स देवांशः प्रपठ्यते ।।**

(देवीभागवत ०६.१०.२६)

'पाण्डव बिचारे देवांश होने पर भी जीवनभर क्लेश भोगते रहे। नारायणावतार श्रीकृष्ण का जन्म जेल में, पालन गोकुल में, ग्यारह वर्ष तक गोकुल का कार्य पूरा करके मथुरा आये। वहाँ कंस को मारकर व्यवस्था की।'

**एकादशैव वर्षाणि संस्थितास्तत्र भारत । पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं बलात् ।।**

(देवीभागवत ०६.१०.३६)

'अन्त में द्वारिका तक लीला करके सम्पूर्ण कुल सहित लीला संवरण किया। जनमेजय! कर्म गहन है।' जनमेजय ने पूछा, 'हे महाराज! द्वापरान्त में पृथ्वी गौरूपा होकर ब्रह्माजी के पास गयीं, तब ब्रह्माजी ने हरि से अवतरण की प्रार्थना की। भारतवर्ष में भगवान् आये।'

**भगवन्भारते खण्डे देवैः सह जनार्दन अवतारं गृहाण**

(देवीभागवत ०६.११.०४)

'हे महाराज! वे सभी आततायी राजा मारे भी गए किन्तु, कृष्ण की पत्नियों को लूटने वाले गोशापधारी भील किरात क्यों नहीं मारे? ये कैसा ये भूभारापहार है? कृष्ण का प्रभाव प्रजा पर कहाँ हैं? प्रजा तो दुराचाररत ही है।' व्यासजी बोले, 'हे राजन्! मोक्षधर्माजीव सतयुग में, धर्मार्थप्रेमी त्रेता में, धर्मार्थकाम प्रेमी द्वापर में, किन्तु कलियुग में तो अर्थ व काम के अनुरागी जीव ही आते हैं।'

**अर्थकाम पराः सर्वे कलावस्मिन्भवन्ति हि**

'हे राजन्! पुण्यात्मा सदाचारी वर्णश्रमानुरूप शास्त्राज्ञा का पालनपूर्वक जीवन को पूरा करके स्वर्ग जाते हैं।'

**स्वर्ग यान्तीतरे वर्णाः धर्मतो रजकादयः ।। कलावस्मिन्युगे पापा नरकं यान्ति मानवाः ।**

(देवीभागवत ०६.११.२२-२३)

*************************************************************************************

'किन्तु हे राजन्! कलियुग में तो पापी जीव ही जन्म लेते हैं, जन्म से पूर्व ये नरक में रहते हैं। सतयुग आने पर पुनः पुण्यात्मा देवलोक छोड़कर यहाँ भूतल पर आते है। कभी-कभी विरोधाभास भी देखा जाता है। अच्छे प्राणी कलियुग में, बुरे प्राणी सतयुग में भी आ जाते हैं। हे राजन्! युगधर्म बलवान् होता है। तुम्हारे पिता परीक्षित ज्ञानी धर्मात्मा थे, फिर भी ऋषि का अपमान कर बैठे। सतयुग के प्राणी '**ह्रीं**' जपपूर्वक अपने कुल वर्णानुरूपाचरण में निरत रहते थे। पराम्बा का पूजन करते थे।

**पराम्बापूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे**

(देवीभागवत ०६.११.४१)

'हे राजन्! पूर्व के राक्षस ही कलियुग में ब्राह्मण हुए। '**पूर्वं ये राक्षसाः राजन्! कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः**' असत्य, पाखण्ड, अनाचार, अपवित्रता, लोलुपता, शूद्रसेवीत्व ब्राह्मणों का स्वरूप होगा। फलतः समाज में व्यभिचार फैल जायेगा। नारियाँ पतिवंचक होंगी और धार्मिक भाषण-प्रवचन करेंगी।'

**स्वभर्तृवञ्चकानित्यं धर्मभाषणपण्डिताः**

(देवीभागवत ०६.११.४९)

'आहार दूषित होगा, तो चित्त दूषित होगा। चित्त दूषित होने से अज्ञानान्धकार होगा। चरित्र दोष से धर्मसंकर, धर्मसांकर्य से वर्णसांकर्य होगा। वर्णाश्रम की चर्चा तो कहीं भी करना अपराध होगा। बड़े-बड़े साधु भी अधर्म परायण हो जाएँगे। इससे बचने का उपाय है - 'भगवती के चरणकमल का आश्रय'। एक बार माँ का नाम करोड़ों पापों को जलाने की शक्ति रखता है। पुण्यक्षेत्र में रहकर निरन्तर माँ के चरणों का ध्यान करने से जीव की सद्गति हो जाती है।'

**तस्मात्कलिभयात् राजन् पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः**

(देवीभागवत ०६.११.६०)

'ये सम्पूर्ण शास्त्रों का सार तुम्हें बता दिया है।'

## चित्त शुद्धि व हरिश्चन्द्र कथारम्भ, हरिश्चन्द्र कथा, अहंकारविवश तपोनिरत श्रेष्ठ ऋषि तक पक्षी होकर लड़ते हैं, राजा निमि का शाप और वसिष्ठ पुनर्जन्म, निमि से मिथिलोत्पत्ति, और्व ऋषि का जन्म, हैहयवंश की उत्पत्ति, लक्ष्मी ने की शिव की उपासना, शिव-संदेश से विष्णु ने लक्ष्मी को एक वीर पुत्र प्रदान किया, हरिवर्मा को पुत्र मिला

राजा ने तीर्थसेवन की विधि पूछी तो व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! नदियों में गंगादि श्रेष्ठ है। यमुना, गण्डकी, नर्मदा, कावेरी, सरयू आदि पवित्र नदियाँ हैं। सागरगामिनी नदियाँ विशेष पवित्र हैं। नैमिष, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, श्रीशैलादि पवित्र क्षेत्र हैं। राजन्! तीर्थ, व्रत, दान व यज्ञ - इनकी सफलता द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि तथा मनशुद्धि पर निर्भर हैं। इनमें मन की शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है, द्रव्य व क्रिया की शुद्धि तो कदाचित हो भी जाये।'

**दुर्लभा मनसः शुद्धि सर्वेषां सर्वदा नृप**

(देवीभागवत ०६.१२.१९)

तीर्थ, व्रत, दान तथा यज्ञ में विघ्न बनने वाले आन्तरिक छः शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य) से पार पाना बड़ा कठिन हैं। अतः यम-नियम व स्वधर्माचरण द्वारा घर रहते ही तीर्थपुण्य पाया जा सकता है। यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान), नित्यकर्मत्याग तथा संग दोष के कारण तीर्थ का फल पूर्णतया नहीं प्राप्त होता, अपितु व्यर्थ-सा ही हो जाता है। जिनका मन शुद्ध नहीं, उनके लिए तीर्थ शारीरिक-शुद्धि मात्र कर सकते हैं, मन की नहीं। अन्यथा तीर्थवासियों में पारस्परिक वैमनस्य नहीं होता। चित्तशुद्धिरूपी तीर्थ तो गंगादि तीर्थो से भी पावनतम है।

****************************************************************************************

**चित्त शुद्धिमयं तीर्थं गंगादिभ्योऽतिपावनम्**

(देवीभागवत ०६.१२.२६)

चित्त शुद्धि के लिए सत्संग की आवश्यकता है। सैकड़ों दान, व्रत, यज्ञादि भी मन की पवित्रता में सहसा समर्थ नहीं, किन्तु सत्संग समर्थ है। प्रमाण स्वरूप .... वसिष्ठ गंगातटवासी ब्रह्मापुत्र हैं। उन्होंने तपस्वी विश्वामित्र को बगुला होने का शाप दिया। विश्वामित्र ने उन्हें आडी (शरारि) होने का शाप दिया। मानसरोवर पर जन्म लेकर भी दोनों लड़ते रहे। राजन्! हरिश्चन्द्र के कारण इनमें पास्परिक द्वेष हुआ। निस्सन्तान हरिश्चन्द्र ने नरमेध के संकल्प मात्र से वरुण को प्रसन्न करके पुत्र पा लिया। उत्सव के विप्रवेश में वरुणजी आ गये, बोले, 'करो नरमेघ। हरिश्चन्द्र ने जननाशौच के बाद करने का वचन दिया। पुनः वरुण के आने पर राजा ने संस्कारहीनता की बात कही, 'हे देव! ग्यारहवें वर्ष में जब इसका संस्कार हो जायेगा, तब नरमेध करूँगा।'

**असंस्कृतस्य बालस्य नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित्**

(देवीभागवत ०६.१२.५३)

वरुणजी समझ गये तथा कठोरतापूर्वक बोले, 'राजन्! अबकी बार प्रतिज्ञा पूरी नहीं की, तो शाप दे दूँगा।' राजा का पुत्र रोहिताश्व समय से पूर्व ही पर्वत की कन्दरा में छिप गया। वरुण आये, राजा ने पुत्र के गायब होने का रोना रोया। वरुण ने शाप दिया, 'मिथ्यावादी! कपटी! तुम्हें जलोदर हो जाये।' वरुण चले गये। हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग बढ़ने लगा। रोहित को पता चला, तो बिचारा दुःखी हो गया। पिता को देखने चला, तो इन्द्र ने विप्रवेश में आकर रोक दिया। इन्द्र ने कहा, 'हे वत्स! मत जाओ। तुम्हारा पिता नरमेध द्वारा तुम्हें वरुण को सौप देंगे। जब ही जाने का मन रोहित का हो, तभी इन्द्र रोके। हरिश्चन्द्र गुरु वसिष्ठ के पास गये। अपनी व्यथा कही, तो वसिष्ठजी ने कहा, 'राजन! त्रयोदश विध पुत्रों में से क्रीतक पुत्र द्वारा नरमेध करो। स्वस्थ हो जाओगे।'

**द्रव्यं दत्वा यथोदिष्टं आनयस्व द्विजोत्तमम् । सर्वथैव समानेयो यज्ञार्थे द्विजबालकः ।।**

(देवीभागवत ०६.१३.१२)

'अपने मंत्री को भेजकर राजा ने किसी ब्राह्मणपुत्र की खोज करायी। अत्यन्त विपन्न अजीगर्त ने अपने बीच के पुत्र शुनःशेप को द्रव्य लेकर बेच दिया। बड़ा पिता को प्यारा, छोटा माता को प्यारा, क्या बिचारा बीच का? शुनः शेप बेच दिये गये। यज्ञ के समय विश्वामित्र ने शुनःशेप की दारुण दशा देखकर हरिश्चन्द्र से बालक के प्राण भिक्षा में माँगे। '**क्रन्दत्ययं शुनःशेपः करुणा मां दुनोदपि**' – 'हे राजन्! पाप मत करो। अपने प्राणों के लिए द्विजबालक के प्राण मत लो।' किन्तु राजा स्वार्थान्ध हो गये। ऋषि की उपेक्षा करके भी यज्ञ में लगे रहे। ऋषि ने रुष्ट होकर शुनःशेप को वरुणसूक्त का उपदेश किया। जिसके पाठ मात्र से वरुण ने प्रसन्न होकर शुनःशेप को मुक्त किया, तो राजा का रोग भी ठीक कर दिया।'

'एक बार राजा हरिश्चन्द्र मृगया के लिए वन में गये। विश्वामित्र विप्रवेश में राजा से मिले तथा छलपूर्वक राजा से राज्य दान में ले लिया। वसिष्ठ और विश्वामित्र में मुलाकात हुई तो वसिष्ठजी ने कहा, 'अरे अधम! बगुला हो जाओ क्योंकि तुम मेरे शिष्य को व्यर्थ पीड़ा देते हो।' विश्वामित्र ने उन्हें आड़ी पक्षी होने का शाप दे दिया। अनन्तकाल तक परस्पर लड़ते-झगड़ते उन्हें देख, ब्रह्मा ने देवताओं सहित आकर शत्रुता समाप्त करायी। शापमुक्ति कराकर मित्रता करा दी।

**तावाश्वास्य जगत्कर्ता युद्धतो विनिवार्य च । शापं सम्मोचयामास तयोः क्षिप्तं परस्परम् ।।**

(देवीभागवत ०६.१३.४६)

अतः अहंकार को जीतकर ही प्राणी सुखपूर्वकजी सकता है। '**अहंकार जयं कृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत्**' – हे राजन्! सात्विकी श्रद्धा पूरा फल, राजसी श्रद्धा आधा, तामसी श्रद्धा मात्र क्लेश देती है। अतः वासनारहित हो, चित्त को माता के चरणों में लगाकर तीर्थों में निवास करो।' राजा ने पूछा, 'वसिष्ठ का नाम मित्रावरुणी क्यों हुआ?' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! इक्ष्वाकुवंश में धर्मज्ञ राजा निमि हुए। गौतमाश्रम के निकट जयन्तपुर नगर बसाकर तथा विशाल यज्ञ करने का विचारकर सामग्री जुटाई। भृगु, वामदेव,

******************************************************************************************

ऋचीकादि ऋषियों को बुलाया। तदनन्तर आदरपूर्वक अपने कुलगुरु वसिष्ठ को आचार्यपद के लिए निवेदन किया। ये यज्ञ देवीयज्ञ होगा तथा पाँच हजार वर्ष तक चलेगा। माँ की प्रीति ही लक्ष्य है। वसिष्ठजी ने कहा, 'हे राजन् मैं पहले परायज्ञ-दीक्षा-दीक्षित देवराज इन्द्र का पाँच सौ वर्षीय छोटा यज्ञ करा आऊँ, तब तुम्हारा यज्ञ होगा। वसिष्ठ चले गये, निमि असन्तुष्ट-सा हो गया। सोचा 'जीवन का क्या भरोसा? तब तक ये सामग्री कैसे सुरक्षित रहेगी?' अतः गौतम को आचार्य बनाकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। इन्द्र का यज्ञ पूरा करके वसिष्ठजी आये। सानन्दसम्पन्न होते यज्ञ में निमि विश्राम में थे। वसिष्ठ ने सोचा, 'मेरी उपेक्षा करता है, अतः कुलगुरु को त्यागकर अन्य का वरण करने वाले अधम! तुम विदेह हो जाओ। – '**विदेहस्त्वं भविष्यसि**'। निमि ने भी भारी आक्षेप करते हुए वसिष्ठ को लोभी, असन्तोषी, क्रोधी, अविचारक बताते हुए शाप दे दिया, 'आपका क्रोधाग्नि दूषित शरीर नष्ट हो जाये।' नरेन्द्र, मुनीन्द्र – दोंनों की दुरवस्था क्रोध के कारण हुई। वसिष्ठ ब्रह्माजी के पास पहुँचे तथा सारा वृत्तान्त कहा। ब्रह्माजी ने कहा, 'तुम मित्रावरुण के तेज में प्रविष्ट हो जाओं।' वसिष्ठ स्थूल देह को त्यागकर सूक्ष्म शरीर से मित्रावरुण के तेज में प्रविष्ट हो गये। कदाचित् उर्वशी मित्रावरुण के घर आकर रहने लगी। उसके स्नेहवश मित्रावरुण का तेज स्खलित होकर एक घट में गिर गया तथा दो तेजस्वी मुनि कुमार 'अगस्त्यजी', 'वसिष्ठजी' हुए। अगस्त्यजी तप करने वन में चले गये। वसिष्ठ को बचपन में ही पुनः इक्ष्वाकु ने गुरुपदार्थ वरण कर लिया।

'हे राजन् ! वसिष्ठ तो दूसरा शरीर पा गये। यज्ञकर्ता राजेन्द्र को यजमान का शाप तुरन्त सफल हो गया, किन्तु ऋषि का शाप ऋषि कृपा से ही निमि को नहीं लगा। यज्ञदीक्षित निमि की रक्षा यज्ञकर्ता ब्राह्मणों ने की। पूर्णाहूति होने पर देवताओं ने निमि से पूछा तो वे बोले, 'महाराज ! मैं तो दुनिया की पलकों पर बिराजूँ।'

**नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चराम्यहम्**

(देवीभागवत ०६.१५.१३)

'भगवती की कृपा से राजा निमि का मनोरथ पूर्ण हुआ। तदनन्तर निमि के शरीर का मन्थन करके मिथि नामक राजकुमार का जन्म हुआ। इनका ही नाम जनक अथवा विदेह हुआ। मिथिला नगरी गंगातट पर बसी। हे राजन्! ये निमि का वृत्तान्त सुनाया।' राजा ने पूछा, 'हे गुरो ! निमि का आचरण गुरु के प्रति उचित नहीं लगता, दीक्षित होने पर भी ब्राह्मण का अपमान, क्षमा का अभाव, ये क्या है?' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! संसार में विरला ही पुरुष होगा; जो इन आन्तरिक शत्रुओं को जीत सका हो ... ... ब्रह्मादि देवता तक की सामर्थ्य नहीं और की तो बात ही क्या? कपिलजी ज्ञानी हैं, किन्तु वे भी सगरपुत्रों को क्रोधाग्नि में जला बैठे। मोक्ष मार्ग है पराशक्ति व ब्रह्म के ऐक्य का जानना – ये सद्गुरु का संग ही अनुभव प्रदान करता हैं, शब्द ज्ञानमात्र से कल्याण नहीं है। अनुभवजन्य ज्ञान ही दिव्यज्ञान है। जैसे दीपक का नाम लेने से अंधेरा नहीं मिटता, दीपक जलाने से ही मिटता है। वैसे ही ब्रह्म-ब्रह्म कहने से नहीं चलेगा। काम व्यवहार में उतारने से मुक्ति होगी।'

**यथा न नश्यति तमः कृतया दीप वार्तया । तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये ।।**

(देवीभागवत ०६.१५.५५)

कर्म वही जो, बन्धन के लिए नहीं अपितु, बन्धन काटने के लिए हो। विद्या भी वही जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करे। निमि असफल हो गये। राजन्! हैहयवंशी क्षत्रिय भी असफल हो गये। किन्तु ययाति ने शुक्राचार्य के शाप को सहर्ष स्वीकार कर लिया। जनमेजय ने पूछा, 'हे ऋषिवर ! राजवंश में ब्राह्मण विरोध कैसे संभव हुआ? इसका क्या कारण था? कृपया बतायें।' व्यासजी बोले, 'नृपेन्द्र! हैहयवंश में सहस्रभुजाधारी कार्तवीर्य नामक राजा हुए। विष्णु अंशोत्पन्न इस सम्राट् ने दत्तात्रेय से दीक्षा लेकर अद्भुत आध्यात्मिक उन्नति की थी। इन्होंने अपने पूज्य ब्राह्मणों को यज्ञदक्षिणा रूप में पुष्कल धन दिया था। शक्ति के उपासक ये राजा सदा दान ही करते रहते थे। ब्राह्मण धनी राजा निर्धन हो गये। सहस्त्रार्जुन के इन हैहयवंशी राजाओं को धन की आवश्यकता हुई। वे अपने पूज्य ब्राह्मणों के पास धनार्थ गये, तो लोभवश ब्राह्मणों ने मना कर दिया कि धन नहीं है और धन को भूमि में छिपा दिया। और घर छोड़कर कन्दराओं में गये।

**न ददुस्ते तिलोभार्ता नास्ति नास्तीति वादिनः**

(देवीभागवत ०६.१६.१४)

'क्षत्रियों ने क्षुधार्त हो, इनके घरों की भूमि खोदकर सारी सम्पत्ति प्राप्त कर ली तथा इन्हें बुरी तरह से मारना प्राँरभ किया। शरणागतों को भी मारा, गर्भ तक के भृगुवंशी बालकों को मार दिया।'

**हन्युर्गर्भांश्च नारीणां गृहीत्वा हैहया भृशम्**

(देवीभागवत ०६.१६.२६)

'अन्य महात्माओं ने समझाया, 'ये पाप मत करो। इसका परिणाम ठीक नहीं होगा।' किन्तु अभिमानी क्षत्रिय नहीं माने। ये पतित लोभी विप्र, हमारे धन से धनी हमको ही धोखा देते हैं। उल्टा ब्राह्मणों पर आक्षेप करते हुए बोले, 'महाराज! ब्राह्मण को अपरिग्रही होना चाहिए। इनका धन तो तप है। यज्ञार्थ धन को, यज्ञ में लगाये या दान में लगाये अथवा याचकों को दे देवे। धन की तीन गतियाँ हैं – दान, भोग और नाश। दान, भोग सदाचारी के लिए नाश पापात्माओं के लिए है।

**दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी । दानभोगो कृतिनाञ्च नाशः पापात्मानां किल ।।**

(देवीभागवत ०६.१६.४०)

लोभ तो मनुष्य का महान् शत्रु है – 'दुःखद, प्राणनाशक, पापमूलक'।

**लोभ एव मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः । सर्वदुखाकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणनाशकः ।।**

(देवीभागवत ०६.१६.४६)

लोभी सम्बन्ध व सम्बन्धी की भी चिन्ता न करके अपने प्राण भी धनेच्छा में गँवा देता हैं। ब्राह्मण मरे तो लोभ वश। हैहयवंशी मरे तो लोभ वश। कौरव-पाण्डव मरे तो लोभ वश। हे राजन्! ब्राह्मणियाँ प्राणरक्षा व गर्भरक्षा के लिए सुदूर हिमालय की गुफाओं में छिपकर नदीतटों पर मिट्टीं की गौरी बना उपासना करने लगीं। स्वप्न में माँ ने दर्शन दिया, 'तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा'। एक ब्राह्मणी के ऊरु भाग से उत्पन्न बालक ब्राह्मणवंश की रक्षा करेगा। एक ब्राह्मणी की जंघा में गर्भ रहा। वह क्षत्रियों से प्राण बचाकर भागने लगी, तो सैनिको ने उसका पीछा करके जैसे ही मारना चाहा, सारे के सारे सैनिक अन्धे हो गये। माता को रोते, काँपते, चीखते, चिल्लाते देख गर्भस्थ बालक को क्रोध आ गया तथा वह जाँघ फाड़कर बाहर आ गया।

**साश्रुनेत्रां वेपमानां संक्रुध्य बालकस्पदा । सर्वेजाता विलोचनाः .... ।।**

(देवीभागवत ०६.१७.१६)

सद्यःजात बालक और्व के तेज से वे सब अन्धे हो गये। अब पश्चात्ताप करते रोते हुए, माता की शरण में ही गये, 'हे माँ! हमने अज्ञानवश जो अपराध किया, उसके लिए क्षमा करें। अब हम आपके दास हो गये हैं। हमें नेत्र प्रदान करें माँ!' उन माता ने कहा, 'हे क्षत्रियो! इस बालक की क्रोधाग्नि से तुम अन्धे हुए हो। इसकी रक्षा के लिए मैंने नव मास से सौ दिन अधिक तक छिपाकर गर्भ में रखा था। अब इसने षडंग वेद पढ़ लिया है। अब इनकी शरण ही तुम्हारी रक्षा करेगी।' क्षत्रियों ने महात्मा और्व से प्रार्थना की। वे प्रसन्न हो गये तथा दृष्टि प्रदान कर दी। पाप का फल सदा दुःख ही होता हैं। समस्त हैहयवंशी भृगुवंशियों की सेवा में जुट गये।' जनमेजय ने प्रश्न किया, 'महाराज! हैहयवंश की उत्पत्ति कैसे हुई?' व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय! सूर्यपुत्र रेवन्त उच्चैःश्रवा घोड़े पर बैठकर विष्णु दर्शन के लिए आये। लक्ष्मीजी अपलक उन्हें और घोड़े को देखती रहीं। विष्णुजी ने कुछ पूछा, किन्तु लक्ष्मी उत्तर न दे सकीं वे तो घोड़े में खोई थीं। (आखिर है तो भाई ना) विष्णु ने कहा, 'अच्छा! अब तुम्हारा नाम रमा हो गया।'

**सर्वत्र-रमसे यस्माद्रमा तस्मात् भविष्यसि**

(देवीभागवत ०६.१७.५९)

'मन चंचल है, अब चंचला कहलाओगी। जाओ! मृत्युलोक में जाकर घोड़ी बन जाओ।' लक्ष्मीजी ने रोकर क्षमा माँगी।

*************************************************************************************

भगवान् ने कहा, 'जब मेरे समान पुत्र उत्पन्न होगा, तभी तुम शाप मुक्त होकर मुझे पा लोगी'। 'हे राजेन्द्र! रेवन्त ने देखा यहाँ तो पति और पत्नी का झगड़ा हो गया, तो वे दूर से ही प्रणाम करके चले गये। सूर्य को गाथा सुना दी। इधर लक्ष्मी यमुना व तमसा संगम पर तप करने लगीं। लक्ष्मीजी शिव का ध्यान करती हैं।'

**तत्रस्थिता महादेवं शंकर वाञ्छितप्रदम्**

(देवीभागवत ०६.१८.१३)

**इच्छित फल बिनु शिव अवराधे । लहिअ कि कोटि जोग जप सार्धे ।।**

(रामचरितमानस ०१.७०.०४)

'हजारों दिव्यवर्ष तक तप करती रहीं। शिवजी प्रकट हो गये, बोले, 'देवि! स्त्री का धर्म तो पतिपूजा है, उसी की पूजा से सकल मनोरथ पूर्ण होते हैं।'

**पति शुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः । यादृशः तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभ काम्यया ।।**

(देवीभागवत ०६.१८.२३)

'हे देवी! फिर तुम विष्णु को छोड़ मेरा आराधन क्यों करती हो?' लक्ष्मी ने कहा, 'महादेव! उनके शाप से मैं घोड़ी बनी हूँ। इस शाप की मुक्ति पुत्रोपरान्त होगी। मैंने आपकी आराधना पुत्र प्राप्ति के लिए की है। हे देव! आप तथा विष्णु तो एक ही तत्व हैं – ये रहस्य मैंने विष्णु की कृपा से जाना। वे एकान्त में सदा आपका ध्यान करते हैं'। शिवजी प्रसन्न होकर बोले, 'देवि! तुम प्रसिद्ध पुत्र की माता बनोगी, किन्तु भगवती के चिन्तनाराधना को अपनी उपासना में शामिल करो। तुम्हारे पुत्र एकवीर से ही हैहयवंश का प्रारम्भ होगा।' 'हे राजन् ! शिवजी ने चित्ररूप को अपना संदेश देकर वैकुण्ठ भेजा। वैकुण्ठ में पहुँचकर दूत ने भगवान् नारायण को प्रणाम किया तथा शिवजी का संदेश कहा, 'हे विष्णु! गरीब भी अपनी पत्नी की रक्षा करता है। फिर आप क्यों नहीं ध्यान देते? आप घोड़ा बनकर लक्ष्मी को पुत्र प्रदान करें। विष्णु ने शिवाज्ञा अंगीकार करके लक्ष्मी के पास अश्वरूप में प्रयाण कर उनको मिलने का सौभाग्य दिया। दिव्य पुत्र होते ही विष्णु ने लक्ष्मी का घोड़ी रूप हटाया तथा वैकुण्ठ चलने लगे। ममतावश लक्ष्मी पुत्र को नहीं त्यागना चाहती थी, किन्तु विष्णु ने कहा, 'देवि! ययाति वंश में तुर्वसु हरिवर्मा पुत्रार्थ तप करतें हैं। वे ही इसका पालन करेंगे।'

व्यासजी बोले, 'नरेन्द्र! चम्पक नामक यक्ष ने बालक की रक्षा की। उसकी पत्नी मदालसा ने स्नेहपूर्वक उसे संभाला। चम्पक बालक को लेकर इन्द्र के पास पहुँचे। उसका परिचय पूछा। इन्द्र बोले, 'चम्पक! ये पुत्र भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मी की (अश्व तथा अश्वी) सन्तान हैं और हरिवर्मा के लिए है। जाओ! वहीं रखकर आओ, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा।' चम्पक बालक को वही छोड़ आया। उधर विष्णु ने हरिवर्मा को दर्शन देकर पुत्रोत्सवावसर प्रदान किया, 'हे हरिवर्मन्! मेरा और रमा पुत्र यमुना तथा तमसा के संगम पर है, उसे प्राप्त कर लो। सौ वर्ष की तपस्या का फल आज हरिवर्मा को पुत्र मिल गया। बड़े भव्योत्सव के बीच बालक का नाम एकवीर रखा। सारी प्रजा आज आनन्द सिंधु में निमग्न हैं।'

## एकवीर युवराज बने, एकावली हरण की कथा, दत्तात्रेय की कृपा से एकवीर ने कालकेतु का वध कर एकावली को पाया, व्यास-नारद वार्ता, नारद तथा पर्वत मुनि का चातुर्मास, दमयन्ती का नारद के प्रति अन्तरंग भाव, नारद बने नारी सौभाग्यसुन्दरी, नारद द्वारा व्यास को सान्त्वना

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! विधिवत् सभी संस्कार सम्पन्न किये गये। तदनन्तर उन्हें उत्तराधिकारी घोषित कर किया गया, युवराज बनाया गया। ये ही हैहय हरिवर्मा सपत्नीक वानप्रस्थ होकर वन गये। इधर एकवीर मन्त्रिमण्डल सहित गंगातट गये। सुन्दर-प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच सुन्दरी युवती को रोते देखा। एकवीर ने पूछा, 'देवी! तुम्हारे रोने का क्या कारण है? मैं शासक हूँ। निश्चिन्त होकर कहो।' उस कन्या ने कहा, 'हे राजन् ! रैभ्य व रुम्भरेखा – ये राजा-रानी निस्सन्तान हैं। इन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ करके कन्या प्राप्त की,

जिसका नाम एकावली रखा गया। मै उनके मंत्री की कन्या यशोवती हूँ। महाराज! हम सखी हैं साथ-साथ रहती थीं। हे महाराज! कालकेतु नामक दानव ने उसका अपहरण कर लिया है तथा रक्षकों को मार डाला। मेरी अनुनय-विनय पर भी राक्षस को दया नहीं आयी।' रोती हुई एकावली को लेकर वह अपने नगर की ओर चला, तो मैं भी स्नेह के कारण उसके साथ साथ चली तथा राजकुमारी को धैर्य बँधाया। उस रोती, काँपती, भयभीत एकावली को देखकर पत्थर भी पिघल जाये; किन्तु कामासक्त कालकेतु कहता है, 'मैं तुम्हारा दास बन गया हूँ। तुम इस बड़े साम्राज्य की साम्राज्ञी हो।' तब एकावली ने कहा, 'दैत्येन्द्र! अपने पिता की इच्छा से मैंने हैहयवंशी राजकुमार एकवीर को पति माना है, कन्या तो परतन्त्र ही होती है।'

**कथमन्यं भजे कान्तं त्यक्तवा धर्मं सनातनम् ।। परतन्त्रा सदा कन्या न स्वातन्त्र्यं कदाचन ।।**

(देवीभागवत ०६.२२.३२-३३)

'हे नृप! पातालपुरी की एक कन्दरा में बसा नगर उसके भव्य भवन में हमको उसने रखा था।' तब एकवीर ने प्रश्न किया, 'देवि! तुम यहाँ कैसे आयीं तथा एकवीर के साथ सम्बन्ध कैसे होगा? हे देवि! रैभ्य ने अपनी पुत्री को मुक्त क्यों नहीं कराया? इसका क्या कारण है? अब मेरा संशय दूर करो, तो मैं अवश्य उस पापी को मारकर एकावली को मुक्त करा लूँगा।' यशोवती ने कहा, 'हे राजन्! मैं सदा भगवती के बीज मन्त्र का जप करती एवं माता का ध्यान करती हूँ। ये मन्त्र मुझे बचपन में विद्वान् ब्राह्मण से प्राप्त हुआ था। हे नृप! वे माता अपने भक्त की सदा रक्षा करती हैं। हे नृप! मैं एक मास तक निरन्तर समाधिस्थ रहकर पूजा करती रही। तब माता ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'उठो! जल्दी गंगा किनारे जाओ! वहाँ हैहय राजकुमार आने वाले हैं, वे दत्तात्रेय द्वारा दीक्षित हैं तथा प्राणीमात्र में मेरा दर्शन करने वाले श्रेष्ठ उपासक हैं' वे लक्ष्मीपुत्र एकवीर ही तुम्हारे कष्ट को दूर करेंगे। इस पापी राक्षस को मारेंगे तथा एकावली से विवाह करेंगे। राजन्! मैंने स्वप्न की बात एकावली को सुनाई, तो वह कुछ प्रसन्न हो गयी तथा मुझे शीघ्र ही गंगातट भेज दिया। माँ की कृपा से मुझे किसी ने रोका-टोका ही नहीं, और मैं यहाँ आ गयी हूँ।'

'यशोवती की बातें सुनकर एकवीर ने अपना परिचय दिया तथा विश्वास दिलाया कि मैं अवश्य कालकेतु को मारकर एकावली को उनके पिता को सौप दूँगा। तुम मुझे पापात्मा का नगर बताओ। यशोवती ने कहा, 'हे राजन्! पहले भगवती का बीजमन्त्र प्राप्त करो। तब ही वहाँ जा सकते हो। तब दत्तात्रेयजी ने आकर त्रिलोकीतिलक महामन्त्र की दीक्षा एकवीर को प्रदान की, जिसके बल से वे एकवीर सर्वज्ञ हो गये तथा गुरु को प्रणाम करके कालकेतु के कालान्त के लिए प्रयाण किया। कालकेतु को गुप्तचरों से पता चला कि कोई वीर सेना लेकर आ रहा है, तो उसने एकावली से कहा, 'हे देवि! यदि आने वाले तुम्हारे पिता है, तो मैं उनका स्वागत करूँगा। कोई अन्य होगा, तो वो जीवित नहीं जा सकता।' इस प्रकार नगर के बाहर ही एकवीर व कालकेतु की सेना में घमासान युद्ध होने लगा। अन्त में गदा के प्रहार से तथा यशोवती की मन्त्रणा से कालकेतु को कुचल डाला और घोर संकट से एकावली को मुक्त किया। राजा रैभ्य ने इनका विवाह कर दिया, इनका पुत्र हुआ कृतवीर्य। इन कृतवीर्य से ही कार्तवीर्य हुए, जो जगविख्यात हुए।'

जनमेजय ने चकित भाव से पूछा, 'महाराज! विष्णु घोड़ा क्यों बने?' व्यासजी बोले, राजन्! ब्रह्माजी के मानसपुत्र नारदजी से सुना हुआ वृत्तान्त सुनाता हूँ। सुनो! एक बार वीणा बजाते हरिगुण गाते नारदजी आश्रम पर आये। मैंने उनका स्वागत-सत्कार किया तथा पूछा, 'हे देवर्षे! संसार में कुछ सुख तो दिखता ही नहीं?'

**असारेऽस्मिंस्तु संसारे प्राणिनां किं सुखं मुने**

(देवीभागवत ०६.२४.१४)

मेरा स्वयं का जन्म एक द्वीप में हुआ, माता-पिता ने मुझे त्याग दिया। शिवाराधन करके मैंने शुकदेव-जैसा पुत्र पाया। उसको मैंने सार्द्धश्लोकी भागवत का उपदेश किया। नारदजी आपने ही उसे पाठ पढ़ाया वह मुझे त्यागकर चला गया। हे नरेन्द्र! मैं पुत्रशोक से पीड़ित था, अतः अपनी माता सत्यवती के दर्शनार्थ गया। पता चला, माता ने शान्तनु से विवाह किया है। तब मैं सरस्वती के किनारे तप करने लगा। फिर सत्यवती माँ शान्तनु के उपरान्त वैधव्य दुःख भोगती अपने बच्चों को पालन करती रही। सहसा उनके दोनों पुत्र चित्रांगद (चित्रांगद नामक गन्धर्व ने कुरुक्षेत्र में मार डाला) और विचित्रवीर्य (अत्यासक्तिवश क्षयरोगी) मर गये। सर्वथा दुःख सागर

***************************************************************************************

में डूबी माँ ने मुझे याद किया। मैं आ गया तो माँ ने मुझसे वंश रक्षा के लिए उपाय पूछा। उपाय क्या? आदेश दिया, 'हे मेधाविन्!

**पुत्रोत्पादनकं कुरु नात्र दोषोस्ति कर्हिचित्**

'नारद! मैं चिन्तित होकर बोला, 'माँ! अनुजवधु तो पुत्री समान होती है। ये पाप कैसे होगा? पापकर्मा प्राणी के पितर नरक से मुक्त नहीं हो पाते'। बहुत बार समझाने पर भी माता नहीं मानी, अन्ततः बोली 'माता, पिता और गुरु की आज्ञा बिना विचार किये ही करनी चाहिए। तुम्हें पाप नहीं लगेगा।' भीष्म ने भी समर्थन कर दिया। हे नारद जी! मैं जानता था कि ये जुगुप्सित कर्म है, घृणित है, निन्दित है, तदपि माँ की आज्ञा मानकर मैंने ये कार्य किया।'

**निःशङ्कोऽहं तदा जातः कार्ये तस्मिन् जुगुप्सिते**

(देवीभागवत ०६.२४.५६)

'मैं तो था 'कृष्ण'– काला कलूटा–कुरूप। अतः अम्बिका का मन मुझमें नहीं लगा। मैंने शाप दिया, 'जा! तेरा पुत्र अन्धा होगा। (धृतराष्ट्र) तुमने मुझे देखते ही आँखें बन्द की। अतः अन्धा ही होगा।'

**अन्धस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलिते**

(देवीभागवत ०६.२४.५८)

व्यासजी कहते हैं, 'हे नारद जी! मेरी ये शाप की बात सुनकर माता (उपरिचर वसुपुत्री) वासवी (सत्यवती) ने कहा, 'वत्स! अन्धा तो राजा हो नहीं सकता, अतः तुम अम्बालिका से सुयोग्य पुत्र उत्पन्न करो।' किन्तु अम्बालिका को मुझ जटी शृंगाररसानभिज्ञ को देख पसीना आ गया, चेहरा पीला हो गया, मलिनमुख वाली वो उदास हो गयी। अतः मैंने शाप दिया, 'जाओ! तुम्हारी संतान पाण्डुवर्ण की होगी। (पाण्डुरोगग्रस्त पीलिया) समय पर दोनों पुत्रों को देखकर सत्यवती माँ ने एक वर्ष बाद मुझे फिर बुलाकर राजा होने योग्य पुत्र की कामना से अम्बिका को मेरे समीप भेजा, पर उसने स्वयं न आकर अपनी सात्विकवृत्ति की दासी को भेजा; जिसने अपार सुख देकर मेरा मन प्रसन्न किया। मैंने वर दिया, 'देवि! सर्वगुण सम्पन्न, सर्वशास्त्र विशारद, महापण्डित पुत्र होगा। विदुरजी का जन्म हो गया।' नारदजी! अब तो मैं शुकशोक को त्याग नूतन सुत सुख में खो गया। माता के प्रति अपनापन पुत्रों के प्रति आसक्ति। जबकि इन पुत्रों से मुझे सुख नहीं मिल सकता, तदपि मोह–ममता मेरा पीछा नहीं छोड़ती।'

धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारी से तथा एक अन्य थी। पाण्डु की पत्नियाँ कुन्ती व माद्री थी। किंदम ऋषि के शाप से पाण्डु स्त्रीसंग करते ही मर जायेगें। अतः राज्य छोड़कर पाण्डु सपत्नीक वन में चले गये। वहीं क्षेत्रजपुत्री कुन्ती ने इन्द्र से अर्जुन, धर्म से युधिष्ठिर, वायु से भीम पाये। माद्री ने अश्वनीकुमारों से नकुल सहदेव पाये। सहसा माद्री के साथ रहने से पाण्डु ऋषि शाप का शिकार बन गये। माद्री सती हो गयी। कुन्ती ने कठिनाई से इनका पालन किया। ये हस्तिनापुर आ गये। भीष्म–विदुर की कृपा होने पर भी दुर्योधन इनसे जलता रहा। कुन्ती का पुत्र कर्ण अविवाहितावस्था में सूर्य से उत्पन्न था। उसको लोक–लाज के कारण कुन्ती ने त्याग दिया था। अधिरथ व राधा ने उसका पालन किया। दुर्योधन व कर्ण मित्र बन गये। दुर्योधन ने लाक्षागृह में जलाकर पाण्डवों को मारना चाहा, किन्तु वे बच गये। एक चक्रानगरी में उनको मैनें देखा। दुःखी पाण्डवों को मैंने द्रौपदी के स्वयंवर में भेजा तथा मत्स्य बेधकर द्रौपदी को अर्जुन ने पाया। कुन्ती की आज्ञा से पाँचों ने द्रौपदी से विवाह किया। धृतराष्ट्र ने वनप्रान्त (पाण्डववन) पाण्डवों को दिया, जिसे उन्होंने मय की सहायता से दिव्य राज्य बना लिया। जुआ में राज्य तथा द्रौपदी को भी हारकर पराजित बिचारे वनवास अज्ञातवास के लिए चले। नारदजी! बड़ी विचित्र अवस्था है। मैं जानता सब कुछ हूँ, किन्तु मान नहीं पाता। संसार की मिथ्या सत्ता है, फिर भी मैं शोकाकुल हूँ। आप उपाय बताओ।'

नारदजी ने कहा, 'व्यासजी! दुनिया में कोई ऐसा जीव नहीं, जो मोह–माया से परे हो। सबकी छोड़ो व्यासजी! एक बार तो मेरी हालत खराब भी हो गयी। मैं और पर्वत मुनि (नारदजी के भानजे हैं पर्वत) – दोनों ने प्रतिज्ञा की कि जो भी मन भाव उठे उसे व्यक्त करेंगे। हम दोनों भारतभूमि पर भ्रमण करते हुए राजा संजय के यहाँ चातुर्मास करने के लिए ठहर गये। संजय की पुत्री दमयन्ती विशेषसेवा करती – खाना, पीना, नहाना, धोना, सोना, जगना, आदि छोटी–छोटी सेवाओं में लगी रहती। मैं वीणा बजाकर कीर्तन

करता, सामवेद गाता। अतः उसका आकर्षण मेरी ओर बढ़गया। वह सेवा में भेद करने लगी।

**मम तस्य च सा कन्या भोजनादिषु कर्हिचित् । अकरोदन्तरं किञ्चित् सेवा भेदं रसान्विता ।।**

(देवीभागवत ०६.२६.२५)

मुझे स्नानार्थ जल उष्ण, पर्वत को ठण्डा। मेरे लिए दही, उनके लिए तक्र। मेरा सुन्दर बिस्तर, पर्वत का गन्दा। पर्वत ने मुझसे एकान्त में पूछा, 'क्या चक्कर है नारद ! ये भेद क्यों हो रहा है?'

**राजपुत्री त्वयि प्रेम करोति मुदिता भृशम् । न तथा मयि भेदोत्र संदेहं जनयत्यसौ ।।**

(देवीभागवत ०६.२६.३१)

'हे व्यासजी ! मैंने जैसे-तैसे उन्हें सत्य बात बताई, तो वे नाराज हो गये और बोले, 'तुमने प्रतिज्ञा तोड़ी है। तुमने छल किया। कपटी ! मित्रद्रोही ! हो जाओ वानर ... ! वानर मुख हो जाओ।'

**भव वानर वक्त्रत्वं शापाच्च मम मित्र ध्रुक्**

(देवीभागवत ०६.२६.३७)

मैंने भी उन्हें शाप दिया, 'अरे तुम स्वर्गाधिकारी नहीं, भूमि पर भटको।' हे व्यास ! मैं वानरमुख हो गया, वे चले गये।' व्यासजी ! अब तो मेरी स्थिति क्या कहूँ? रात-दिन चिन्ता में लज्जा के कारण घुलता रहता था, किन्तु दमयन्ती मेरी सेवा ज्यों-की-त्यों करती रही। अन्ततः जब संजय ने दमयन्ती का विवाह करना चाहा तो उसने कहा, 'पिताजी ! मैंने नारदजी का वरण कर लिया है।' नारदजी कहते हैं, 'व्यासजी ! सैकड़ों प्रकार से उसकी माता कैकेयी ने दमयन्ती को ऊँच-नीच समझाई - भिखारी है, चंचल है, वानरमुख है, बूढा है, घर नहीं है, झगड़ालु है, अस्थिर है; किन्तु दमयन्ती ने कहा, 'माँ ! संसार में जो स्वरविद्या नारदजी जानते हैं, वह मात्र शिव के पास है, अन्यत्र नहीं। मैं तो उनकी संगीतविद्या पर न्यौछावर हो गयी। मूर्ख राजा से श्रेष्ठ तो गुणी-ज्ञानी-भिक्षुक ही है। माँ ! वास्तव में विषैला सर्प श्रेष्ठ है, जो बिना कानों के भी संगीत का दास बन जाता है।

**वरं विषधरः सर्पः श्रुत्वा नादं मनोहरम् । अश्रोत्रोऽपि मुदंयाति धिक् सकर्णांश्च मानवान् ।।**

(देवीभागवत ०६.२७.२४)

अन्ततः दमयन्ती के स्पष्ट निर्णय पर हमारा विवाह हो गया। दमयन्ती का अनुराग बढ़ता ही गया। एक दिन पर्वत मुनि आ गये तथा मेरे ऊपर दया करके शापमुक्त कर दिया मैं सुन्दर मुख वाला हो गया। मैंने भी पर्वत मुनि के शाप का मार्जन किया, अब वे स्वर्ग जा सकते हैं। सच्ची बात ये है, व्यासजी ! संसारासक्त प्राणी कभी भी भूत, भविष्यत्, वर्तमान - तीनों कालों में सुखी न हुआ है, न है, नही हो सकता।'

**तनुभृत्तु सुखी नास्ति न भूतो न भविष्यति**

(देवीभागवत ०६.२७.४८)

'मेरे जीवन की गाथा तो वैसे भी निराली है। एक बार मैं विष्णुजी के साथ वन घूम रहा था कि स्त्री बनकर बड़ा दुःख भोगा।' व्यासजी ने पूछा, 'हे देवर्षे ! विस्तार से कहो। ये तो चकित करने वाली कथा है। कैसे बने आप स्त्री?' नारदजी बोले, 'हे व्यासजी ! मैं विष्णुजी के दर्शनार्थ श्वेतद्वीप वैकुण्ठधाम में चला गया। दिव्य-भव्य झाँकी के दर्शन करके मैं ठहर पाता कि लक्ष्मीजी चली गयी। मुझे बुरा लगा। मैंने अभिमानपूर्वक पूछा कि नारायण ! मैं तपस्वी-संयमी ऋषि हूँ। नीच तो नहीं, क्यों गयी लक्ष्मीजी?' विष्णु ने कहा, 'अरे नारद ! ये सती स्त्रियों का धर्म है कि वे परपुरुष के सामने विनोद न करे, बोले अधिक नहीं, पति के बिना बुलाये जाये नहीं। रही बात भोगी, ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी मौनी, फलाहारी त्यागी, संन्यासी की, तो माया के चंगुल से कोई बचा नहीं हैं। माया को जीतना तो मेरे भी वश की बात नहीं हैं, फिर और की तो बात ही क्या?' हे व्यासजी ! मैंने नारायण से माया का स्वरूप पूछा। तब भगवान् ने कहा, 'नारद ! माया तो आकाश तक सर्वव्यापक है, अजन्मा है। चलो ! तुम्हें आज माया दिखा ही दें। बैठो ! आओ ! गरुड़ पर।' और भगवान् मुझे

****************************************************************************************

गरुड़ पर बिठाकर ले चले। कान्यकुब्ज (कन्नौज) आकर दिव्य पावन सरोवर में मुझे स्नान करने के लिए बोले। प्रभु ने कहा, 'नारद! तुम पहले स्नान करो, फिर मैं करूँगा।' स्नान करते ही मैं तो स्त्री बन गया दाढ़ी गायब, दिव्य अलकावली, सुकोमल-अंग ... ... । भगवान् चले गये ... ... गायब हो गये। मोहान्धकार के कारण पूर्व की स्मृति लुप्त हो गयी। अब हम नवयौवना तरुणी हैं, यही याद है बस। तबतक तालध्वज नामक युवक राजा ने मुझे आश्रय प्रदान किया, 'देवि कौन हो? कहाँ से आयी ...' आदि। व्यासजी! तालध्वज के पूछने पर मैं कोई उत्तर न दे सका मैं कौन हूँ? किसकी पुत्री हूँ? कहाँ से आयी? कहाँ जाना है? राजा तालध्वज ने मुझे पालकी में बिठाया। ले गया अपने नगर तथा विवाह कर लिया। मेरा नाम 'सौभाग्यसुन्दरी' रख लिया गया। वासना की आँधी में (माया के प्रवाह में) सब ज्ञान विलुप्त हो गया। पलभर के समान बारह वर्ष बीत गये। प्रथम पुत्र होने पर भारी उत्सव मनाया। दो वर्ष बाद फिर पुत्र हुआ। उसका नाम सुधन्वा रखा। पहला पुत्र वीरवर्मा ... इस प्रकार बारह पुत्र हो गये।

**एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूप सम्मताः**

(देवीभागवत ०६.२९.२९)

तदनन्तर फिर आठ पुत्र और हुए। परिवार बढ़ा। बहु, नाती, पोते बढ़े। सुख-साधन बढ़े। दुःख-साधन भी बढ़े। पूरी तरह मोह-सरोवर में मैं डूब गया। कभी बहुओं का पारस्परिक कलह है। कभी मुझे पुत्रों की शक्ति का गर्व होता। कभी धनवत्ता का, कभी आमिजात कुल का, कभी सम्मान का गर्व। कभी मैं अपनी आज्ञा मनवाकर ही पानी पीती थी। अपने आपको सौभाग्यशालिनी मानती थी। कभी नहीं सोचा, मैं नारद हूँ।' एक दिन सहसा दूसरे राजा ने राज्य पर चढ़ाई करके मेरे पुत्र-पौत्रों को मार डाला। तालध्वज पराजित होकर घर आये। मैं तो रोती, तड़पती, कलपती, चिल्लाती युद्धभूमि में जाकर पुत्रों-पौत्रों को मृत देखकर रोने लगी। तब तक नारायण वृद्ध ब्राह्मण बनकर आये तथा बोले, 'देवि! गृहस्थ में तो ये होता ही रहता है। आत्मस्वरूप का चिन्तन करो। तुम कौन हो? उठों! स्नान करके तिलोदक की व्यवस्था करो।'

'हे व्यासजी! मैं, राजा तथा शेष परिजनों तथा ब्राह्मण को लेकर तीर्थ में आयी। उन्होंनें कहा, 'तीर्थ में रोना नहीं चाहिए। मृतकों का श्राद्ध तर्पण तीर्थ में अवश्य करे घर में नहीं। भगवान् मुझे पुंतीर्थ में ले गये। उनकी आज्ञा से जैसे ही मैंने स्नान के लिए डुबकी लगायी ..... अरे! ये क्या? मृगचर्म व वीणा लिये विष्णुतट पर बैठें हैं। ये क्या है? क्या था? क्यों था?' हे व्यासजी! अब तालध्वज रोने लगा। मेरी पत्नी सौभाग्यसुन्दरी कहाँ गयी? डूब गयी? हाय हाय! तुम्हारे बिना मेरा अब कोई नहीं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? हाय! विपत्ति में कोई किसी का नहीं होता। सच है, सब छोड़ गये मुझे। क्या करूँ? शास्त्रों ने स्त्रियों को सती होने का विधान बनाया, पर अभागा पुरुष तो याद में आँसु बहाता रहे ... बस। भगवान् ने मेरे सामने ही तालध्वज को समझाया, 'अरे नृप! संयोग वियोग तो माया का खेल है। तुम्हें सरोवर से ही मिली थी, तुम्हारी पत्नी सरोवर पर ही छूट गयी। अब आत्मचिन्तन करो। सुख-दुःख सदा नहीं रहते। घड़ी के जैसे आते जाते हैं।'

**नैकत्र सुखसंयोगो दुःखं योगस्तु नैकतः । घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः ।।**

(देवीभागवत ०६.३०.२३)

मानव तन क्षणभंगुर है, दुर्लभ है। क्षणभंगुर जीवन की कलिका कल प्रातः को न जाने खिली न खिली। हे राजन्! जिह्वा का स्वाद व उपस्थ जननेन्द्रिय का स्वाद तो सदा चखा है, सदा चखोगे। रसना-वासना का सुखाभास सब जीवों को सदा मिल सकता है। किन्तु ज्ञान तो मानव तन में ही मिलेगा अन्य योनि में नहीं।

**जिह्वोपस्थ रसो राजन्! पशुयोनिषु (अपि) वर्तते। ज्ञानं मानुष देहे वै नान्यासु च कुयोनिषु ।।**

(देवीभागवत ०६.३०.२६)

इस प्रकार तालध्वज को भगवान् ने भेज दिया। वे वैराग्य-रसिक हो वन चले गये। मैंने भगवान् से कहा, 'प्रभो! अच्छा ठगा है आपने, मुझे! मैंने माया बल जान लिया।'

**वञ्चितोऽहं त्वयादेव ज्ञातमाया बलं महत्**

(देवीभागवत ०६.३०.३१)

नारदजी कहते है, 'व्यासजी! मैंने पूछा, 'हे हरे! वो पूर्व की स्मृतियाँ मेरा पीछा नहीं छोड़ती, जबकि स्त्री बनकर मुझे आत्मज्ञान नहीं रहा था। कहाँ चला गया था मेरा ज्ञानबोध ... ... नारदत्व? अब स्त्रीपन का भोग-पान, शयन-सुख सब याद आ रहा है। क्या है ये?' प्रभु बोले, 'नारद! यही तो महामाया है। जैसे स्वप्न में भिन्न बाधाओं में घिरा जीव डरता, रोता, हँसता है, वैसे ही दुनिया भी स्वप्नवत् है। अतः सावधान होकर जगते ही सोना, जागकर सोना मुसाफिर ये ठगों का गाँव है।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय! नारदजी ने जो मुझे बताया, मैं वहीं सुनाता हूँ। सुनो! नारदजी ब्रह्मलोक को गये, विष्णु विष्णुलोक गये। ब्रह्माजी ने मेरी उदासी देखी तो पूछा, 'क्या कारण है नारद? क्यों, चेहरा उतरा है तुम्हारा? क्या बात है? कहो तो!' तब मैंने अपनी सारी स्त्रीरूप की घटना पिताजी को सुना दी। मैं तो छली विष्णु द्वारा छला गया हूँ। नारद स्त्री, स्त्री नारद कैसे बन सकता है? ये माया कैसी जीती जा सकती है? कृपया पिताजी! बताओं तो सही।' ब्रह्माजी ने कहा, 'हे नारद! सच ये है कि मैं भी माया को पूर्णतया नही जान पाया। तुम चिन्ता मत करो। ये खेल तो ऐसे ही चलता है, चलेगा।' नारदजी कहते है, 'व्यासजी! मेरा संशय दूर हो गया। मैं तीर्थभ्रमण करने लगा। आप भी कौरव नाश से शोक मत करो। आनन्दपूर्वक जगदम्बा का ध्यान करो। वही सार है।

व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय! सारस्वत कल्प में, शाम्याप्राश में सरस्वती के तट पर देवीभागवत की रचना की थी। हे राजन्! बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। सत् में शान्त, रज में रौ, तम में मूढ़भाव रहता है। जैसे बिना मिट्टी के घट, बिना तन्तु के पट, बिना स्वर्ण के अलंकार नहीं रह सकते, वैसे ही बिना गुण के शरीर नहीं रह सकता। सत्वसधिक्य में शान्ति, प्रसन्नता, समाधि, ज्ञान, आनन्द रहता है, रज गुणाधिक्य में, झुंझलाहट, महत्वाकांक्षी, क्रोध, द्वेष, तृष्णा, आदि रहता, तमो गुणाधिक्य में खिन्नता, क्लेश, नींद, तन्द्रा, आलस्य, प्रमाद रहता हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी क्रमशः तीनों गुणों के प्रभाव में रहते, आराधन करे। अंधेरा मिटाने के लिए दीपक की जरूरत है। भगवती जगदम्बा ही माया के प्रपञ्च का वारण करने में समर्थ प्रज्ज्वलित अखण्ड ब्रह्माण्ड प्रकाश दीप है।'

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं षष्ठः स्कन्धः ।।*

## : नवाह्न पारायण विश्राम स्थल संकेत :

**प्रथमे दर्शनं देव्याः द्वितीये तीर्थ दर्शनम् । तृतीये महिषान्तं तु प्रोक्तं भागवते ततः ।।**

**पूजन देव्याश्चतुर्थे च लक्ष्मीद्वारा विधानतः । पञ्चमे राजदानं हि हरिश्चंद्रस्य सुव्रत ।।**

**ध्रुवमण्डलसंस्थानं षष्ठेषु सप्तमे शृणु संवादं यमसावित्र्योः । अष्टमे भ्रामरीकथा नवमे दिवसे प्रोक्तं पुराणश्रवणफलम् ।।**

१) आरम्भ से तीसरे स्कन्ध के तीसरे अध्याय तक; २) तीसरे स्कन्ध के चौथे अध्याय से चौथे स्कन्ध के आठवें अध्याय तक; ३) चौथे स्कन्ध के नौवें अध्याय से पाँचवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय तक; ४) पाँचवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय से छठे स्कन्ध के अठारहवें अध्याय तक; ५) छठे स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय से सातवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय तक; ६) सातवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय से आठवें स्कन्ध के सत्तरहवें अध्याय तक; ७) आठवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय से नौवें स्कन्ध के अट्ठाईसवें अध्याय तक; ८) नौवे स्कन्ध के उनतीसवें अध्याय से दसवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय तक; ९) दसवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय से बारहवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय तक ।। * * *

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। सप्तमः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### दक्षपुत्रों को नारद ने भिक्षुक बनाया, दक्ष का शाप, च्यवन-सुकन्या प्रसंग, च्यवन और सुकन्या विवाह, बलराम-रेवती का विवाह, विकुक्षि-पुत्र ककुत्स्थ व मान्धाता कथा, सत्यव्रत (त्रिशंकु) चरित्र, हरिश्चन्द्र को जलोदर, विश्वामित्र-वसिष्ठ में पण हो गया, छलपूर्वक विश्वामित्र ने दान में राज्य पा लिया, काशी में दक्षिणार्थ विक्रय संकल्प, शैव्या-विक्रय, रोहित-विक्रय, डोम के घर धर्म हेतु राजा बिका

नैमिषारण्य तीर्थ में सूतजी महाराज शौनकादि ऋषियों को सुनाते हुए कहते हैं, 'हे ऋषियो! परीक्षित-पुत्र जनमेजय ने महात्मा व्यासजी से सूर्यवंशी और चंद्रवंशी जगदम्बा भक्तों की कथा सुनाने का आग्रह किया। तब महात्मा व्यासजी ने उन्हें सूर्यवंशी और चंद्रवंशी जगदम्बा भक्तों की कथा सुनाना आरम्भ किया, 'हे जनमेजय! विष्णु के नाभिकमल सें ब्रह्माजी हुए। उन्होंने जगदम्बा की आराधना करके मानसी सृष्टि आरम्भ की,

**ससर्ज मानसान्पुत्रान् सप्तसंख्यान्प्रजापतिः**

(देवीभागवत ०७.०१.१०)

'मरीचि, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये मानस पुत्र हुए। रोष से रुद्र, गोद से नारद, अंगुष्ठ से दक्ष, वामांगुष्ठ से दक्षपत्नी वीरिणी (असिक्नी) पैदा हुई। नारदजी इनके ही पुत्र हैं।'

जनमजेय ने प्रश्न किया, 'महाराज! ब्रह्मा के मानसपुत्र व दक्षपत्नी से उत्पन्न ... ये कैसे संभव होगा?' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! ब्रह्माजी ने दक्ष से कहा, 'जाओ, प्रजावृद्धि करो।' दक्ष ने वीरिणी से दस हजार पुत्र पैदा किये। उनसे नारदजी ने पूछा, 'मेरे भाईयों! दक्षपुत्रो! जब तक पृथ्वी की लंबाई चौड़ाई का ज्ञान न हो, तब तक प्रजावृद्धि से क्या लाभ?' अरे, तुम पर दुनिया हँसेगी।' नारदजी की बात हर्यश्वों को समझ में आ गई और पृथ्वी की जानकारी के लिए चारों दिशाओं में विभक्त होकर चल दिये। दक्ष को भारी

**************************************************************************************

क्लेश हुआ, किंतु फिर तपोबल से पुत्रोत्पन्न किये। नारदजी ने उन्हें भी पृथ्वी का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेज दिया। अब तो दक्ष को क्रोध आ गया और नारद को शाप दिया, 'मेरे पुत्रों को तुमने नष्ट किया है, तुम भी नष्ट हो जाओ। गर्भवास करो। मेरे पुत्र बन जाओ।'
दक्षोवाच –

**नाशिता मे सुता यस्मात्तस्मान्नाशमवाप्नुहि । गर्भवासं व्रजेति च पुत्रो मे भवं कामं त्वम् ।।**

(देवीभागवत ०७.०१.३२)

'नारदजी इस प्रकार वीरिणी से उत्पन्न हैं। दक्ष ने अबकी बार साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं, 'पुत्रों को लोग पकड़कर बाबाजी बना देते हैं, अतः पुत्री ही पैदा करूँगा।' इसका मतलब उस समय पुत्रियों को बाबाजी नहीं बनाया जाता था। यदि आज ऐसा वातावरण होता, तो उन्हें भी बाबाजी बहकाकर शिष्या, कथावाचिका, साध्वी, प्रचारिका, या योगिनी बना देते। उनमें से तेरह कश्यप को, दस धर्म को, सत्ताईस चंद्र को, दो भृगु को, चार अरिष्टनेमि को, दो अंगिरसा को, तथा दो कृशाश्व मुनि को प्रदान कीं। भारी प्रजा का सृजन किया किंतु परस्पर स्नेहाभाव में बैरानुबंधवश में वे मोह के कीचड़ में पड़े रहते थे।'

व्यासजी बोले, 'हे राजन्! नारदजी से श्रुत व्याख्यान को सुनाता हूँ, जो नारदजी ने सुनाए थे। नारायण से ब्रह्मा, ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि से कश्यप हुए। तेरह दक्ष की पुत्रियाँ कश्यप की पत्नियाँ थीं। देव, दानव, यक्ष, सर्प, वृक्ष, पशु, पक्षी – सब काश्यपी सृष्टि हैं। विवस्वान् सूर्य से वैवस्वत मनु, मनु से इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, करुज, पृषध्र – ये नौ पुत्र हुए। इक्ष्वाकु से विकुक्षि आदि सौ पुत्र; नाभाग से परमभक्त अम्बरीष; धृष्ट से धार्ष्ट (ये तपोबल से क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण हो गये।); शर्याति से सुकन्या व आनर्त हुए। सुकन्या का विवाह शर्याति ने अन्ध वृद्ध च्यवन ऋषि से किया। अपने पातिव्रत्य व तप से सुकन्या ने युवा सुलोचन दिव्य बना लिया।' जनमेजय ने पूछा, 'हे महर्षे! ये बेमेल विवाह क्यों किया? क्या कारण था? कृपया बताइए।' व्यासजी सुनाने लगे, 'हे राजन्! मनुपुत्र शर्याति की पवित्रा कन्या सुकन्या थी। पावन उपवन के सुखकर सरोवर में कलरव करते पक्षी प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो क्रीडा करते थे। वहीं मौनी शांत दत्तचित्त प्राणायामपरायण महात्मा च्यवन तप करते थे। जगदम्बा भक्त च्यवन के ऊपर वल्मीक मिट्टी घास-फूस लताएँ जम गई थीं। एक दिन रानियों सहित शर्याति वन-विहार करने उधर आये। चञ्चलतावश सुकन्या सखियों सहित उसी वल्मीक मिट्टी के निकट जाकर दो चमकती ज्योतियों को (च्यवन ऋषि की आँखों को) जुगनू समझकर नोंकदार काँटे से उस मिट्टी को हटाकर '**किम् एतत्**' की भावना के वशीभूत होकर देखने लगी। ऋषि ने कृष होने के कारण धीमी आवाज में कहा, 'राजकुमारी! मैं ऋषि हूँ। तुम दूर जाओ।'

**दूरं गच्छ विशालक्षि तापसोऽहं वरानने । मा भिन्द्यस्वाद्य वल्मीकं कण्टकेन कृशोदरि ।।**

(देवीभागवत ०७.०२.५३)

क्रीडारत होने के कारण अथवा ध्वनि मन्द होने के कारण अथवा बचपन होने के कारण सुकन्या ने ध्यान नहीं दिया और उत्सुकतावश ऋषि की आँखें फोड़ दीं। च्यवन ऋषि की पीड़ा और क्रोध के परिणाम से सेना सहित राजा का मल-मूत्र रुक गया। (सेना हाहाकार, पीड़ा, विवशता, लाचारी, दुर्दशा से पीड़ित होने लगी थी) तब राजा विचार करने लगा कि भृगुपुत्र च्यवन ऋषि के अपमान से ऐसा हो सकता है। उसने दूतों को आदेश दिया, 'कौन है, जो बाग में खेला? पता लगाओ!' डरती हुई बिचारी सुकन्या आयी और बोली, 'पिताजी! एक वल्मीक ढेर में मैंने काँटा चुभाकर '**किम् एतत्**' सोचते हुए देखा, तो वहाँ धीमी-सी अशक्त आवाज आई काँटा कुछ गीला-सा भी था। (**जलक्लित्वा तदा सूची हाहेति च श्रुतः शब्दः**) राजा समझ गये। वे दौड़े-दौड़े ऋषि की शरण में गए, दण्डवत् प्रणाम करके क्षमा माँगकर संतुष्ट किया। वे बोले, 'प्रभो! मेरी पुत्री ने चंचलतावश अज्ञान में यह अपराध किया है।' च्यवन ऋषि बोले, 'राजन्! मैं क्रोध तो बिलकुल नहीं करता।'

**राजन् नाहं कदाचित् वै करोमि क्रोधमणवपि**

(देवीभागवत ०७.०३.१३)

*****************************************************************************************

देवीभक्त का अपराध करने वाला शिवरक्षित होने पर भी सुखी नहीं रह सकता।'

**अपराधं परं कृत्वा देवीभक्तस्य को जनः। सुखं लभेत् यदपि भवेत् त्राता शिवः स्वयम् ।।**

(देवीभागवत ०७.०३.१५)

'हे राजन्! वृद्ध-अंधा-तपस्वी अब मेरी परिचर्या कैसे होगी?' राजा ने कहा, 'हे प्रभो! हजारों सैनिक आपकी सेवा में लगा दूँ?' ऋषि ने कहा, 'ये क्रीतसेवक सेवा ठीक से नहीं कर सकते, तुम अपना कल्याण चाहो तो तुम्हारी कन्या पर मैं प्रसन्न हूँ। उसे ही सेवा में सौंप दो। सुनकर शर्याति के प्राण सूख गये - ये कैसे हो सकता है? कहाँ ये वृद्ध, अंधे, निरिन्द्रय, कुरूप, निर्धन और मरणासन्न; कहाँ मेरी युवती सुलोचना, स्वस्थ, सुंदरी, राजपुत्री, खिले पुष्प-जैसी पुत्री सुकन्या। कैसे स्वार्थ के लिए पुत्री का जीवन बर्बाद करूँ। चिन्ताकुल राजा को देख सुकन्या ने अपना आशय बताते हुए कहा, 'पिताजी! मैं च्यवन ऋषि की सेवा का सौभाग्य पाना चाहती हूँ। सती धर्मानुरूप मैं उनकी सेवा करूँगी।' अपनी पुत्री का त्यागभाव, सेवाभाव, धर्मभाव, परमार्थभाव, सात्विकभाव देखकर करुणार्द्र राजा सुकन्या को लेकर च्यवन ऋषि के समीप गये। ब्रह्मविधि से विवाह हुआ। त्यागी ऋषि ने दहेज नहीं लिया, मात्र सेवार्थ कन्या ली। दहेज लेना महापाप है, सामर्थ्य के अनुसार देना धर्म है। किंतु झूठे दिखावे के चक्कर में, कमरतोड़ प्रतिस्पर्धा के चक्कर में क्षमता से अधिक देना और भी बड़ा पाप है। विवाह में भेंट देना, सम्मान करना, उपहार देना सभ्य परम्परा है। किंतु बोली लगाकर पुत्र को बेचना महापाप है। दूसरे से प्राप्त धन से जीवन नहीं चलता। चलेगा तो पुरुषार्थ की कमाई से ही। च्यवन ऋषि दहेज त्यागी हैं। साधनहीन होने पर भी दहेज में कुछ भी नहीं लिया।

दहेज देने की भावना उदात्त विचार है, उत्कृष्ट भावना है। स्तुल्य है तो दहेज माँगना। दीनता, दरिद्रता, हीनता, निकृष्टता, याचकता है; निन्द्य है। सुकन्या ने भी राजसी वस्त्रालङ्कार त्यागकर वल्कल वस्त्र धारण कर लिये तथा पिता से प्रसन्न होकर बोली, 'आप चिन्ता नहीं करना। आपकी पुत्री आपका नाम करेगी जैसे संसार अरुन्धती को, अनुसूया को जानता-मानता है; वैसे ही आपकी पुत्री सुकन्या को जानेगा। मैं अपने तप के बल से तीनों लोकों में अपना और आपका नाम रोशन करूँगी।'

**करिष्यामि तथा तात यथा ते कीर्तिरच्युता । भविष्यति भुवः पृष्ठे तथा स्वर्गो रसातले ।।**

(देवीभागवत ०७.०३.५९)

सभी परिजनों के आँखों में आँसू आ गए। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! रात-दिन सेवा करके सुकन्या ने ऋषि च्यवन को प्रसन्न कर लिया। भोजन, सेवा स्नानार्थ उष्णोदक, पंखा झलना, तिल-कुश-कमण्डल-वस्त्र-पात्रादि का ध्यान रखती। चरणसेवा करके सुला देती। शीतकाल में अग्नि जलाकर सुख देती। प्रातः जल-मिट्टी लेकर नित्यक्रिया कराती, हाथ-पैर धुलवाती। तदनन्तर स्नानोपरान्त संध्या-तर्पण-हवन-पूजन में सहयोग करती।'

एक दिन सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार आश्रम पर आये तथा सुकन्या से परिचय पूछा, 'तुम कौन हो? इतना सुकोमल तन और इतना कठोर ये तप ... ...?' सुकन्या ने कहा, 'हे देव! मैं च्यवन ऋषि की पत्नी और शर्याति की पुत्री सुकन्या हूँ।' अश्विनीकुमारों ने पूछा, 'देवी! दैव ने तुम्हारे साथ क्रूर मज़ाक किया है। कहाँ यह दिव्य सौन्दर्य कहाँ ये वृद्ध पति? आओ! हममें से किसी एक का वरण करके जीवन का आनन्द लो।' सुकन्या ने कहा, 'महाराज! अपने पिता सूर्य की साक्षिता में तुम्हारा ये अधर्ममय वार्तालाप उचित नहीं है। आप चले जायें, अन्यथा मैं शाप दे दूँगी।'

**यथेच्छ गच्छताम् अन्यथा शापं दास्यामि वानद्यौ**

(देवीभागवत ०७.०५.०६)

सुकन्या की धार्मिक दृढ़ता देखकर अश्विनीकुमार प्रसन्न होकर बोले, 'हम तुम्हारे पति को अपने जैसा बना देंगे, किंतु हम तीनों में किसी एक का वरण तुम कर लेना।' चकित होकर सुकन्या च्यवन ऋषि के पास पहुँची तथा यथावत् वृत्तान्त उन्हें सुना दिया। च्यवन ऋषि ने कहा, 'देवि! उन अश्विनीकुमारों को मेरे पास अविलम्ब ले आओ।' अश्विनीकुमारों ने ऋषि च्यवन को दिव्य जलाशय में उतारा, स्वयं भी जल में उतर गये। जब वे जल से बाहर निकले, तो वे तीनों एक जैसे थे। रूप, वय, शील, भंगिमा, आकृति, एकदम

समान। अब सुकन्या क्या करें? उन्होंने कहा, 'किसी एक का वरण कर लो, जिसे तुम चाहो।' धर्मसंकट में फँसी सुकन्या माता जगदम्बा का ध्यान करने लगी, 'हे माते! आपके हाथ में मेरा सतीत्व है। आप ही मेरी रक्षा करें। मेरा पति प्रदान करने की कृपा करें।' माँ की कृपा से सुकन्या ने पति को पहचान लिया। फलतः अश्विनीकुमार प्रसन्न हो गये तथा स्वर्ग की ओर जाने लगे। च्यवन ऋषि ने कहा, 'देवो! आपने मुझे रूप तथा नेत्र दोनों दिए, मैं कृत्कृत्य हो गया। मैंने नवजीवन पाया है; अतः मैं भी आपको जो चाहो, देना चाहता हूँ।'

**प्रार्थितं वां प्रदास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः**

(देवीभागवत ०७.०५.४९)

अश्विनीकुमारों ने देवसमाज में बैठकर सोम-पान की कामना प्रकट की। उन्होंने कहा, 'हे ऋषिवर! हमें वैद्य होने से अनाधिकारी समझा जाता है।' च्यवन ऋषि ने सोमपान का वचन देकर कृतार्थ किया। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! एक दिन शर्याति को अपनी पुत्री का स्मरण हो आया और वे सपत्नीक देखने के लिए चल दिये। आश्रम पर देखा तो सुकन्या किसी सुंदर युवक के साथ रमण कर रही है। दृश्य देखते ही उनका मन विभिन्न कुविचारों से भर उठा, 'अरे दुष्टा! तुमने दोनों कुलों को कलङ्कित कर दिया है। मुझे तो मर जाना चाहिए। हे ऋषि का अपमान करने वाली कुलटा! तुम इस जार के साथ रमण करती हो।' सुकन्या ने मुस्कराकर कहा, 'पिताजी! मैं तो आप जैसे धर्मनिष्ठ की पुत्री हूँ और अश्विनीकुमारों का सारा वृत्तान्त (ऋषि का प्राप्त यौवन) सुना दिया। च्यवन ऋषि ने भी शर्याति को अश्विनीकुमारों को यज्ञ में सोमपान का वर प्रदान करने की बात कहकर यज्ञायोजन के लिए प्रेरित किया। भव्य यज्ञ में इन्द्रादि देवता तो आये ही, अश्विनीकुमार भी आ गए। इन्द्र को शङ्का हुई, 'ये तो चिकित्सक हैं। इन्हें क्यों बुलाया? किसने बुलाया है?

**चिकित्सकौ न सोमार्हौ केनानीतौ विहेति च**

(देवीभागवत ०७.०६.१२)

किसी ने उत्तर नहीं दिया। समय पर च्यवन ऋषि ने वैद्यों को सोमरस दिया, तो इन्द्र ने निषेध किया। तब च्यवन ऋषि ने पूछा, 'इनका क्या दोष है? सूर्यपुत्र हैं, वर्णसंकर नहीं। वन्द्य हैं, निन्द्य नहीं। सात्विक हैं, लालची नहीं। देव हैं, दैत्य नहीं। इन्होंने मेरा उपकार किया है, अतः मैं इन्हें सोमरस दूँगा ही।' अन्ततः च्यवन ऋषि ने इन्द्र को स्तम्भित करके अश्विनीकुमारों को सोमरस पान करा ही दिया। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! इन्द्र को भारी क्रोध आ गया बोले, 'मेरी अवज्ञा करने वाले हे ब्रह्मबंधु! आज तुम दूसरे विघ्नरूप बनकर मृत्यु का ग्रास बनो।' वज्र प्रहार करने की भावना से जैसे ही इन्द्र ने हाथ उठाया, वे स्तम्भित हो गये - '**स्तम्भयामास वज्रम्**'। च्यवन ऋषि ने इन्द्र वधार्थ कृत्या भी उत्पन्न कर दी। साथ ही मदासुर ने सम्पूर्ण प्रपञ्च को निगल-सा लिया। बृहस्पति की सलाह पर इन्द्र च्यवन ऋषि की शरण में गये तथा बोले, 'हे महर्षे! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अश्विनीकुमार अब सोमपान कर सकते हैं। हे महर्षे! मेरा प्रयत्न तो आपकी तपस्या की परीक्षा के लिए था।'

**परीक्षार्थं तु विज्ञेयं तव वीर्यप्रकाशनम्**

(देवीभागवत ०७.०७.३५)

'ऋषि च्यवन ने इन्द्र को ज्वर मुक्त किया, मद को भी स्त्री-पान, जुआ, मृगया में स्थापित कर दिया। इस प्राकर भव्य यज्ञ पूर्ण सफल हो गया। इसी वंश में आनर्त से रैवत हुए इन्होने समुद्र में कुशस्थली बसाई। इनके पुत्र कुबुद्य व पुत्री रेवती हुई। रेवती के योग्य वर पूछने रैवत ब्रह्माजी के पास रेवती को लेकर गये।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! अब जनमेजय ने पूछा, 'महाराज! सशरीर तो ब्रह्मलोक कोई नहीं जा सकता, फिर ये कैसे पहुँच गए? हाँ! मात्र ब्रह्मज्ञानी शान्त ब्राह्मण जा सकता है।' व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! स्वर्गलोक या ब्रह्मलोक जाने वाले तो अनेक राजा हुए हैं। दिलीप, दशरथ, महाभिष, अर्जुनादि। अत; पुण्यात्मा सदाचारी किसी भी लोक में आ-जा सकते हैं, संशय मत करो। रैवत जब वहाँ पहुँचे तब सङ्गीत समारोह हो रहा था, अतः क्षणभर ठहर गए।

**आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम्**

(देवीभागवत ०७.०८.२०)

*****************************************************************************************

सभोपरान्त रैवत ने प्रणाम करके अपनी पुत्री के लिए योग्य वर पूछा तो ब्रह्मा ने हँसकर कहा, 'रैवत! अब तो सत्ताईसवाँ कलियुग चल रहा है। तुम्हें आये हुए १०८ युग बीत गए। उस समय के राजा, राज्य, शत्रु, मित्र, पुरजन, परिजन – सब काल–कवलित हो गये। अब तो चन्द्रवंशी राजा उग्रसेन पालित कृष्ण–बलराम मथुरा में शासन करते हैं। कंस व जरासंध को परास्त करके कृष्ण कालयवन के भय से मथुरा से पलायन कर द्वारिकापुरी जाने की तैयारी में हैं। हे रैवत! शेषावतार बलरामजी के साथ अपनी पुत्री का विवाह करो।' जनमेजय ने प्रश्न किया, 'हे महर्षे! १०८ युग तक कन्या वृद्धा नहीं हो गई होगी?' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! वहाँ (ब्रह्मलोक में) भूख, प्यास, जरा, रोग, मृत्यु, ग्लानि आदि नहीं होते। हे राजन्! शर्याति सत्ता नष्ट होने पर कालान्तर में क्षुव नामक (इक्ष्वाकु) प्रतापी राजा ने अयोध्या बसाई। इनके विकुक्षि हुए।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! अष्टका श्राद्ध के दिन विकुक्षि को श्राद्धोचित मांस लाने भेजा। वन में भारी भूख लगने पर विकुक्षि ने श्राद्ध की बात भूलकर खरगोश को खाकर भूख मिटा ली। शेष द्रव्य लेकर आया, तो वसिष्ठ ने योगबल से जानकर उसे राजा को बताया। राजा ने विकुक्षि का त्याग किया। उच्छिष्ट पदार्थों से श्राद्ध नहीं हो सकता। तभी से विकुक्षि शशाद हो गये। इक्ष्वाकु के उपरान्त विकुक्षि ही राजा बने। इनका पुत्र ककुत्स्थ (पुरञ्जय इन्द्रवाह) हुआ। इसने देवासुर संग्राम में इन्द्र को बैल बनाकर उसकी सवारी की, अतः इन्द्रवाहन पर ककुत्स्थ बैठे। ककुत्स्थ ने शर्तपूर्वक देवताओं की सहायता की।'

'इसी वंश में अनेना हुए, अनेना से महाराज पृथु हुए। इनसे विश्वरन्ध्रि, विश्वरन्ध्रि से चन्द्र, इनसे युवनाश्व, इनसे सावन्त, इनसे वृहदश्व हुए। इनके कुवलाश्व, इसने धुन्धु दैत्य का वध किया अतः 'धुन्धुमार' कहलाये। इनसे दृढाश्व, इनसे हर्यश्व, इनसे निकुम्भ, इनसे वर्हणाश्व, इनसे कृशाश्व, इनसे प्रसेनजित, इनसे यौवनाश्व, इनसे मान्धाता हुए। ये भगवती के विशेषोपासक थे। इनका जन्म मातृगर्भ से नहीं, पिता युवनाश्व के गर्भ से हुआ था।'

**मातृगर्भे न जातोऽसौ उत्पन्नो जानकोदरे**

(देवीभागवत ०७.०९.४१)

जनमेजय ने पूछा, 'महाराज! मान्धाता का जन्म मातृगर्भ से नहीं, पिता युवनाश्व के गर्भ से हुआ' – ये कैसे सम्भव है? न सुना, न देखा, कहीं ऐसा भी होता है! स्पष्ट करके सुनाइए।' व्यासजी कहा, 'हे राजन्! युवनाश्व की सौ रानियाँ हैं। फिर भी सन्तान नहीं। एक दिन ऋषियों के सम्मुख अपनी व्यथा राजा ने सुनाई, तो ऋषियों ने पुत्रेष्टि अनुष्ठान कराया; क्योंकि

**अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च**

(देवीभागवत ०७.०९.५२)

यज्ञ में जल अभिमन्त्रित करके रखा गया कि राजा पुत्रवान् हो जाएँ। रात्रि में राजा को प्यास लगी। उसने चुपचाप वह अभिमन्त्रित जल पी लिया। फलतः प्रातःकाल कोहराम मच गया। परिणाम हुआ। युवनाश्व को गर्भ रह गया। समय पर दक्षिण कोख चीरकर गर्भ को निकाला। राजा का कुछ नहीं बिगड़ा। बालक तो रोने लगा। अरे! इसका पालन कौन करेगा? '**कंधास्यति कुमारोऽयम्**' इन्द्र ने कहा, 'मैं पालन करुँगा।' '**तदा इन्द्रो देशिनी प्रादात् मांधाता इत्येतद्वचा**' अतः इनका नाम मान्धाता हुआ। मान्धाता बड़े प्रतापी राजा हुए। इनके राज्य में चोर–लुटेरे नहीं होते थे। इनका नाम त्रसद्धस्यु भी था। शशबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से इनका विवाह हुआ, पुरुकुत्स एवं मुचुकुन्द दो पुत्र हुए। पुरुकुत्स से अनरण्य, इनसे बृहदश्व, इनसे हर्यश्व, इनसे त्रिधन्वा इनसे अरुण, इनसे सत्यव्रत उत्पन्न हुए। ये स्वतंत्र और स्वेच्छाचारी जैसे हो गये। मनमाने आचरण करते।'

एक दिन एक ब्राह्मणी का विवाह मण्डप से अपहरण कर लिया। ब्राह्मण की पुकार पर राजा ने उसे घर से निकाल दिया। 'चाण्डालों के घर जाकर रह' कह दिया। सत्यव्रत चाण्डालों के घर जाकर रहने लगे। उनको पिता तथा वसिष्ठ – दोनों पर क्रोध है। अरुण के राज्य में बारह बर्ष तक अकाल पड़ा। उस समय विश्वामित्र भी घर छोड़कर कौशाम्बी के तट पर तप करते थे। विश्वामित्र की पत्नी उस समय भारी क्लेश भोगती थीं। उनके मन में आ गया कि एक पुत्र बेच दूँ। उस संकट के समय में सत्यव्रत ने इनकी सहायता

*******************************************************************************

की। वह जब तक विश्वामित्र नहीं आये, तब तक जैसे तैसे उनके आहार की व्यवस्था करता रहा। एक दिन कुछ नहीं मिला, तो वसिष्ठ की गाय चुराकर मारी और खा ली।

**तां जघान क्षुधार्तस्तु क्रोधान्मोहाच्च शत्रुवत्**

सत्यव्रत भूखा है, क्रोधान्ध है, मुग्ध है और शत्रु भी है। बुद्धि पर पर्दा डालने के लिए भूख, क्रोध, मोह, अथवा शत्रुता में से एक ही काफी है। (**बुभुक्षितः किं न करोति पापम्**) भूखा क्या पाप नहीं कर सकता। अतः चाण्डाल पापात्मा सत्यव्रत ने गोवध कर दिया। विश्वामित्र की पत्नी ने ग्राह्यपवित्र मृगमांस जानकर खा लिया। वह न जान सकी कि ये मृग का मांस नहीं, गोमांस है। वसिष्ठजी ने शाप दिया, 'अरे पापी! तेरे तीन शंकु निकल आवेंगे (कोढ़की तरह तीन दाग होंगे)। तेरा नाम त्रिशंकु होगा – १. द्विजपत्नी अपहरणात् (काम), २. पितृव्यक्त गुरुद्रोहात् (क्रोध), ३. गोवधात् (लोभ)। शाप दग्ध सत्यव्रत ने (त्रिशंकु ने) भगवती राजराजेश्वरी की आराधना प्रारम्भ की। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! वसिष्ठजी के शाप से दग्ध होने पर भी सत्यव्रत ने भगवती के नवार्णमन्त्र का अनुष्ठान किया, किन्तु उसका हवनादि करने लिए कोई ब्राह्मण नहीं आया। ब्राह्मण बोले, 'हे राजपुत्र! तुम गुरुशप्त होने से पिशाचवत् हो गये हो, तुममें द्विजत्व नहीं रहा। आपको वेदाधिकार और यज्ञाधिकार नही है।'

**न यागार्होसि तस्मात्वं वेदेष्वमधिकारतः**

(देवीभागवत ०७.११.०८)

सब ओर से निराश और हताश सत्यव्रत ने जीवन को भार मानकर चितारोहण का संकल्प कर जैसे चिताग्नि में प्रवेश करना चाहा, सहसा जगदम्बिका माँ प्रकट हो गयीं, 'वत्स! ठहरो! तुम्हारे लिए चिताग्नि नहीं राजगद्दी तुम्हारी प्रतिक्षा करती है।' माता अन्तर्धान हुई। उधर श्रीनारदजी आ गये। अयोध्यानरेश के यहाँ सब सूचना प्रसारण मन्त्री ने ताजा समाचार राजा अरुण को हाल सुना दिया। भगवती की आराधना का परिणाम जिस पिता, गुरु तथा समाज ने त्याग दिया था; आज उनका मन बदला उसे राजा बनाने के लिए उत्सुक हैं।

**तस्यैव आनयानार्थ प्रीतिप्रणव मानसः**

(देवीभागवत ०७.११.२८)

सत्यव्रत को लेकर मन्त्री आ गये। राजा ने उनको धर्मोपदेश करके राजा बना दिया। 'बेटा! प्रजा का पालन प्राणों के समान ही करना। यज्ञ अवश्य करना। सुवृष्टि के लिए यज्ञावश्यक है। '**यष्टव्या विविधा यज्ञाः**' भगवती की आराधना करना। ब्राह्मणों का सदा आदर करना। ये ही क्षत्रियों के रक्षक हैं, कारण हैं।' त्रिशंकु अभिसिक्त हो गये। उधर वानप्रस्थ विधि* से उपाय करके अरुण परमधाम गये। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! शापग्रस्त कुरूप सत्यव्रत माता जगदम्बा के प्रसाद से परमपवित्र एवं धर्मशील हो गया, शापमुक्त हो गया। धर्मपूर्वक शासन करके पुत्र हरिशचन्द्र को युवराज बना त्रिशंकु; 'सशरीर स्वर्ग जाना है' – ऐसी भावना करके वसिष्ठजी से प्रार्थना करने लगा। वसिष्ठजी ने समझाया 'हे नृप! ये उचित शास्त्रीय-नैतिक-संकल्प नहीं है। अतः इसका त्याग करो। स्वर्ग तो प्राणान्त होने पर ही होगा।' वसिष्ठ परम्परारक्षक, मर्यादारक्षक, शास्त्ररक्षक, विद्वान्, शीलवान और तपस्वी महापुरुष हैं; किन्तु त्रिशंकु तो जो चाहता है, उसे पाने का प्रयत्न करने वाला, हठी और महत्वांकाक्षी है। वह बोला, 'तुम यज्ञ करके मुझे सशरीर स्वर्ग नहीं भेजोगे, तो मैं दूसरा आचार्य बनाकर यज्ञ कराऊँगा और स्वर्ग जाऊँगा।' वसिष्ठजी ने फिर शाप दे दिया, 'वेदमार्गोल्लंघक! जाओ! चाण्डाल हो जाओ। धर्ममार्गदूषक! तुमको तो मरकर भी स्वर्ग नहीं मिलेगा।'

---

* राजाओं ने संन्यास नहीं लिया, वानप्रस्थ लिया है। संकेत है – ब्राह्मण संन्यास तक, क्षत्रिय वानप्रस्थ तक, वैश्य-शूद्रबंधु मात्र गृहस्थ में ही रह सकते हैं। आज ब्राह्मण घरों में संन्यास की प्रवृत्ति कलिधर्म का प्रभाव है, शास्त्रीय नहीं है। हाँ है – '**विद्वत्संन्यास**', किन्तु उसमें जब देहाध्यास मिट जायें (मैं सन्यासी हूँ, स्त्री / पुरुष हूँ, मेरा मानापमान है – ये भान भी मिट जाये), तब विद्वत्संन्यास प्राणीमात्र कर सकता है। संन्यास लेने का, पाने का, इकट्ठा करने का नाम नहीं, संन्यास त्यागने का नाम है।

*****************************************************************************

**न ते स्वर्गतिः पाप मृतस्यापि कथञ्चन**

(देवीभागवत ०७.१२.३१)

स्वर्णाभरण लोहे के तथा पत्थर के हो गये, दिव्याम्बर कृष्णाम्बर व मलिन हो गये नीले हो गये, दुर्गंधयुक्त देह हो गया। वृत्ति, प्रवृत्ति, आकृति, प्रकृति बदलकर विकृति में हो गयी। त्रिशंकु बिचारे नगर को त्याग वन में चले गये। वहाँ आत्महनन की वृत्ति को भी त्याग, प्रारब्ध को भोगने लगे। हरिश्चन्द्र ने प्रयत्न किया, किन्तु त्रिशंकु नगर में नहीं आये। हरिश्चन्द्र राजा बने। हे राजन्! सत्यव्रत चाण्डाल तो बन गये, किन्तु भगवती का चिन्तन नहीं त्यागा। उधर अपनी तपस्या पूर्ण करके विश्वामित्र आश्रम पर आये तथा अपनी पत्नी से पूछा, 'देवि भारी दुर्भिक्ष (अकाल) के समय आपने कैसे प्राण रक्षा की थी? क्योंकि इस दुर्भिक्ष के कारण एक दिन मैं भी प्राणरक्षा के लिए एक चाण्डाल के घर में चोर के समान घुसकर कुत्ते का मांस ही खा लिया। यद्यपि उस चाण्डाल ने मुझे ब्राह्मण जानकर स्वयं को निन्द्य अन्त्यज बताया, निषेध किया। ब्राह्मण जाति में जन्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है।

**दुर्लभं खलु मानुष्यं तत्रापि च द्विजन्मता । द्विजत्वे ब्राह्मणत्वञ्च दुर्लभं वेत्सि किं न हि ।।**

(देवीभागवत ०७.१३.२३)

ऐसा भी कहा, किन्तु मैंने तो प्राणों की रक्षार्थ खाकर प्रायश्चित्त करने के पक्ष का आश्रय लेकर खा लिया। हाँ! ये नियम विपत्तिकाल के लिए है, सदा के लिए नहीं। आपत्ति रहित काल में अन्त्यजादि का धन अन्न खाना भयंकर दुर्गति का कारक होता है। और फिर हे श्वपच्! अवर्षण काल के पाप का भागी पर्जन्य होता है।

**अवजर्णेयत्पापं भवति तन्तु पर्जन्यस्य एव भवति । यो न वर्षति पर्जन्यस्तत्तु तस्मै भविष्यति ।।**

(देवीभागवत ०७.१३.२६)

ऐसा कहते ही मूसलाधार वर्षा से पृथ्वी की चिर पिपासा शान्त हो गई। खिल उठी प्राणी की मुस्कान। विश्वामित्र के द्वारा आत्मकथा सुनाने पर विश्वामित्र की पत्नी ने उत्तर दिया, 'हे देव! आपके जाने पर भयंकर दुर्भिक्ष में एक दिन मैं बीच के पुत्र को बेचना चाहती थी, तब तक राजकुमार सत्यव्रत ने (शापदग्ध निर्वासित जीवन जीने वाले) हमारी जैसे-तैसे प्राणरक्षार्थ भोजन की व्यवस्था करने का वचन देकर मुझे वापस कर दिया। भूख से बिलखते बच्चों को प्राणरक्षक पिता समान राजा मिल गया था। हे ऋषे! हमारे ही कारण उनको वसिष्ठ की गाय मारने पर त्रिशंकु होने का गुरुशाप मिला। अब आप संकट में उनकी रक्षा करें।' विश्वामित्र ने जाकर त्रिशंकु की कथा सुन उन्हें सान्त्वना दी।

यज्ञायोजन की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गयी, किन्तु निमन्त्रण पर भी कोई महात्मा नहीं आये। अतः विश्वामित्र ने अपने गायत्री जप के पुण्य से जल-कुशादि लेकर सशरीर स्वर्ग भेजने का संकल्प किया।

**ददौ पुण्यं तदा तस्मै गायत्री जपसम्भवम्**

(देवीभागवत ०७.१४.०६)

'हे राजेन्द्र! मेरे पुण्यबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशुंक उठा और स्वर्ग की ओर चल दिया। उधर इन्द्र ने कहा, 'निन्द्य देहधारी! यहाँ नहीं आ सकता। गोहन्ता, गुरुशाप से दग्ध, द्विजभार्यापहर्रा चाण्डाल यहाँ नहीं आ सकता; अतः नीचे भगा दिया। विश्वामित्र को पुकारता नीचे गिरने लगा, तो विश्वामित्र ने 'ठहरो' (तिष्ठ) कहकर उसे बीच में ही रोककर नूतन स्वर्ग नूतन सृष्टि प्रारम्भ कर दी।

**श्रुत्वा तिष्ठेति होवाच तस्य बचनात् तत्रैव गगने स्थितः।। विधातुं नूतनां सृष्टिं स्वर्ग लोकं द्वितीयकम् ।**

(देवीभागवत ०७.१४.१७-१८)

ऊपर इन्द्र नहीं आने देता, नीचे विश्वामित्र नहीं, बिचारा त्रिशंकु बीच में लटक गया। नीचे आ जाये तो सुख से रह ले। किन्तु 'विश्वामित्र का अपमान' 'नीचे तो नहीं आने दूँगा।' बस .. अहम् ... ... । ऊपर देवता सोचते हैं, 'इस प्रकार हर कोई स्वर्ग में आने लगा तो हमारी क्या विशेषता?' अतः ऊपर स्वर्ग में नहीं आने देंगे। ये भारतीय हैं। क्या पता रास्ता खुल गया, तो लाखों विश्वामित्र ब्राह्मण

***************************************************************************************

तप द्वारा लाखों राजाओं और सेठों को सशरीर स्वर्ग भेजेंगे, राजा और सेठ यहाँ आकर भी राजनीति, कूटनीति, छल-बलनीति करेंगे। न चैन से बैठेंगे। प्याज के छिलकों पर सरकारों को बदलने वाले, मेरी सत्ता को पलट देंगे, तब क्या होगा? अस्तु! बिचारे को न इधर का छोड़ा, न उधर का। त्रिशंकु मारा गया - 'दो हाथियों के संग्राम में, झुण्डों की तरह'।

विश्वामित्र को नयी सृष्टि रचते देख दौड़े-दौड़े इन्द्र आये बोले, 'क्या है ऋषि ये! ऐसा मत करो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करता हूँ, तो ... ...।' विश्वामित्र ने पूछा, 'इच्छा तो है त्रिशंकु स्वर्ग जाने की?' इन्द्र ने 'हाँ' कहा और त्रिशंकु का शरीर दिव्य बनाया तथा स्वर्ग को ले गये, इस शरीर से नहीं ले गये।

**दिव्यदेहं नृपं कृत्वा विमान वरसंस्थितम्**

(देवीभागवत ०७.१४.२३)

उधर हरिश्चन्द्र निःसन्तान चिन्तित रहने लगे। उन्होंने गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से वरुण की उपासना करके एक पुत्ररत्न प्राप्त किया। पर शर्त है, उसी पुत्र से मेरा यजन यदि करोगे तो ही पुत्र होगा।

**यदि त्वं तेन पुत्रेण मां यजेथाऽपि शंकितः । पशुबन्धेन तेनैव ददामि नृपते वरम् ।।**

(देवीभागवत ०७.१४.४५)

हरिश्चन्द्र ने कहा, 'हे देव! अपुत्रत्व का कलंक मिट जावे। बस! मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि उससे तुम्हारा यजन करूँगा।' वर प्राप्त करके राजा राज्य में आये। सौ रानियों में श्रेष्ठ शैव्या ने समय पर पुत्र उत्पन्न किया। दिव्य उत्सव के साथ सारी अयोध्या में आनन्द ही आनन्द हुआ। व्यासजी कहते हैं, 'राजा हरिश्चन्द्र तो पुत्रोत्सवानन्द में डूबे हैं, वरुण विप्र रूप में वहाँ आ गये। अपना परिचय दिया। राजा को उसकी प्रतिज्ञा याद करायी। जैसे ही वरुण की बात को हरिश्चंद्र ने सुना, मुख सूख गया, तालु से जीभ चिपक गयी। वर के समय वरुणदर्शन परमानन्दप्रद था, किन्तु आज वरुण का आना राजा को अच्छा नही लगता। मानव की यही दशा है, भगवान् से प्रार्थना करके प्राप्त वस्तु, व्यक्ति, स्थान को भगवान् को देने में भी काठिन्यानुभव करते है; जबकि गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं -

**तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः**

(गीता ०३.१२)

जो भी प्राप्त है, भगवत्कृपा से प्राप्त है। अतः पहले भगवान को सौंप दें। फिर प्रसाद मानकर अपने प्रयोग में लें। ग्रामीण परम्परा में वृक्ष का प्रथम फल, खेत की पहली सब्जी-धान्य का (अन्न का) पहला भाग, यहाँ तक पुत्रादि को भी पहले-पहले गंगाजी में स्नान कराकर गंगा को सौपने की भावना थी, 'हे माँ! आपकी कृपा से प्राप्त पुत्र आपको सौंपते हैं। अब जहाँ भी रहेगा, आपका ही रहेगा हमारा नहीं।' कितना दिव्य भव्य उदात्त भाव है।

हरिश्चन्द्र बहक गये, बोले, 'देव! अभी तो पैदा हुआ; अतः जननाशौच है, दसवें दिन तो पिता ही शुद्ध होता है। एक मास में माँ शुद्ध होती है, उससे पहले यज्ञ कैसे सम्भव है?'

**पुत्रे जाते दशाहेन कर्मयोग्याभवेत् पिता । मासेन शुद्धयेत् जननी दम्पती तत्र कारणम् ।।**

(देवीभागवत ०७.१५.०९)

हरिश्चन्द्र कहते हैं, 'अब आप ही बताओ! बिना दम्पती के कैसे यज्ञ होगा?' वरुणजी 'फिर आऊँगा' कहकर चले गये। बालक का नामकरण संस्कार हुआ, रोहित नाम रखा। मास पूरा हुआ (दम्पत्ती अब तो शुद्ध हो गया होगा।) वरुण आ गये। वरुण को देखा तो प्राण सूख गये, किन्तु ऊपर से मीठी वाणी में हँसते हुए बोला 'अहोभाग्य! आप पधारे। पवित्र हो गया घर। किन्तु महाराज! बिना दाँत का बालक तो विद्वानों ने निषेध बताया है, अतः दाँत निकलने पर करूँगा।'

**अदन्तो न पशुः श्लाघ्यः इत्याहुर्वेदवादिनः । तस्माद्दन्तोद्भवे तेऽहं करिष्यामि महामखम् ।।**

(देवीभागवत ०७.१५.१९)

बिचारे वरुण चले गये। दाँत निकलने पर फिर आ गये। अबकी बार राजा ने बहाना बनाया 'हे देव! यज्ञ तो मैं अवश्य करूँगा किन्तु इसके मुण्डन संस्कारोपरान्त करूँगा।' वरुण भी विचित्र है, पीछे ही पड़ गये। मानो खाली बैठे हैं, यही काम है। अबकी बार गये तो सही, किन्तु बोले, '**प्रतारयसि मां राजन् पुनः पुनरिदं ब्रुवन्**' तुम मुझे धोखा दे रहे हो। अबकी बार तुमने यज्ञ नहीं किया, तो शाप दे दूँगा। तुम पुत्रस्नेहवश मेरी अवज्ञा कर रहे हो, बार-बार टाल रहे हो। जैसे ही चूडाकरण संस्कार हुआ बस, वरुणदेव आ धमके, 'हे राजन्! यज्ञ करो।' किन्तु हरिश्चन्द्र के पास तो आज भी युक्ति है। जो देवताओं को बहका सकता है, वह क्या नहीं कर सकता? राजा ने कहा, 'महाराज! धर्म (वर्णाश्रमधर्मानुसार) बिना उपवीत संस्कार के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भी शूद्र समान ही होते है। '**संस्कृताश्चा चेत् द्विजाः अन्यथा शूद्रा एव वेदविदो विदन्ति**। राजपुत्र का ग्यारहवें वर्ष में, ब्राह्मण का आठवें वर्ष में, वैश्य बालक का बारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार निश्चित् है। बिना जनेऊ के यज्ञ नहीं, संध्या नहीं, वेद नहीं हो सकते। अतः आप कृपा करो, यज्ञोपवीत् होने दो।'

**राज्ञामेकादशे वर्षे सदोपनयनं स्मृतम् । अष्टमे ब्राह्मणानाञ्च वैश्यानां द्वादशे किल ।।***

(देवीभागवत ०७.१५.३९)

वरुण तो मन मेसोचकर चले गये फिर आने की कहकर। किन्तु ग्यारह वर्ष का लम्बा समय निकल गया बातों-बातों में।

**सुख के साल क्षणभर जैसे, दुःख का क्षण सालों जैसा ।**
**दाता लगता देव सरीखा, लेता नर कालों जैसा ।।**

ग्यारहवाँ वर्ष लगा, यज्ञोपवीत हुआ। वरुण तो आ ही गये। अबकि बार तो वरुण निश्चिन्त हैं कि यज्ञ होगा, किन्तु हरिश्चन्द्र पर उपाय है 'महाराज! बिचारे जीव को अपने उद्धार के लिए भी कुछ कर लेने दो। समावर्तन के समय यज्ञ कर लेंगे। यज्ञ तो करना ही है, वो तो पक्का करूँगा। किसी से कर्जा ले रखा हो और अभी देने का मन नहीं या धन नहीं, तो प्रार्थना फेल होने के बाद का उपाय झगड़ा नहीं है, प्रशंसा है। भरे समाज में उसके माँगने से पहले कहना प्रारम्भ कर दो, 'भाई! ऐसा भला आदमी नहीं देखने में आता। वर्षो से इनके रुपये हैं। आज तक एक बार भी तकादा नहीं किया, मैं इनका ऋणी हूँ, दूँगा तो अवश्य, किस्मत साथ नहीं देती। क्या करूँ भैया! तुमको कहने का अवसर ही नहीं दूँगा, अवश्य दूँगा। विचलित मत होना। बहकावे में मत आना। हमारी घर की बात है।' बिचारा माँगने का मन बनाकर आया होगा तो चुप, प्रशंसा की चासनी चाटता रह जायेगा।

वरुणजी हरिश्चन्द्र के वादों से थक गये थे। फिर भी एक अवसर देकर चले गये। इधर हरिश्चन्द्र भी चिन्तित है; रोहित भी चिन्तित है; कारण जानकर प्राणरक्षार्थ वे वन में चले गये। अब तो राजा को भारी क्लेश हो गया। उस पर वरुण आ गये। वरुणजी को क्लेश है, मेरे पास एक बार आया तो मैंने इसका मान रखा, पुत्रदान किया। ये अधम मुझको छः बार बुला चुका और बहका कर भगा देता है।) हरिश्चन्द्र से कहा, 'करो यज्ञ।' राजा ने कहा, 'महाराज! पुत्र भाग गया अब क्या करूँ?'

**करोमि किं न जाने क्वापि पुत्रो मे गतः**

(देवीभागवत ०७.१५.६०)

वरुण ने विचार किया, 'इसमें मेरा क्या दोष है?' सुनकर वरुण ने शाप दिया, 'जाओ! जलोदररोग से पीडित हो जाओ।'

**तस्मात् जलोदरो व्याधिः त्वां तुदत्वनिदारुणः**

(देवीभागवत ०७.१५.६४)

वरुण चले गये। पर बिचारे पुत्राकांक्षी, पुत्ररक्षक, पुत्रमोही, हरिश्चन्द्र की दशा खराब है।

---

* यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की उम्र बताई, किन्तु शूद्र या स्त्री की अवस्था नहीं कही। अतः सिद्ध होता है कि माताओं का जनेऊ व शूद्र बन्धुओं का जनेऊ अशास्त्रीय मनमाना अनाचार है। इसका कुपरिणाम देश भोग रहा है। जनेऊ के बिना संध्या नहीं कर सकते, वेद नहीं पढ़ सकते, यज्ञ-हवन नहीं कर सकते। अतः शास्त्र विश्व कल्याण की भावना से ही माताओं व शूद्र भाइयों को वेदाध्ययन का व होमादि कार्यों का निषेध करता है। जनसामान्य को विशाल पावर वाले बिजली तार से बचाना पाप या पक्षपात नहीं हितकर है।

*******************************************************************************************

**दवा ज्यों बढ़ी रोग बढ़ता गया, सवेरे के सूरज सा चढ़ता गया ।**

**ब्रह्म सत्य के चिन्तन में रत वो रहा, फिर भी शोक सिन्धु में राजा पड़ता गया ।**

एक वर्ष बाद उधर रोहित को पता चला कि पिताजी को जलोदर हो गया, तो वह दर्शनार्थ आने लगा। इन्द्र ने निषेध कर दिया, 'अरे, रोहित! संसारी प्राणी प्राण की रक्षा के लिए पुत्र, कलत्र, मित्र, भृत्य तक को दाँव पर लगा देता है, देखो! तुम्हारे पिता अपने रोग की शान्ति के लिए तुम्हें नरमेध द्वारा बलिदान करने को तैयार हैं। इन्द्र के कहने पर रोहित नहीं गया। फिर एक वर्ष वन में रहा। फिर चलने का मन बनाया, तो विप्र वेषधारी इन्द्र फिर आ गये। फिर मना कर दिया गया। बार-बार ऐसा ही हुआ। रोहित जाना चाहे, इन्द्रदेव रोक दें। हरिश्चन्द्र ने अत्यन्त पीड़ित हो, गुरु वसिष्ठजी से उपाय पूछा तो वसिष्ठजी ने दशविध पुत्र बताये। 'राजन्! क्रीतपुत्र द्वारा भी यजन किया जा सकता है।'

**पुत्राः दशविधाः प्रोक्ता ब्राह्मणैः वेदपारगैः**

(देवीभागवत ०७.१६.१५)

द्विजपुत्र ही खरीदा गया। परोद्धारकर्ता (परमार्थ-परार्थ) ब्राह्मण में ही ब्रह्माजी ने स्थापित की। अजीगर्त ऋषि के पुत्र शुनःशेप को ले लिया। शुनःपुच्छ, शुनःशेप, शुनःलांगूल - इन तीनों में से ज्येष्ठ पिण्डाधिकारी होने से पिता ने नहीं बेचा, छोटा माता ने नहीं बेचने दिया। बिचारा बचा बीच का, उसे लेकर सौ गाय अजीगर्त को दे दीं तथा यज्ञीय यूप से बाँध दिया। किन्तु द्रवित जल्लाद ने उसे नहीं मारा। किन्तु हाय रे लोभ! अजीगर्त ने कहा, 'मुझे दो गुणा (दुगना) धन दो, तो मैं ही वध कर दूँगा।'

**वेतनं द्विगुणं देहि हनिष्यामि पशुं किल्**

जनता 'हाय-हाय' करने लगी। शुनःशेप भी रोने लगा। धिक्कार है इस विप्र पिता रूप कसाई को, जो लोभवश पुत्रवध में प्रवृत्त हो रहा है। विश्वामित्र से नहीं रहा गया, वे बोले 'हे राजन्!

**दया सम है पुण्य नहीं, हिंसा सम नहीं पाप ।**

**आत्मत्राण के कारजे, पर मारण अभिशाप ।।**

**दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसा समं नहि । आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेह निकृन्तनम् ।।**

(देवीभागवत ०७.१६.३९)

भगवान् की प्रसन्नता के लिए तो दया व पर-सन्तुष्टि ही हेतु है।

**दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टो येन केच्च च । सर्वेन्द्रियोपशान्ता च तुष्यत्याशु जगत्पतिः ।।**

(भागवत ०४.३१.१९)

आप इस विप्रबालक को छोड़ दें और पुत्र विक्रेता, विधर्मी, पापी अजीगर्त को धर्मरक्षार्थ दण्ड दें। मैंने चाण्डाल होने पर भी तुम्हारे पिता को स्वर्ग भेजा। उसी उपकार का स्मरण करके इसे छोड़ दें। ये याचक रोता हुआ प्राणों की भीख माँग रहा है। किन्तु हरिश्चन्द्र ने एक न सुनी। फलतः वे क्षुब्ध हो गये। करुणापरायण विश्वामित्र ने शुनःशेप को वरुणमन्त्र का उपदेश किया। जिसके जपने से शुनःशेप के प्राण बचे। हरिश्चन्द्र ने भी क्षमा माँगी, 'प्रभो! पुत्रार्थी होने से बार-बार मोहवश अज्ञान के कारण आपको टालता रहा था। न जाने अब वह कहाँ गया, पता नहीं चला।' वरुण ने कहा, 'पहले तो तुम इस आर्त शुनःशेप को मुक्त करो। मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा रोग ठीक हो जायेगा। यज्ञान्त में शुनःशेप ने विद्वान् ऋषियों सभासदों से पूछा कि मैं किसका पुत्र हूँ? शास्त्रानुसार निर्णय करके बताएँ।' कोई कहे अजीगर्त का पुत्र है (वीर्यज होने से)। वामदेव ने कहा, 'नहीं, जिसने इसे खरीदा उसका पुत्र है (क्रीतज) या वरुण द्वारा रक्षित होने से वरुणपुत्र है। पिता पञ्चविध होते हैं।

**अन्नदाता भयत्राता तथा विद्या प्रदश्च यः । वित्तप्रदश्च जन्मदाता पञ्चैते पितरः स्मृतः ।।**

(देवीभागवत ०७.१७.२७)

*************************************************************************************

भयत्राता होने से वरुणपुत्र है। परस्पर अनिर्णय दशा में वसिष्ठजी ने कहा, 'शुनःशेप को बेचते ही ये अजीगर्त का पुत्र नहीं रहा; हरिश्चन्द्र ने आत्मरक्षार्थ इसका बलि संकल्प किया, अतः हरिश्चन्द्र का पुत्र नहीं रहा; प्रार्थना पर बन्धन मुक्त किया, अतः वरुण पुत्र भी नहीं है, क्योंकि स्तुति करने पर तो देवता किसी को भी धन, राज्य, जीवन दे ही सकते है। वास्तव में तो इसके पिता विश्वामित्र ही हैं, उन्होंने ही इसकी रक्षा की है।'

**कौशिकस्य सुतश्चायं अरिष्टे येन रक्षितः**

(देवीभागवत ०७.१७.३४)

सभी ने वसिष्ठ के विचार की प्रशंसा की तथा विश्वामित्रजी ने पुत्र रूप में अंगीकार करके निर्गमन किया। स्थितियाँ बदलीं और स्वस्थ पिता के दर्शनार्थ रोहित आ गया। स्वागत सत्कार किया। स्वास्थ्य, सपूत, सम्पत्ति, सौभाग्य पाकर राजा हर्षित है। अतः राजसूययज्ञ किया तथा वसिष्ठ का दान-मान से विशेष सम्मान किया।

एक दिन देवलोक में विश्वामित्र व वसिष्ठ समान आसन पर बैठे थे। वसिष्ठ की पूजा में कुछ वैशिष्ट्य था, अतः विश्वामित्र ने पूछा, 'ऋषे! इतना सामान, इतनी पूजा, इतना सम्मान कहाँ पाये। वसिष्ठ ने कहा, 'मेरा यजमान हरिश्चंद्र दुनिया में श्रेष्ठ धर्मनिष्ठ है। उनके-जैसा सत्यवादी धार्मिक व्यक्ति दूसरा नहीं। मैं सत्य कह रहा हूँ। उसी ने आदर किया है, वैसा राजा न हुआ न होगा।'

**हरिश्चन्द्र समो राजा न भूतो न भविष्यति । सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः ।।**

(देवीभागवत ०७.१७.५३)

सुनते ही क्रोधपूर्वक विश्वामित्रजी बोले, 'अरे ऋषे! तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं है। ऐसा धूर्त अधर्मी, स्वार्थी, ब्रह्मघाती दूसरा राजा नहीं होगा। आओ! हम दोनों अपने उपार्जित पुण्य की शर्त रखते हैं। यदि मैंने हरिश्चन्द्र को झूठा, अदानी, दुष्ट सिद्ध किया तो आपका पुण्य नष्ट; यदि नहीं कर सका तो मेरा पुण्य नष्ट।'

**आजन्म संचितं सर्वपुण्यं मम विनश्यतु । अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे ।।**

(देवीभागवत ०७.१७.५८)

व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! एक बार हरिश्चन्द्रजी मृगयार्थ वन में गये। वहाँ एक युवती को रोते देख उससे रोने का कारण पूछा और सान्त्वना दी। युवती ने कहा, 'राजन्! मैं कामना हूँ। विश्वमित्र मेरे लिए ही तप करके क्लेश पहुँचाते हैं।' राजा ने विश्वामित्रजी से कहा, 'हे ऋषे! राज्य में इतना कठोर तप उचित नहीं, जिससे किसी को पीड़ा हो। आप ये तप न करें। विश्वामित्रजी ने राजाज्ञा मान तो ली, किन्तु क्रोधवश बदला लेने का भाव बना रहा। एक दिन विश्वामित्रजी ने मित्र दानव को सूकर बनाकर हरिश्चन्द्र के उपवन को उजड़वा दिया। रक्षक सैनिक '**त्राहि माम्!**' '**त्राहि माम्!**' करते राजा के पास पहुँचे। राजा ने धनुष-बाण लिये, चल दिये। आगे सूकर, पीछे राजा। शतधा प्रयत्न करने पर भी बात नही बनी। मायावी सूकर नहीं मरा। दोपहर तक भूखे-प्यासे निर्जन वन में पहुँच गये। 'मार्ग का पता नही, सूकर का पता नहीं, भोजन पानी का ठिकाना नहीं, कोई सहायक नहीं, अब क्या करूँ?' राजा सोचने लगे। फिर एक नदी में जल पिया व घोड़े को पिलाया। तभी वृद्ध ब्राह्मण बनकर विश्वामित्रजी आ गये। राजा ने प्रणाम किया तो विप्र ने पूछा, 'राजन्! यहाँ कैसे?' सारी कथा राजा ने ब्राह्मण को सुनाई तथा अपना परिचय भी दिया। फिर कहा, 'मैं इस समय राजसूययज्ञ में दीक्षित हूँ। आप अयोध्या आकर जो चाहें ले लेना।' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! विश्वामित्र ने राजा से स्नानोपरान्त तर्पण-दान भी कराया, 'हे राजन्! जो तीर्थ में आकर बिना स्नान व बिना दान के चले जाते हैं, वे आत्महा कहलाते हैं।

**प्राप्यतीर्थं महापुण्यं अस्नात्वा यस्तु गच्छति । स भवेत् आत्महा भूप! इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।।**

(देवीभागवत ०७.१९.१४)

स्नानादि के उपरान्त राजा ने कहा, 'हे विप्र! हम पर आपको धन-भूमि-स्वर्ग कुछ भी अदेय नहीं है, जो आप प्राप्त कर लें।'

विप्र ने कहा, 'हे राजन्! आप अत्यन्त उदार हैं। मैने सुना है अधिक कुछ तो नहीं, हाँ, पुत्र विवाह की समस्या है। और गान्धर्वी

*****************************************************************************************

माया से एक बालक, बालिका (दस वर्षीया बालिका) ...' और वेदी स्थापित कर दी। 'हे राजन्! विप्रपुत्र का विवाह कराने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है।'

**राजसूयाधिकं पुण्यं गृहस्थस्य विवाहतः**

(देवीभागवत ०७.१९.१९)

दान देने का वचन देकर विश्वामित्र से मार्ग जान हरिश्चन्द्र चले गये। विवाह यज्ञ वेदी पर वर के लिए विश्वामित्र ने '**सपरिच्छद ससैन्य साम्राज्य**' माँग लिया। इधर राजा ने 'दे दिया' कह दिया।

**राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम्**

(देवीभागवत ०७.१९.२५)

विश्वामित्र ने कहा, 'राजन्! राज्यदान की सांगता सिद्धि के लिए दक्षिणा भी दो, क्योंकि 'बिना दक्षिणा का दान व्यर्थ है।' ऐसा मनुजी कहते है –

**दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत्**

(देवीभागवत ०७.१९.२८)

'ढाई भार स्वर्ण दक्षिणा दो।' राजा ने 'अस्तु' कहकर स्वीकार किया तथा घर की ओर चल दिया। 'अरे! इस विप्र ने ठग लिया। ये क्या हो गया? मेरा सर्वस्व चला गया।' चिन्ताधिग्रस्त घर पहुँचे। शैव्या के बार-बार पूछने पर भी बोल नहीं पाते। न भोजन किया, न नींद ही आयी। प्रातःकाल ही आ गये बाबा विश्वाामित्र ... ...। बोले, 'दो दक्षिणा तथा राज्य। अब ममता छोड़कर अपनी सत्यवादिता प्रमाणित करो! अन्यथा ... ... ...।' राजा ने कहा, 'ऋषे! राज्य तो आपका हो गया। आप चिन्ता न करें। मैं दक्षिणा धन आते ही दे दूँगा' और सारी प्रजा के रोते, चीत्कार करते सपत्नीक हरिश्चन्द्र राज्य छोड़ वन की ओर चले। बालक रोहित की दशा नाजुक है क्या हो गया, अरे! धिक्कार है ऐसे अधम ब्राह्मण को, जो परिवार को नष्ट कर दान लेना चाहता है। विश्वामित्र ने कठोरतापूर्वक कहा, 'हे राजन्! या तो दक्षिणा दो या नहीं दे दे सकता कह दो! बस। तुम्हें लोभ हो, तो अब भी अपना राज्य ले लो या फिर दक्षिणा दो।' राजा ने आँखों में आँसू भरकर क्षमा माँगते हुए कहा, 'हे ऋषि! मै दक्षिणा अवश्य दूँगा।' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! हरिश्चन्द्र ने प्रतिज्ञा कर ली 'जब तक तुम्हें दक्षिणा नहीं दूँगा, तब तक अन्न ग्रहण नहीं करूँगा।'

**अदत्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम्**

'मैं अपने पवित्र वंश की और इसकी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए कुछ भी करूँगा। पत्नी पुत्र को बेचकर भी दक्षिणा अवश्य दूँगा।' विश्वामित्र ने कहा, 'भाई! मना कर दो, मै तुम्हें छोड़ दूँगा।' विश्वामित्र तो मात्र इसलिए कड़ी से कड़ी परीक्षा ले रहे हैं कि कैसे भी ये वचन से पीछे हटे, तो मेरी विजय हो और वसिष्ठजी पराजित हो जायें। उनकी तपस्या नष्ट हो जाये। किन्तु हरिश्चन्द्र ने शिवावास दिव्यपुरी काशी में जाकर गंगास्नान-तर्पण-देवार्चन किया। मास पूर्ण होने पर भी दक्षिणा नहीं दे सके तो विश्वामित्र ने कहा, 'राजन्! झूठ बोलना तो आपकी पुरानी आदत है। वरुण को भी वर्षो बहकाया। अब मुझे बहका रहे हो। लाओ दक्षिणा या मना करो। अन्यथा शाप देता हूँ।'

**पूर्णः स मासो भद्रन्ते दीयतां मम दक्षिणा**

(देवीभागवत ०७.२०.२१)

हरिश्चन्द्र ने कहा, 'हे महर्षे! मैं, मेरा पुत्र, पत्नी; सब आपके सेवक हैं, चाहे जिसे स्वीकार कर लो।' ऋषि ने अस्वीकार कर दिया। जब ऋषि नहीं माने तो राजा ने कहा, 'महाराज! अभी तो आधा दिन शेष है; मैं अवश्य दक्षिणा दूँगा।' हरिश्चन्द्र विक्रयार्थ काशीजी गये। शोककुल क्या करे बिचारा? याचना तो राजा का धर्म ही नहीं। बिना दक्षिणा दिये मरा तो कृमि या प्रेत बनना पड़ेगा।

**यदि दक्षिणां अप्रदाय प्राणान्वि मुञ्चामि तदा । ब्राह्मस्वहा कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः ।**

*************************************************************************************

**प्रेततां यास्ये वरं एवात्मविक्रयः ।।**

(देवीभागवत ०७.२०.२७)

शैव्या ने चिन्तातुर राजा को धर्मानुरूप धर्मपत्नी होने को सिद्ध करते हुए सहारा दिया, 'हे नाथ! सुख-दुःख तो अनित्य हैं। मनुष्य को चाहिए कि सर्वथा, सर्वदा और सर्वविध भाव से धर्म का आचरण करे। सत्य बोले क्योंकि असत्यवादी प्राणी का दान, धर्म, तप, योग और ज्ञान व्यर्थ होता है। चिन्ता छोड़ो, धर्म का पालन करो।'

**त्यज चिन्तां महाराज स्वधर्ममनुपालय ।**

**अग्निहोत्रं-अधीतञ्च-दानाधाः सकला क्रियाः । भवन्ति तस्य नैफल्य वाक्यं यस्य अनृतं भवेत् ।।**

(देवीभागवत ०७.२०.३१)

राजा कहता है, 'मैं बिक जाऊँ।' शैव्या कहती है 'नही, नही, नाथ! धर्मरक्षा के लिए पहले मै हूँ। नारी का नारीत्व पुत्रोत्पादनानन्तर पूर्ण हो जाता है। मेरा जीवन सफल हो गया। आप मुझे बेचकर धर्म की और सत्य की रक्षा के लिए दक्षिणा प्रदान करें।' राजा ने जैसे ही शैव्या के मुख से सुना, अचेत हो गया, हाय! मुझ अभागे को ये दिन भी देखना था। ये शब्द भी सुनना था? मैं मर क्यों नहीं गया। राजा के अचेत होने पर रानी भी अचेत हो गयी। भूख से बिलखता बिचारा रोहित कहता, 'माँ! मुझे भूख लगी है। पिताजी! अन्न दो।'

**तात् तात् प्रदेहचभं मातर्मे देहि भोजनम्**

(देवीभागवत ०७.२०.४६)

इस दारुणावस्था में क्रूर ऋषि विश्वामित्र आ ही गये बोले, 'दो दक्षिणा!' अचेत को अर्थात मरणासन्न को जल के छींटे से सचेत करते और दक्षिणा माँगते है। निर्दयता, कठोरता, स्वार्थ-परायणता की पराकाष्ठा है। अरे राजन्!

**सत्य से तपता सूरज, सत्य पर पृथ्वी टिकी । सत्य से ही धर्म चलता, सत्य पर मुक्ति टिकी ।।**

**सत अश्वमेध चाहे रहे पर सत्य से कम ही रहे । सत्यव्रत की रक्षा में सज्जन बहु दुख हैं सहते रहे ।।**

'आज दक्षिणा दो या मना करो! अन्यथा आज का सूर्यास्त तुम्हारे अभिशाप का पैगाम लायेगा।' राजा तो छटपटाने लगा, तभी एक तपस्वी ब्राह्मण आये अपने समुदाय सहित शैव्या ने राजा से कहा, 'महाराज! ब्राह्मण तो शेष तीनों वर्णो का पिता है और पिता के धन पर पुत्र का अधिकार होता ही है। इस तथ्य के आधार पर चाहें तो कुछ धन माँग ही लें।'

**त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण उच्यते**

(देवीभागवत ०७.२१.१३)

किन्तु राजा ने कहा, 'नहीं! नहीं! देवि! मर जाऊँगा। मगर माँगूँगा नहीं, भीख नहीं माँग सकता, चाहे जो भी हो। भिक्षा पर प्रजागुरु ब्राह्मण का ही अधिकार है। - '**गुरुर्हि विप्रो वर्णानां पूजनीयोस्ति सर्वदा**'। मैं तो दाता हूँ, प्रतिग्रहीता नहीं। अतः भले ही जीभ के दो टुकड़े हो जाएँ, किन्तु 'दीजिए' ये शब्द नहीं कह सकता। चाहे काल कैसी भी परीक्षा ले ले, मैं धर्म से पीछे नहीं हटूँगा।' शैव्या की बात नहीं मानी तो धर्ममय जीवन जीने वाली शैव्या ने कहा, 'स्वामी! मैं तो याचना कर सकती हूँ।' किन्तु राजा रोते रहे। 'हाय! मैं अधमाधम प्राणी हूँ; जो आज विपत्ति का मारा, अपनी पत्नी को बेच रहा हूँ। हे सज्जनों! मैं आज अपनी पत्नी को दासी रूप में बेचता हूँ। कोई खरीददार हो तो खरीद लो मुझे चाहे कोई राक्षस समझो, पिशाच समझो, अधर्मी समझो, निर्दयी समझो। किन्तु हाँ! मैं अपनी पत्नी को ऋण उतारने के लिए बेच रहा हूँ।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! तभी विश्वाामित्र वेष बदलकर आ गये तथा दासी रूप में शैव्या को खरीद लिया। आज साम्राज्ञी 'दासी' बन गयी, 'वाह! रे काल! तेरी लीला'। श्रेष्ठ पुरुष की कीमत दस करोड़ मुद्रा, श्रेष्ठा स्त्री की कीमत एक करोड़ मुद्रा। धन देकर केश खींचकर शैव्या को ले चला। स्त्री का अपमान नहीं, अपितु मात्र हरिश्चन्द्र की धर्म परीक्षा है। यदि विश्वामित्र राजा को नहीं विचलित कर सके, तो सारा तप नष्ट हो जायेगा - '**केशेषुधृत्वा राज्ञीम कर्षयत्**'। बिचारी

शैव्या ने कहा, 'भद्र! एक क्षण तो छोड़ो। मैं जी भरकर अपने पुत्र को अन्तिम बार देख तो लूँ।' जैसे ही रोहित मैया की ओर दौड़ा। मैया शैव्या ने कहा, 'राजपुत्र! अब तो मैं दासी हूँ। मुझे मत छुओ।' किन्तु सज्जनों! बेटा क्या जाने 'माँ! रानी या दासी' वह तो मात्र माँ जानता है। माँ के आँचल की छाया में आकर बालक स्वयं को सुरक्षित समझता है। उसके सारे भय दूर हो जाते हैं। जैसे ही रोहित ने माँ की साड़ी पकड़ी, उस ब्राह्मण ने रोहित को खूब पीटा।

**तमागतं द्विजः क्रोधात् बलमभ्याहनत्तदा**

(देवीभागवत ०७.२२.१९)

फिर भी बालक ने माँ का आँचल नहीं छोड़ा। शैव्या ने स्वामी ब्राह्मण से प्रार्थना की, 'हे भद्र! मेरे पुत्र को भी खरीद लो। एक माँ भीख माँगती है, अपने पुत्र की। विप्र! खरीद लो मेरे पुत्र को। इसका मुख देखकर ही मै अपने दुःख को भूल जाया करूँगी।' विप्र ने रोहित को खरीद लिया। चलते समय शैव्या ने राजा की प्रदक्षिणा की। घुटनों के बल बैठकर प्रणाम किया - '**जानुभ्यां प्रणता स्थिता**' तथा बोली, 'यदि मैंने कोई भी पुण्य किया हो (दान, यज्ञ, तप, व्रत, ब्राह्मण-तृप्ति) तो मेरे पति हरिश्चन्द्र ही होंवे।' और चल दी। राजा तो विक्षिप्त से बिलखने लगे। उन्हीं के सामने उनकी पत्नी व पुत्र को कौड़ा मारते हुए ब्राह्मण ले गया। वे विक्षिप्त से होकर सोचने लगे, 'हा! मुझ अनार्य को धिक्कार है। ये दिन देखने से पहले मैं मर क्यों न गया। विश्वामित्र आ धमके और बोले, 'दक्षिणा दो!' राजा ने कहा, 'ले लो महाराज! दक्षिणा।' विश्वामित्र ने कहा, 'राजन्! मैं पवित्र धन ही दक्षिण में लेता हूँ। ग्यारह करोड़ मुद्राएँ मेरी दक्षिणा कम है और दो।' राजा ने कहा, 'महाराज! अभी दिन भी शेष है, मैं भी बिकने से बचा हूँ। आपकी दक्षिणा अवश्य दूँगा।' साक्षात् धर्म चाण्डाल बनकर आ गये ... विकराल दुर्गन्धयुक्त देह, धर्मश्चाण्डालरूप धृक् कुवस्त्रधारी उस डोम को देखकर घृणा होने लगे। किन्तु 'हाय रे दैव! आज अयोध्याधिपति एक डोम के सेवक बनकर श्मशान की चौकीदारी करते हैं। मृतक का कफन उतारते हैं।'

विश्वामित्र ने भय दिखाया, 'यदि राजन्! तुम अभी बिककर दक्षिणा नहीं दोगे, तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा।' विश्वामित्र व वरुण - दोनों की एक राशि, दोनों हरिश्चन्द्र के पीछे पड़े हैं। 'मैं नहीं जानता ... ...। कुछ भी हो! सूर्यास्त से पूर्व ही दक्षिणा दे दो।' हरिश्चन्द्र ने कहा, 'महर्षे! मुझे अपनी सेवा में रख लो, किन्तु डोम का दास न बनाओ। नाथ! कृपा करो।' विश्वामित्र ने कहा, 'ठीक है! तुम मेरे सेवक हो गये, अब मेरी आज्ञा मानो।' विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को अपना सेवक बनाकर धन के बदले डोम को बेच दिया।

**गृहाण दासं मौल्येन मयादत्तं तवाऽधुना**

(देवीभागवत ०७.२३.२७)

चाण्डाल ने कहा, 'बदले में प्रयाग के भूमण्डल को रत्नमय बनाकर देता हूँ तथा रत्नादि प्रदान किये। आकाशवाणी ने घोषणा की, 'राजन्! तुम ऋणमुक्त हुए और पुष्पवर्षा हुई। विश्वामित्र ने राजा को आदेश दिया, 'हे राजन्! चाण्डाल की आज्ञा का पालन करना।'

## श्मशान में आवाज, घोर परीक्षा रोहित को डसा सर्प ने, राजा-रानी का परस्पराभिज्ञान, हरिश्चद्र को मिला सप्रजा स्वर्ग, शताक्षीदेवी-चरित्र और दुर्गम दैत्य, शक्ति बिना शून्य शिव-विष्णु, दक्ष पुत्री बनी शिवा, तारकासुर से पीड़ित देवों ने की स्तुति, शिवा देवकृत स्तुति से प्रसन्न, हिमालय ने भी तप किया, शिवा ने हिमालय को उपदेश दिया

'हे जनमेजय! डोम ने लाठी से मारकर उसे कारागार में डाल दिया। अन्न-जल बिना शोकसन्तप्त पुत्र व पत्नी की स्मृति में राजा घुलता रहा। 'हाय! कभी रानी नहीं जान पायेगी कि 'चाण्डाल का सेवक है उसका स्वामी।' कैसी दुर्भाग्य की आँधी से सब नष्ट हो गया। राज्य गया, रानी गयी, पुत्र गया, मान गया, सुख गया, शान्ति गयी, मैं परतन्त्र हो गया।' पाँचवें दिन डोम ने राजा को जेल से निकाला और आदेश दिया, 'जाओ! श्मशान। कफन लेना, ध्यान रहे बिना कर (टैक्स) के कोई शव न जले।' भयंकर दुर्गन्धमय वातावरण जलती चिताएँ, अधजली लाशें, रोते-चीखते परिजन, सियार-कुत्ते, साँय-साँय करती प्रेतों की आवाजें। श्मशान में रहते

***********************************************************************************

काले हो गये, कृश हो गये। चाण्डाल-जैसा ही रूप हो गया। मुर्दों के पिण्डदान से ही भूख मिटा लें। रात-दिन 'हाय-हाय' करते वर्ष भर सौ वर्ष के समान बीता।'

'उधर एक दिन रोहित क्रीडार्थ जंगल में गया। स्वामी की प्रीति के लिए वह कुशा व समिधाएँ लेकर घर की ओर चला। प्यास लगने तथा थकने से उसने बाँबीं के पास बोझ उतार दिया, जल पिया, विश्राम का प्रयास करने लगा। जैसे ही विश्राम करने का प्रयास किया, वैसे ही बोझ से दबने वाले काले सर्प ने डस लिया। विश्वामित्र की आज्ञा जो थी।'

**विश्वामित्रज्ञया तावत्कृष्ण सर्पोभयावहः**

(देवीभागवत ०७.२५.०७)

'रोहित के प्राणान्त हो गये। शैव्या को पता चला, तो सुनते ही पछाड़ खाकर गिर पड़ी। मानो कदली वृक्ष जड़ से कटकर गिरा हो। 'ब्राह्मण इतना क्रूर है' - जल छिड़ककर चेतन करके बोला, 'अरे दुष्टो ! सायंकालीन क्रंदन अनिष्ट सूचक होता है।'

**अलक्ष्मी कारकं निन्द्यं जानती त्वं निशामुखे । रोदनं कुरुषे दुष्टे लज्जा ते हृदये न किम् ।।**

(देवीभागवत ०७.२५.१३ )

'रोने से आँखें सूज गयीं, बाल बिखर गये, वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। दुनिया उजड़ गयी। मेरे लाल ! तेरा मुख देखकर जीती थी। अपमान के, तिरस्कार के, अन्याय के, दुःख के आँसू पीती थी। अब तेरे बिना मेरा सहारा क्या है?' उधर निर्दयी ब्राह्मण उसे डाँट रहा है, 'पापिनी ! सब तेरे पापों का फल हैं। भोग तू ! पर मेरा काम न बिगाड़। दास का पहला धर्म स्वामी का कार्य है, उसको पूरा कर।' (कोई दासी को रोने से रोक सकता है, किन्तु माता को नहीं रोक सकता। शरीर पर उसका वश चल सकता है; किंतु मन पर, ममता पर, वात्सल्य पर, आँसुओं पर उसका या स्वामी का क्या वश?) साहस करके बिचारी शैव्या ने कहा, 'भद्र ! मेरा पुत्र सर्प ने काट लिया। उसको देख लूँ तो चैन आवे, एक नजर उसे देख लूँ।' किन्तु ब्राह्मण तो रौरव नरक का भय दिखाकर उसे डाँट रहा है, 'तेरे पुत्र से मुझे क्या? रोना पीछे, पहले घर का कार्य करे। नहीं मानेगी तो कोड़े मारकर तेरी खाल उधेड़ दूँगा।'

**किं न जानासि मे क्रोधं कशाघात फलप्रदम् ।। अर्धरात्रो गतस्तस्याः पादाभ्यंगादिकर्मणा ।**

(देवीभागवत ०७.२५.२७-२८)

सफाई, पैर दबाना, मालिश करना, आदि में आधी रात बीत गयी। अब जाकर क्रूरता की प्रतिमूर्ति, कालसम विप्र ने कहा, 'जा ! अन्तिम संस्कार करके जल्दी आ। जा ! नहीं तो प्रातःकाल का कार्य बिगड़ जाएगा। बिचारी एकाकी आधी रात में अनजाने पथ पर पुत्र को खोज रही है काशी की गली-गली में, डगर-डगर में भटकती ममता ,पर शिव की समता भी कृपा नहीं करती। अन्ततः ममता ने पुत्र को खोज ही लिया। (कहाँ तो राजकुमार कहाँ ... ... ... ...) आज दीन, हीन, भिखारी के जैसे जमीन पर मृत पड़ा है। 'हाय-हाय' करके शैव्या ने रोना प्रारम्भ किया, 'हे पुत्र ! आज माँ कहकर क्यों नहीं बुलाता, देख ! मैं आ गयी हूँ। बैठ तो सही ! बेटा ! तू थक गया है ना ..., अच्छा ! आज मैंने कुछ खिलाया नहीं ..., अतः तू भूखा ही सो गया। अच्छा ... ! नाराज है मुझसे। मैंने आने मे देर कर दी बेटा ! पर पुत्र तू तो जानता है ना, दासी स्वतन्त्र नहीं होती, क्या करती मैं?'

जब नहीं उठा, तो दहाड़ मारकर रानी रोने लगी। उसके क्रन्दन ने नगर की शान्ति के सीने को चीरकर, उसपर दुःख के हस्ताक्षर कर दिये। कभी अचेत हो जाती, कभी सचेत होकर फिर रोने लगती। भयानक आवाजें, भयंकर 'साँय-साँय' की ध्वनि, डाकिनियों, साकिनियों की भयंकर आवाजें, कुत्तों का भौकना, कभी-कभी पहरेदारों की सावधान करतीं आवाजें आ जाती। रानी कहती है, 'बेटा ! आज तूने, ज्योतिष तथा ज्योतिर्विदों को झूठा कर दिया। वे कहते थे कि तू राजा बनेगा। हे अयोध्यानरेश ! राजेन्द्र ! एक बार अपने उस देवोपम पुत्र की दशा देख लो; जो चन्दनचर्चित रहता था, आज धूल-धूसरित है मक्खियाँ भिनभिनाती हैं। सिपाही व पहरेदारों की शैव्या के रोदन से आँखें खुलीं। वे दौड़े आये। उन्होंने पति व पुत्र का पता पूछा, किन्तु बिचारी शोकवश उत्तर ही न दे सकी।

विचित्र वेश, बिखरे बाल, सूजे हुए लाल-लाल नेत्र, विकराल-सा मुख देखकर सिपाहियों की कँपकँपी बँध गयी। आधी रात में भयावना चित्र देखकर सोचा ये तो पिशाचिनी है, बालक को मारकर खाने आयी है; अतः इसे मार डालो। ये कोई कुलीन स्त्री

********************************************************************************

होती तो क्या अकेली होती? इतनी रात में ... ...!' और केश पकड़ लिये घसीटते हुए चाण्डाल के पास उसके घर ले गये। बोले, 'महाराज! ये बालघातिनी है, राक्षसी है।' चाण्डाल ने कहा, 'अरे हाँ! इसकी चर्चा तो सुनी थी बहुत, पर आज देख लिया है। यह बच्चों को खा जाती है, पिशाचिनी है। इसका तो वध ही उचित है क्योंकि जो नर, द्विज, स्त्री, बाल, गौघाती हो, स्वर्ण चोरी-कर्ता हो, आग लगाता हो, काँटे लगाकर रास्ता रोकता हो, शराब पीता हो, गुरु-शय्या पर सोता हो, सज्जनों का विरोधी, दुर्जनों का समर्थक हो, उसका वध करने में पाप नहीं, पुण्य ही होता है। चाहे वह द्विज हो या द्विज की स्त्री ही क्यों न हो।'

**द्विज-स्त्री-बाल-गोघाती-स्वर्णस्तेयी च यो नरः । अग्निदो वर्त्म घाती च मद्यपो गुरुतल्पगः ।।**
**महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदोवधः । द्विजस्यापि स्त्रियोतापि न दोषो विद्यते वधे ।।**

रानी को रस्सियों से बाँध दिया गया तथा केश पकड़कर खूब पीटा। सेवक हरिश्चन्द्र को बुलाकर कहा, 'मेरी आज्ञा है, इसे बिना विचारे ही मार डालो।' किन्तु धर्मशील स्त्रीवधाशंका से काँपते हुए (निषेध करते हुए) पीछे हट गया, 'नहीं-नहीं! ये नहीं कर सकता। कोई और कार्य बताओ स्वामी!' चाण्डाल ने कहा, 'रोटी मेरी खाता है और भाषण शास्त्रों के देता है। मार तुरन्त! दास का धर्म है, स्वामी की आज्ञा-पालन मार डाल इसे।' किन्तु हरिश्चन्द्र ने कहा, 'आप चाहें तो मैं इन्द्र को परास्त करके उसकी सम्पत्ति तुम्हें सौप सकता हूँ। (भूमण्डल की सम्पत्ति तो छोड़ो ही) किन्तु स्त्रीवध नहीं कर सकता।' किन्तु भीम डोम ने दासधर्म तथा नरक भय दिखाकर हरिश्चन्द्र को तलवार दे दी और कठोर स्वर में बोला 'मार डाल इस बालघातिनी को।'

'हे राजन्! आज भारी परीक्षा के क्षण हैं यह राजा और रानी परस्पर एक दूसरे को पहचान न सके। राजा ने कहा, 'देवि! यद्यपि मेरा हाथ काँपता है, तब भी स्वामी की आज्ञा-वश मैं तुम्हें मारना चाहता हूँ।' बिचारी दुखिया ने कहा, 'चाण्डाल! एक क्षण ठहरो। मैं अपने मृत शिशु का दाहसंस्कार कर दूँ। फिर मरने में मुझे दुःख न होगा।' राजा ने छुट्टी दे दी। रानी पुत्र को लेकर रोती बिलखती उसी श्मशान में आ गई। यद्यपि हरिश्चंद्र बालक को पहचान न सके, तथापि उसके राजोचित लक्षणों को देखकर सोच में पड़ गये।'

**नरेन्द्रलक्षणोपेतं अचिन्तयत् असौ नृपः**

(देवीभागवत ०७.२६.१३ )

'अरे! ये किस अभागे वंश के अभागे राजा का अभागा पुत्र है।' किन्तु ध्यान से देखने पर, 'हा हन्त! कहीं ये मेरा पुत्र रोहित तो नहीं है।' तभी सिसकियाँ लेकर शैव्या ने रोना-विलाप करना प्रारम्भ कर दिया, 'हाय रे भाग्य! बिचारे वे महाराज कहाँ होगे? कैसे पाते होंगे शान्ति? राज्य छिन गया, पत्नी-पुत्र गये, दीन-दशा में पड़े राजा की क्या अवस्था होगी?' जैसे ही हरिश्चन्द्र ने सुना सोचा, 'अरे ये सारी दुर्दशा तो मेरी ही है। क्या ये मेरी चर्चा करती है।' पास में आकर ध्यान से देखा तो पहचान गये और वे बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। होश आने पर रुदन प्रारम्भ कर दिया, 'बेटा! आज 'पिताजी' कहकर क्यों नहीं पुकारते?' और जैसे ही पुत्र को गोद में लिया, फिर अचेत हो गये। अब होश में आने पर शैव्या ने देखा, 'अरे! ये तो राजर्षि महाराज हरिश्चन्द्र हैं, पर ये श्मशानघाट पर क्यों आये?' फिर देवताओं को कोसते हुए बोली, 'अरे दैव! तुम मर्यादाहीन हो, तुम्हें धिक्कार है। तुमने देवोपम राजा को भी चाण्डाल बना दिया।'

**धिक् त्वां देव ह्यचकरुण निर्मर्याज्जुगुप्सित । यं नाम ममर प्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ।।**

(देवीभागवत ०७.२६.४०)

राज्यनाश, बान्धव-त्याग, भार्याविक्रयः, पुत्रविक्रय, घोर चाण्डालत्व, धूलधूसरित नष्टप्रायः कर दिया राजा को। 'हाय' कहकर रानी राजा के गले से लग गयी और बोली, 'महाराज! ये सत्य है या स्वप्न है? हे महाराज! क्या मिला हमें सत्य के धर्म का पालन करने से? क्या यही परिणाम है धर्मपूर्वक जीने का? देवोपासना, श्राद्ध, तर्पण, दान, पुण्य धर्म, न्याय करने का, कहाँ रह गया धर्म महाराज?' उसने आगे कहा, 'हे स्वामी! आप करो अपने धर्म का पालन'। स्वामी की आज्ञा से मेरा सिर काट दो। अब कोई चिन्ता नहीं, एक बार आपको देख लिया। अब मैं जीना भी नहीं चाहती।'

शैव्या की बातें सुनकर राजा बेहोश हो गये होश में आये। तो शैव्या ने कहा, 'महाराज! मेरी उपासना का फल है। जन्म-जन्म

में आप ही पति बनेंगे मेरे।' राजा ने कहा, 'देवि! पुत्रशोक-जैसा दुःख किसी नरक में नहीं है। मैं अब इसी के साथ जलकर मर जाता हूँ। तुम ब्राह्मण की सेवा करना, उनकी अवज्ञा नहीं करना।' रानी ने कहा, 'महाराज! मैं भी आपके साथ ही आग में जलकर मर जाती हूँ, क्योंकि अब जी नहीं सकती।' जैसे-ही चिता सजाकर राजा ने (राजा चिता के लिए काष्ठ बीन-बीन कर लाया क्योंकि स्वामी की सम्पत्ति स्वामी-आज्ञा बिना लेना पाप है। रोहित को लिटाकर पराशक्ति माँ जगदम्बा का ध्यान कर, चिता पर बैठना चाहा और प्रार्थना की, 'हे माँ! मेरे इस जन्मों की भूलों को अज्ञानी बालक समझकर क्षमा कर देना।' तभी इन्द्रादि देवता आ गये, धर्म आये और भी सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मरुत-गण आये। इन्द्र ने कहा, 'राजन्! तुमने आज विश्वविजय कर ली, अब चलो! मेरे साथ स्वर्ग।'

**त्वयाद्य भार्यापुत्रेण जिताः लोकाः सनातनाः । आरोह त्रिदिवं राजन् भार्यापुत्र समन्वितः ।।**

(देवीभागवत ०७.२७.१०)

सूतजी कहते हैं, 'ऋषियो! रोहित जी उठा, आकाश से पुष्पवृष्टि हुई, दुन्दुभि बजी; दृश्य बदल गया। दुःख-सुख में बदला, श्मशान उपवन में बदला, डोम धर्मराज हो गये। उनके सेवक हरिश्चन्द्र पुनः पवित्र राजसिंह हो गये, शोक हर्ष में बदला, इन्द्र ने फिर कहा, 'चलो स्वर्ग ... ... ...।' राजा ने कहा, 'नहीं जा सकता। प्रजा सहित यदि नरक भी जाना पड़े, तो भी ठीक है।'

**यदि ते सहिताः स्वर्ग मया यान्ति सुरेश्वरः । ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि ते सह ।।**

(देवीभागवत ०७.२७.२३)

इन्द्र ने कहा, 'राजन्! प्रजा के पुण्य और पाप भिन्न हैं। अतः स्वर्ग के सब अधिकारी नहीं हैं। किन्तु हरिश्चन्द्र के 'पुण्य का प्रताप' प्रजासहित राजा हरिश्चन्द्र स्वर्ग जायें। इन्द्र भी सहमत हो गये, विश्वामित्र तथा धर्म भी सहमत हो गये। हरिश्चन्द्र ने रोहित का अयोध्या के राज्य पर अभिषेक किया और स्वर्ग चल दिये। शुक्राचार्यजी ने हरिश्चन्द्र की प्रशंसा की, 'क्या त्याग, क्या तितीक्षा अहो! दान की महत्ता देखो, आज सप्रजा राजा स्वर्ग जा रहा है।'

**अहो तितीक्षा महात्म्यमहो दानफलं महत् । यदागतो हरिश्चन्द्रस्य महेन्द्रस्य सलोकताम् ।।**

(देवीभागवत ०७.२७.४०)

'इस आख्यान के सुनने से मनोरथ पूर्ण होते है।' जनमेजय कहते हैं, 'महाराज! शताक्षी देवी का माहात्म्य सुनाकर तृप्त करें। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! प्राचीनकाल में दुर्गम नामक दानव हुआ। ये हिरण्याक्ष वंशज रूरू का पुत्र था। देवताओं की शक्ति वेद है, अतः वेदों को नष्ट करने की भावना से उसने तपस्या की। वह एक हजार वर्ष तक वायु पीकर रहा। ब्रह्माजी आये, तो उसने वर माँगा, 'चारों वेद तथा सब मंत्र मुझे प्राप्त हों, देवता मेरे वश में हो जाएँ।'

**पूजयित्वा वरं वृणे वेदान्देहि सुरेश्वर । त्रिषु लोकेषु ये मन्त्राः ब्राह्मणेषु सुरेष्वपि ।।**

(देवीभागवत ०७.२८.१२)

ब्रह्माजी ने 'तथास्तु' कह दिया, ब्राह्मण तो वेद भूल गये। अतः सन्ध्या, देवपूजा, श्राद्ध, तर्पण, यज्ञ आदि बन्द हो गये। हाहाकार मच गया। ये क्या हो गया? निर्जर सजर हो गये। दुर्गम की सेना ने स्वर्ग को जीत लिया। वेदाभाव में यज्ञाभाव, यज्ञाभाव में वर्षाभाव, वर्षाभाव में अन्नाभाव, अन्नाभाव में प्राणियों का जीवनाभाव, 'त्राहि-त्राहि' मचने लगी, सौ वर्ष तक वर्षा नहीं हुई।

**अनावृष्टिरियं राजन्न भूच्च शतवार्षिकी**

(देवीभागवत ०७.२८.२२)

देवता ब्रह्माजी को लेकर हिमालय पर भगवती जगदम्बा की आराधना करने पहुँचे, 'हे माँ! हम अज्ञानी बालकों पर कृपा करें। हमारी रक्षा करें। माँ! आपका दर छोड़कर अब कहाँ जाएँ, माँ! जहाँ हमारी प्रार्थना सुनी जाएगी। अकारण-करुणा-वरुणालया माँ! हम पर अपनी प्रीतिमयी दृष्टि डालकर हमें जीवित करें।' माता करुणा का सिंधु है, अतः सैकड़ों नेत्रों से कृपादृष्टि लगातार नौ दिन, नौ रात तक चली।

*************************************************************************************

**नवरात्रं महावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः**

(देवीभागवत ०७.२६.३८)

जल तो आया, जीवन ही आ गया , आनन्द आ गया। भक्तों सहित देवों ने दिव्य माँ को शताक्षी व सहस्राक्षी नाम से स्तवन किया तथा प्रार्थना की, 'माँ! दुर्गम दैत्य को मारकर देवों, वेदों, विप्रों, वर्णाश्रम का उद्धार करें, यज्ञ-परम्परा का उद्धार करें। माँ ने प्राणियों की भूख मिटाने के लिए शाक मूल फलादि का सृजन किया। अतः,

**शाकम्भरीति विख्याता तद्दिनात्समभून्नृप**

(देवीभागवत ०७.२८.४७)

सहस्र अक्षौहिणी सेना लेकर देवी के साथ दुर्गम ने भयंकर युद्ध किया। भगवती ने कालिका, तारिणी, बाला, त्रिपुरा, भैरवी, रमा, बल्गा (बगुलामुखी), मातंगी, त्रिपुरा, सुन्दरी, कामाक्षी, तुलजा, जम्भिनी, मोहिनी, छिन्नमस्तका, गुह्यकाली आदि बत्तीस शक्तियाँ तथा चौसठ योगिनी भी प्रकट कर दीं।

**द्वात्रिंशच्छकत्याश्चान्याश्चतुस्सष्टि मिताः पराः**

(देवीभागवत ०७.२८.५६)

दस दिन में सारी सेना मर गयी। ग्यारहवें दिन लालवस्त्र, लाल पुष्प, लालचन्दन आदि से सज्जित दुर्गम युद्ध करने आ गया। खेल-खेल में भगवती ने दुर्गम नामक दैत्य को मार दिया। देवताओं ने भगवती की स्तुति की, 'ॐकाररूपा ह्रींकाररूपा माँ! आपको प्रणाम है।' जगदम्बा ने कहा, 'हे ब्राह्मणों! ये वेद मुझसे प्रकट हुए हैं, अतः प्रयत्नपूर्वक इनकी रक्षा करना। हे राजन्! विश्व में जो भी विशेष है, वह भगवती के तेजांश से उद्‌भूत है।'

**यद्‌यत् वियद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमद्वर्जितमेव वा । तत्रं देवावगच्छ त्वं परा शक्तयांश सम्भवम् ।।**

(देवीभागवत ०७.२९.०३)

'माता पञ्चब्रह्मरूपी मञ्च पर विराजती हैं। ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश्वर - ये मंच के चार पाये हैं। उन पर सदाशिव (ब्रह्म) विराजे हैं। इन पाँचों से परे जो है; वही अव्याकृत तत्त्व भुवनेश्वरी है, तारे गिनना सम्भव, आकाश को समेटना सम्भव, पर बिना भगवती की कृपा के दुःखों का अन्त नहीं हो सकता। जनमेजय ने पूछा, 'हे महर्षे! तृतीय स्कंध में आपने मणिद्वीप-वर्णन के समय शिव, विष्णु, ब्रह्मा को गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती प्रदान की थी। जबकि लोकप्रसिद्धि है गौरी दक्षपुत्री या पर्वतपुत्री हैं, लक्ष्मी सागर पुत्री हैं। इसमें रहस्य क्या है? स्पष्ट करें।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! पूर्वकाल में हलाहल नामक दैत्यों ने वर प्रभाव से वैकुण्ठ, कैलाश तक को वश में करना चाहा; तब शिव-विष्णु ने महाशक्ति की कृपा से जैसे-तैसे उन पर विजय प्राप्त की। जब ये शिव, विष्णु अभिमानवश शक्तियों की अवज्ञा करने लगे, तो महालक्ष्मी को इन पर हँसी आ गयी और दोंनो ही अन्तर्धान हो गयी। शक्ति बिना दोनों देवता जड़वत हो गये। ब्रह्माजी ने सनकादि को बुलाकर भगवती की आराधना करने के लिए कह दिया।'

'भगवती अपने आराधिकों को दर्शन देने के लिए आ गयीं तथा 'वर माँगो' ऐसा कहा। दक्ष ने कहा माँ। मेरे घर में जन्म लेकर मुझे धन्य कर दो। शिव और विष्णु की शक्ति लौटा दो तथा अपनी उपासना पद्धति तथा आवास स्थानों का वर्णन करें।' भगवती ने 'तथास्तु' कहा, 'हे दक्ष! तेरे घर गौरी (सती) तथा क्षीरसागर में लक्ष्मी रूप से मेरा प्राकट्य होगा। मेरी प्रसन्नता का मूल कारण है माया बीज '**ह्रीं**'।

**मायाबीजं हि मन्त्रो मे मुख्यः प्रियकरः सदा**

(देवीभागवत ०७.३०.१४)

इस प्रकार कहकर माता अन्तर्धान हो गयीं। भगवती की कृपा से विष्णु-शिव स्वस्थ हो गये। दक्ष के घर जगदम्बा अवतरित हुई। आनन्द-ही-आनन्द हो गया सृष्टि में। भगवती के सत्यांश से उत्पन्न होने से ये सती कहलाई।

****************************************************************************************

**तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्पर संविदः**

(देवीभागवत ०७.३०.२३)

जनमेजय ने पूछा, 'शिव को सती प्रदान की गयी। सती ने दक्ष के यज्ञ में ही प्राणान्त कर लिया था। क्यों महाराज?' एक बार दुर्वासा ( स्वरूपाच्छादनार्थ कुचैलधारी या दूर्वाश्नारी) ने मायाबीज का जप करके माता को प्रसन्न किया, तो जम्बूनदी तटवासिनी माँ ने उन्हें पुष्पमाला प्रसादी में प्रदान की। भ्रमरमण्डित अतिसुरभित माला को ले ऋषि दक्ष के यहाँ माता सती को प्रणाम करने पहुँचे, तो दक्ष ने पूछा, 'ये माला किसकी है?' आनन्दातिरेक से दुर्वासाजी ने कहा, 'ये माँ का प्रसाद है।'

**देव्याः प्रसाद मतुलं प्रेमगद् गदितान्तरः**

(देवीभागवत ०७.३०.३२)

दक्ष ने वह माला माँगकर अपनी शय्या पर रख दी तथा रात्रि में दम्पति ने समागम तक किया, इसी पाप का परिणाम उसका मन शिव–शिवा के प्रति विकारयुक्त हो गया। सतीत्व सिद्ध्यर्थ सती ने इस अपराध के कारण योगाग्नि में दक्ष प्रसूत शरीर को नष्टकर दिया। प्रियतमा के वियोग में तीनों लोकों में शिवकोप ने प्रलय–जैसी मचा दी। दक्ष को यज्ञ सहित नष्ट कर दिया गया। ब्रह्मादि देवता शिव की शरण गये। तो शिव ने दक्ष को बकरे का मुख लगा दिया। किन्तु सती के देह को देखकर 'हा सती!' कहते शिव रोने लगे।

**यज्ञवाटमुपागम्य रुरोद भृश दुःखितः**

(देवीभागवत ०७.३०.४३)

शरीर को उठाकर कन्धे पर रखा और भ्रमण करने लगे। भूमण्डल पर तब विष्णु ने धनुषबाण द्वारा सती शरीर के अंगों को काटना प्रारम्भ किया।

**विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः । चिच्छेदाव यवान्सत्या तत्तस्थानेसु तेऽपतन् ।।**

(देवीभागवत ०७.३०.४६)

जहाँ सती अंग गिरा, वहीं शिव प्रकट हुए; अंगपात स्थल ही देवीपीठ हैं। शिव ने कहा, 'जो भी इन स्थानों पर भगवती शिवा का आराधन करेंगे, उनके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा।'

**.... एतेषु स्थानेषु शिवां भजन्ति । भजन्ति परया भकत्या तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम् ।।**

इन स्थानों पर भगवती सदा रहती हैं। हे राजन्! अब पीठ परिचय को सावधानी से सुनो – १. वाराणसी – गौरीमुख (विशालाक्षी वाराणास्यां विशालाक्षी गौरी मुखस्तथा), २. नैमिषारण्य – लिंगधारिणी, ३. प्रयाग – ललिता, ४. गन्धमादन – कामुकी, ५. दक्षिण मानस – कुमुदा, ६. उत्तर मानस – विश्व कामा, ७. गोमन्त पर्वत – गोमती, ८. कंदराचल – कामचारिणी, ९. चैत्ररथ – मदोत्कटा, १०. हस्तिनापुर – जयन्ती, ११. कान्यकुब्ज – गौरी, १२. मलयाचल – रम्भा, १३. एकाग्रपीठ – र्कीतिमती, १४. विश्वपीठ – विश्वेश्वरी, १५. पुष्कर – पुरुहूता, १६. केदार – सन्मार्ग दायिनी, १७. हिमाचल – मन्दा, १८. गोकर्ण – भद्रकर्णिका, १९. स्थानेश्वर – भवानी, २०. विल्वपीठ – विल्वपत्रिका, २१. श्रीशैल – माधवी, २२. भद्रेश्वर – भद्रा, २३. वाराह पर्वत – जया, २४. कमलालय – कमला, २५. रुद्रकोटि – रुद्राणी, २६. कालञ्जर (कलकत्ता) – काली, २७. शालाग्राम पीठ – महादेवी, २८. शिवलिंग – जलप्रिया, २९. महालिंग – कपिला, ३०. माकोट पीठ – मुकुटेश्वरी, ३१. मायापुरी – कुमारी, ३२. संतानपीठ – ललिताम्बा, ३३. गया – मंगला, ३४. पुरुषोत्तम क्षेत्र (पुरी)–विमला देवी, ३५. सहस्राक्ष पीठ – उत्पलाक्षी, ३६. हिरण्याक्ष – महोत्पला, ३७. विपाशा – आमोघाक्षी, ३८. पुण्ड्रकवर्धन – पाडला, ३९. सुपार्श्व – नारायणी, ४०. त्रिकूट – रुद्रसुन्दरी, ४१. विपुलक्षेत्र – विपुला, ४२. मलयाचल – कल्याणी, ४३. सहयाद्रि – एकवीरा, ४४. हरिश्चन्द्रपीठ – चन्द्रिका, ४५. रामतीर्थ – रमणा, ४६. यमुनापीठ – मृगावती, ४७. कोटितीर्थ – कोटवी, ४८. माधव वन – सुगन्धा, ४९. गोदावरी – त्रिसन्ध्या, ५०. गंगाद्वार – रतिप्रिया, ५१. शिवकुण्ड – शुभानन्दा, ५२. देविका तट – नन्दिनी, ५३. द्वारिका – रुक्मिणी, ०५४. वृन्दावन – राधा, ५५. मथुरा –

देवकी, ५६. पाताल – परमेश्वरी, ५७. चित्रकूट – सीता, ५८. विन्ध्यक्षेत्र-विंध्यवासिनी, ५९. करवीर (कोल्हापुर) – महालक्ष्मी, ६०. विनायक पीठ – उमा, ६१. वैद्यनाथ – आरोग्या, ६२. महाकाल – महेश्वरी, ६३. उष्णतीर्थ – अभया, ६४. विंध्य पर्वत – नितम्बा, ६५. माण्डव्य पीठ – माण्डवी, ६६. माहेश्वरी पुरी – स्वाहा, ६७. छगलण्ड प्रान्त – प्रचण्ड, ६८. अमरकण्टक – चण्डिका, ६९. सोमेश्वर पीठ – वरारोहा, ७०. प्रभास – पुष्करावती, ७१. सरस्वती तट – देवमाता, ७२. समुद्र तट – पारावारा, ७३. महालय क्षेत्र – महाभागा, ७४. पयोष्णी नदी तट – पिंगलेश्वरी, ७५. कृतशौच तीर्थ – सिंहिका, ७६. कीर्तिक्षेत्र – अतिशांकरी, ७७. उत्पालवर्तक क्षेत्र – लोलादेवी, ७८. सोनभद्रगण्डवी संगम – सुभद्रा, ७९. सिद्धवन – माँ लक्ष्मी, ८०. भरताश्रम – अंनगा, ८१. जालंधर पर्वत – विश्वमुखी, ८२. किष्किन्धा – तारा, ८३. देवदारुवन – पुष्ठि, ८४. काश्मीर – मेधा, ८५. हिमाद्रि – भीमादेवी, ८६. विश्वेस्वर क्षेत्र – तुष्टि, ८७. कपालमोचन तीर्थ – शुद्धि, ८८. कामावरोहण तीर्थ – माया, ८९. शंखोद्धार तीर्थ – धरा, ९०. पिण्डारक तीर्थ – धृति, ९१. चन्द्रभागा तट – कला, ९२. अच्छोद – शिवधारिणी, ९३. वेणा – अमृता, ९४. बदरीवन – उर्वशी, ९५. उत्तरकुरुदेश – औषधि, ९६. कुशद्वीप – कुशोदका, ९७. हेमकूट – मन्यथा, ९८. कुमुदवन – सत्यवादिनी, ९९. अश्वत्थतीन – वन्दनीय, १००. वैश्रवपालय – निधि, १०१. वेदवदन क्षेत्रगायत्री, १०२. शिव सान्निध्य – पार्वती, १०३. देवलोक – इन्द्राणी, १०४. ब्रह्मलोक – सरस्वती, १०५. सूर्यबिम्ब – प्रभा, १०६. मातृकाओं – वैष्णवी, १०७. सतियों में – तिलोत्तमा, १०८. प्राणि मात्र में ब्रह्मकला।

इस प्रकार ये १०८ पीठ हैं, इनकी तीर्थयात्रा करने से अक्षय पुण्य होता है। सिद्ध पीठों पर स्त्रियों, कन्याओं, विद्यार्थियों बटुकों को भोजन कराना चाहिए। सब में देवी के दर्शन करने चाहिए (**सर्व देवीमयं जगत्**) प्रतिग्रह लिये बिना मन्त्रराज ही का अनुष्ठान करें। फलतः उसके पितर सहस्त्रकल्प तक देवलोक भोग कर मुक्त हो जाते है। इसका पाठ करने से अभीष्ट की प्राप्ति होती है, ये १०८ पीठ चिन्मय शरीर है माता के, बुद्धिमान् इसका सेवन करे।

**इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात् संविन्मयानि च । सिद्धपीठानि राजेन्द्र संश्रयेन्मतिमान्नरः ।।**

(देवीभागवत ०७.३०.१०)

जनमेजय ने कहा, 'हे गुरुदेव! शक्तिसुधामृत से तृप्त नहीं हो पाता हूँ। हिमाचल पर प्रकट शक्ति का वृत्तान्त सुनाइए।' व्यासजी कहते हैं, 'राजन्! शिव समाधि में चले गये, तो संसार निरानन्द हो गया। असुरों की शक्ति बढ़ी। तारकासुर ने आतंक फैला दिया। उसे वर था – 'उसकी मृत्यु शिव के औरस पुत्र से होगी'। शिव विधुर हो गये। विवाह करेंगे नही, तो पुत्र होगा नहीं; पुत्र बिना मेरी मृत्यु नहीं – सोचकर तारक ने वर मांगा था। स्वर्ग छिनने पर देवता विष्णु के पास गये और अपना दुखड़ा रोया। विष्णु ने कहा, 'कोई चिन्ता की बात नहीं, माँ जगदम्बा की आराधना करो। बालक से पग–पग दोष होते ही हैं। उन्हें माँ के अलावा कोई दूसरा सहन नहीं कर सकता।'

**अपराधो भवत्येव तन यस्य पद पदे । कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं बिना ।।**

(देवीभागवत ०७.३१.१८)

लक्ष्मीनारायण सहित देवता हिमालय पहुँचे तथा अम्बा–यज्ञ–विधि से अम्बा यज्ञ किया।

**अम्बायज्ञ विधानज्ञा अम्बायज्ञञ्च चक्रिरे**

(देवीभागवत ०७.३१.२२)

कोई जप, कोई व्रत, सूक्त पाठ, कोई नाम जप, कोई ध्यान, अन्तर्याग बहिर्याग – यज्ञ वर्षो तक चला। सहसा चैत्र शुक्ल नवमी शुक्रवार को जगदम्बा प्रकट हो गयी।

**अकस्मात् चैत्रमासीय नवम्याञ्च भृगोर्दिने प्रादुर्बभूव**

मूर्तिमान् चारों वेद स्तुति करते थे। दिव्य–भव्य स्वरूप कौमार्यावस्था में माता ने दर्शन दिये। सभी ने माँ को प्रणाम किया, 'हे माँ! हम प्रणाम के अतिरिक्त कर भी क्या सकते हैं। हे तत्पद की लक्ष्यार्थ, चिन्मयरूपा, अखण्डानन्दमूर्ति, वेदतात्पर्य भूमिका,

*************************************************************************************

पराशक्ति, भुवनेश्वरी को हम प्रणाम करते हैं।'

**नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये। नानामन्त्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः ।।**

(देवीभागवत ०७.३१.५३)

माँ बोली, 'मेरी प्रतिज्ञा है देवो ! मैं भक्तों को दुःख रूपी सागर से पार कर देती हूँ। अतः अपना मनोरथ कहो।'

**समुद्धरामि भक्तान् दुःखसंसारसागरात्**

(देवीभागवत ०७.३१.५६)

देवताओं ने कहा, 'माँ ! हम तारकासुर का वध चाहते हैं। शिवपुत्र से उसका वध होगा। माता ने उनके आने का आशय समझा तथा कहा, 'मेरे अंश से उत्पन्न गौरी ही शिव के साथ विवाह करेगी। हिमालय को चाहिए गौरी पाने के लिए तप करे।' अब तो हिमालय मारे खुशी के पागल हो रहा है। तदनन्तर जगदम्बा ने कहा, 'हे देवो ! ध्यानपूर्वक सुनो। मैं ही पूर्व में थी। उस समय मेरे अतिरिक्त कुछ और नहीं था।

**अहमेवास पूर्वन्तु नान्यक्तिञ्चि भगाधिप । तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैक नामकम् ।।**

(देवीभागवत ०७.३२.०२)

(**जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते सीयते नष्यति**) इन छः विकारों से मैं शून्य हूँ, माया मेरी ही शक्ति है। उसी को 'अजा/अज्ञान/अविद्या' कहा जाता है। समग्र प्रपञ्च को प्रकाशित करने के लिए मैं स्वतः प्रकाशरूप हूँ। मेरे मन्त्र '**ह्रीं**' से ही आकाशादि पञ्चभूतों का प्रादुर्भाव हुआ। पञ्चीकरण की प्रक्रिया से शरीर (स्थूल) बना। कार्यरूप से यही विराट् बना। पाँचों भूतों के सत्वांश से ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। तदनन्तर अन्तःकरण उत्पन्न हो गया। संकल्प-विकल्प होने से इसकी संज्ञा मन हो गयी। संशयरहित निश्चय करने पर इसे बुद्धि-अनुसन्धानपरायण होने पर चित् अहंकार वृत्ति के उदय पर इसे अहंकार कहने लगे। पञ्चमहाभूतों के राजस्-तत्त्व से कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। राजस् अंगो से ही पञ्चप्राण बने। तदनन्तर दस इन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन, बुद्धि ही सूक्ष्म शरीर हैं। यही लिंग शरीर है।

**एतत्सूक्ष्म शरीरं स्यान्मम लिंगं यदुच्यते**

(देवीभागवत ०७.३२.४२)

'माया' और 'अविद्या' - दो तत्त्व है। राजन्! शुद्ध, सत्य, प्रधान गुण 'माया' है, अशुद्ध गुण प्रधान 'अविद्या' है। शरणागत रक्षिका माया है, इसके साथ ही जुड़ा ईश्वर है, जो सर्वान्तर्यामी है। मलिन सत्य प्रधान अविद्या प्रतिबिम्बित जीव है, जो अल्पज्ञ परतंत्र है। प्राणी प्राज्ञ, सूक्ष्म शरीराभिमानी, जीव तेजस्, स्थूल देहाभिलाषी जीव विश्व है; ऐसे ही ईश-सूत्र-विराट् रूप से ईश्वर तीन '**ह्री**' हैं। पर सब कुछ है मेरा ही विस्तार।

## स्थूल विराट् मूर्ति शिवा प्रकृति सृजन विधि, 'तत्त्वमसि' का तात्पर्य है शिवा, योगनिरूपण, देवी निवास व अश्विनीकुमारों ने पायी ब्रह्मविद्या, त्रिविधाभक्ति, मुख्य तीर्थस्थान, द्विविधा पूजाविधि, देहपीठ में ही देव्युपासना

भगवती ने कहा, 'हे हिमालय ! जैसे एक होने पर भी आकाश घट पानी भेद से भिन्न से लगता है, पात्रभेद से एक गंगाजल जैसे पृथक्-पृथक् नाम वाला माना जाता है, (जैसे घटजल, लोटाजल, गिलासजल, भगोनाजल, जगजल, सागरजल, बाल्टीजल, आदि) बस वैसे ही सकल प्रपञ्च में कृत्रिम भेद है अर्थात कल्पितभेद है।

**तथैव कल्पितो भेदो जीवात्म परमात्मनोः । यथा जीव बहुत्वञ्च माययैव न च स्वतः ।।**

(देवीभागवत ०७.३३.०९)

जीवभेद में अविद्या कारण है, गुणभेद से वासना भेद, वासनाभेद से कार्यभेद होता है, मिथ्या जगत् मेरे आश्रय से ही सत्य

*****************************************************************************************

जैसा लगता है, कारण देहाभिमानी ईश्वर स्थूल देहाभिमानी विराट मैं ही हूँ। शक्तियों सहित तीनों देव मैं ही हूँ। हे हिमगिरे! संसार का कोई पदार्थ मुझसे पृथक् नहीं है।' भक्तों की प्रार्थना पर जगदम्बा ने अपना विराट् स्वरूप दिखाया। आकाश माँ का मस्तक है, सूर्य-चन्द्र नेत्र हैं, दिशाएँ कान, वेद स्वांस है, विश्व हृदय, पृथ्वी जंघा, भुवर्लोक नाभि, अश्विनीकुमार नासिका है, दिन-रात पलकें, भगवती की हँसी ही माया थी, लज्जा ओठ थी।

अधरोष्ठ लोभ, पीठ अधर्म, समुद्र उदर, पर्वत अस्थियाँ, नाड़ियाँ नदी, वृक्ष केश, मन चन्द्र, दो संध्याएँ ही वसन, विविधायुध सज्जित उनकीं विराट् झाँकी को देखकर देवता अचेत-से हो गये, तो वेद द्वारा उनको प्रबोधित किया गया। देवता तो बस प्रणाम करते हैं।

**नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके । सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्त्तये ।।**

(देवीभागवत ०७.३३.४५)

'हे सर्वरूपे माँ! आपको अनन्त बार नमन है।' देवताओं की प्रार्थना पर पुनः माँ ने सौम्यरूप धारण कर लिया। भगवती ने कहा, 'हे हिमालय! ब्रह्म ही उपाधि भेद से जीव कहलाता है तथा विविध योनियों में जन्म लेकर सुख-दुःख भोगता रहता है, ये सब होता अज्ञान के कारण ही है, मानव तन की सफलता है अज्ञाननाश।

**एतद्धि जन्मसाफल्यं यत् अज्ञानस्य नाशनम्**

(देवीभागवत ०७.३४.०७)

'जीवन्मुक्त दशा की प्रीति ही श्रेष्ठ विद्या है, कर्मग्रन्थि हेतु है तथा ज्ञान ग्रन्थिमोचक है। अंतःकरण शुद्धि परमावश्यक है। 'तत्त्वमसि' का अर्थ जाने 'तत्' (सर्वसर्वेश्वरी), 'त्वम्' (जीव)। इसमें 'असि' पर दोनों की एकता को सिद्ध करता है। स्थूल देहरहित जीव ही ब्रह्म है। जब जीव की स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर से तीनों उपाधियाँ नष्ट हो जाती हैं, तब केवल बचता है 'परमात्मा'। तीनों शरीरों के नष्ट होते ही पञ्चकोश भी नष्ट हो जाते हैं। अविनाशी आत्मा जीवित या मृत नही हैं आत्मा तो '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**' है। अरे पर्वतराज! ध्यान से सुनो ये शरीर रथ है, आत्मा रथी है, सारथी बुद्धि, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं। ज्ञानी इस रहस्य को समझकर जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है, मुक्ति का अन्य हेतु है '**ह्रीं**' का वास्तविक स्वरूप जानना। 'ह' स्थूल देह, 'र' सूक्ष्म देह, 'ई' कारण देह, जबकि '**ह्रीं**' मैं स्वयं हूँ। मेरा ध्यान करने के लिए राग-द्वेष विमुक्त मन हो, दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर लगाएँ। स्थूल देहरूपी हकार को सूक्ष्म शरीररूपी रकार में, परमतेजस्वी रकार को ईकाररूपी कारण शरीर में, ज्ञानरूप ईकार को '**ह्रीं**' में अन्तर्भूत कर लें। अद्वैततत्त्व का चिन्तन करता हुआ द्वैत को मन से निकाल दे, तो प्राणी मेरा साक्षात्कार पा सकता है।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! हिमालय ने भगवती माँ से योगविषयक जिज्ञासा की। श्रीदेवी ने कहा, 'हे पर्वतराज! योग जमीन, आकाश या पाताल में नहीं; अपितु योग तो जीवात्मा, परमात्मा की एकता का नाम है।

**न योगो नभ सः पृष्ठे न भूमौ न रसातलेः । ऐक्यं जीवात्मनो राहुर्योगं योगविशारदाः ।।**

(देवीभागवत ०७.३५.०२)

इस ज्ञान में विघ्न-भूत आन्तरिक षट्शत्रुओं को जीतने के लिए ही अष्टाङ्गयोग की आवश्यकता है -

१. यम : अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति मिताहार, पवित्रता।

२. नियम : तप, संतोष, आस्तिकता, दान, देवार्चन, शास्त्रश्रवण, निन्द्यकर्म में जुगुप्सा, सद्‌भि, जप, हवन ।

३. आसन : पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, बज्रासन, वीरासन, ये बहुबिध आसनों में पाँच ही मुख्य माने जाते हैं।

४. प्राणायाम : इड़ा (बायीं) चन्द्र नाडी से श्वास लेना पूरक, सुषुम्ना में चौगुने समय श्वांस रोकना कुम्भक प्राणायाम। कुम्भक के आधे समय में पिंगला (दायीं) सूर्य नाडी से श्वास का विसर्जन ही रेचक है। सगर्भ - इष्टदेव का ध्यान करते हुए प्राणायाम। विगर्भ - इष्टदेव के ध्यान से रहित प्राणायाम। प्राणायाम में पसीना तृतीय कोटि, कम्पन द्वितीय कोटि, भूमि त्याग प्रथम कोटि का

लक्षण है।

५. प्रत्याहार : इन्द्रियों को विषयों से हटाना।

६. धारणा : पादांगुष्ठ, एड़ी, घुटना, जंघा, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य, मस्तक – इन बारह स्थानों पर प्राण वायु को विधिवत धारण करना ही धारणा है।

७. ध्यान : समाहित मन से अन्दर ही अभीष्ट देवता, मन्त्र, प्रकाश या प्रतीक का ध्यान ही ध्यान कहा जाता है।

८. समाधि : जीव ब्रह्म का ऐक्यानुभाव ही समाधि है सविकल्पक निर्विकल्पक।

'हे नगाधिराज ! चन्द्र–सूर्याग्नि के संयोग से जीव–ब्रह्म ऐक्य होता है। वैसे तो शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ हैं।

**तिस्त्रः कोटयस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः**

(देवीभागवत ०७.३५.२८)

उनमें ये तीन ही मुख्य हैं : १. इडा – बाँयी ओर श्वेत वर्षा, चन्द्ररूपा, शक्तिमया, अमृतमयी गंगा ही है; २. पिंगला – दाहिनी ओर पुरुषरूपा, सूर्यमूर्ति, यमुना, यही हैं; ३. सुषुम्ना – दोनों के मध्य में सर्वतेजमयी अग्निरूपा सरस्वती यही है। सुषुम्ना–मध्य में ज्ञानेच्छा क्रियात्मिका कोटि सूर्याभ स्वयंभर लिंग वाली '**ह्रीं**' बीज सज्जित हर आत्माबिन्दु नादयुक्त हैं। इसके ऊपर रक्तवर्णा शिखाकर दिव्यज्योतिरूपा कुण्डलिनी आदिशक्ति है, वही जीवयुक्त कमल है। उसमें चार दल हैं; उनमें '**वं, शं, षं, सं**' – ये चार अक्षर हैं – यही मूलाधार है। लिंग इससे ऊपर षट्कोण कमल का ध्यान करें –यह अग्नि सम हीरे की आभा वाला है। यहाँ '**ब, भ, म, य, र, ल**' वर्णयुक्त स्वाधिष्ठान् चक्र है। नाभि तद्धर्थनाभि देश में मेघाच्छन्न तडितप्रभ मणिपूर चक्र है। मणिवत् कान्तिमान मणिपद्म दस दलयुक्त '**उ, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ**' – ये विष्णु स्थान है। योगिजन विष्णु का ध्यान यहाँ करते हैं। हृदयदेश तदनन्तर सूर्य कान्तिसम अनाहतचक्र द्वादशदलयुत '**क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ**' वर्णयुक्त हैं। इसमें दशसहस्र सूर्य समान प्रकाश युक्त बाणलिंग है – बिना आघात के ही जिसमें शब्द होता है, यही ब्रह्ममय चक्र अनाहत है, आनन्द का सिंधु है; यहाँ परमपुरुष रहते हैं। कण्ठदेश तदनन्तर विशुद्धचक्र में षोडष दल '**अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः**' सोलह स्वर रहते हैं; धूम्रवर्ण, तेजोमय। यहाँ हंसरूप परमात्मा के दर्शन कर विशुद्ध आत्मतत्त्व को पा लेता है। यही आकाश चक्र या विशुद्धाख्य चक्र है। भ्रूमध्य तदनन्तर परमात्माधिष्ठानरूप आज्ञा चक्र है, परमात्मा की आज्ञा संक्रमण होने से ये आज्ञा कहलाता है। द्विदल हक्ष वर्णयुक्त है आज्ञा। दोंनों भौंहों के बीच में आज्ञाचक्र, तदन्तर कैलाश चक्र, रोधिनी चक्र; सबसे ऊपर सहस्रार चक्र है, जो बिन्दु मूल चिद्विह्म का मूल स्थान है, शून्यचक्र भी यही है।'

'हे नगेश ! प्राणयाम द्वारा मन को मूलाधार में लगाये। तदनन्तर गुदा–लिंग के बीच में वायु द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को खींचकर जगाये। तदनन्तर स्वायम्भूलिंग से प्रारम्भ करके उक्त चक्रों द्वारा कुण्डलिनी को सहस्रारचक्र शून्य चक्र तक ले जाये। यही शिवाशक्ति, शिवशक्ति, पराशक्ति व ब्रह्म–मिलन है, ऐक्य हैं, वहाँ लाक्षारसोपम रस को कुण्डलिनी को पिलाकर षट्चक्रस्थ देवों को भी तृप्त करें तथा पुनः मूलाधार में वापस ले आयें।'

**शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभूतां विचिन्तयेत्**

(देवीभागवत ०७.३५.४९)

'नित्याभ्यास से सकल मन्त्र, तन्त्र, ज्ञान–विज्ञान सिद्ध हो जाता है; जरामरण मुक्त हो समस्तसद्गुण सम्पन्न हो जाता है।'

**जरामरण दुखाद्यैः मुच्यते भवबन्धनात्**

(देवीभागवत ०७.३५.५३)

'ये तो थी वायु धारणा। अब सुनो ! चित्तधारणा चित्त की पवित्रता के लिए अष्टांगयोग, फिर मेरे श्रीविग्रह का ध्यान करे। यही चित्तधारणा है। जबतक मुझमें चित्त न लग जाये, तब तक मन्त्र होमादि करता रहे। मन्त्र–जप से ही आत्मानुभाव ज्ञान होता है।

*************************************************************************************

मन्त्रसिद्धि योग बिना सम्भव नहीं, योग बिना मन्त्र सिद्ध नहीं।

**न योगेन बिना मन्त्रो न मन्त्रेण बिना हि सः**

(देवीभागवत ०७.३५.६०)

'मन्त्र व योग – दोनों का समुचित अभ्यास ही ब्रह्मज्ञान में कारण है। हे नगाधिराज! घर में रखी घटादि वस्तुओं के ज्ञान के लिए जैसे प्रकाश चाहिए, वैसे ही चैतन्यात्मा को जानने के लिए मन्त्र प्रकाश की ही आवश्यकता है। हे पर्वतेश्वर! ध्येय ब्रह्म का निरूपण सुनो। सकल प्राणियों का आश्रय है अक्षर। ब्रह्म यही सबका मन, वाणी व प्राण है। इसी को पाने का यत्न करो वत्स! प्रणव धनुष, जीवात्मा बाण, तपः क्रिया तीक्ष्णताधार, ब्रह्म ही लक्ष्य है। अतः तन्मय होकर वर ब्रह्मातिरिक्त किसी का चिन्तन न करें। वह ब्रह्म दूर नहीं है अपितु प्राणी मात्र के हृदय देश में रहता है।'

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।**
**तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।**

(देवीभागवत ०७.३६.१३)

'सूर्य, चन्द्र, तार, बिजलियाँ, अग्नि आदि का प्रकाश वहाँ काम नहीं करता क्योंकि सबका प्रकाशक है वह आत्मतत्त्व। वह सर्वव्यापक सर्वरूप सर्वत्र है। ध्यान से सुनो! भय द्वैत बुद्धि के कारण होता है, अद्वैत आने पर कैसा भय? किससे भय? क्यों भय? मैं ही मैं हूँ। सब तरफ ...। तब किसी से भय कैसे हो सकता है? सच बताऊँ जहाँ पर अद्वैतदर्शी अभेद ज्ञानी रहते हैं, मैं तो वही रहती हूँ।

**नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित् । वसामि किन्तु मज्ज्ञान हृदयाम्भोज मध्यमे ।।**

(देवीभागवत ०७.३६.१८)

तीर्थ, कैलाश, वैकुण्ठ में नहीं; मैं तो अद्वयज्ञानयुक्त हृदय में रहती हूँ। हे पर्वतराज! गुरु श्रेष्ठ तत्त्व है क्योंकि माता-पिता का दिया, शरीर तो नष्ट हो जाता है; किन्तु गुरु का दिया ज्ञानरूपी सूक्ष्म शरीर कभी नष्ट नहीं होता। अतः गुरु ही परमतत्त्व है। शिव के कोप से गुरु बचाता है किन्तु गुरु-कोप से शिव नहीं।

**शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शङ्करः । तस्माच्छास्वरूपसिद्धान्तां ब्रह्मदाता गुरुः परः ।।**

अतः सर्वतोभावेन तन, मन, धन द्वारा गुरु को प्रसन्न रखने का यत्न करें। अथर्वण ऋषि ने इन्द्र से ब्रह्मविद्या प्राप्त कर ली, किन्तु इन्द्र के मना करने पर भी अश्विनीकुमारों को दे दी। इन्द्र ने प्रतिज्ञानुसार अथर्वण का सिर काट दिया। अश्विनीकुमारों ने जोड़ दिया अर्थात् सिर देकर भी जीवन दाव पर लगाकर भी ब्रह्मविद्या मिले तो पाले। अश्विनीकुमारों ने पहले ही अथर्वण का सिर काटकर घोडे. का लगा दिया और ब्रह्मविद्या पा ली। इन्द्र ने तो प्रतिज्ञा की थी, यदि इन वैद्यों को अनधिकारियों को विद्या दोगे तो सिर काट दूँगा। अतः काट दिया, प्रसन्न अश्विनीकुमारों ने अथर्वण का पुराना सिर फिर जोड़ दिया।'

'हे नगेश! मुक्ति के लिए तीन मार्ग प्रसिद्ध है : १. कर्मयोग, २. ज्ञानयोग, ३. भक्तियोग। भक्तियोग सरल है। भक्ति तीन प्रकार की है : (क) तामसी भक्ति – ईर्ष्या, द्वेष युक्त परपीडार्थ दम्भपूर्वक ढोंग, पाखण्डयुक्त भक्ति। (ख) राजसी भक्ति – परपीडादि रहित, किन्तु स्वार्थसाधिका सकाम-भक्ति राजसी है। मुझको अपने से अलग मानता है। (ग) सात्विकी भक्ति – परेषार्पण बुद्धि से चित्तशुद्धार्थ वेदाज्ञा का पालन करता हुआ, फलाकांक्षारहित भक्ति सात्विकी है। हे पर्वतेश! मुझमें अपने चित्त को तैलधारावत् लगाये रखे यहाँ तक कि मुक्ति की भी कामना न करे। प्राणीमात्र में मेरा दर्शन करे – ये उत्तम भक्त की पहचान है। सर्वतोभावेन मुझमें अनुरक्त रहना उत्तम भक्त का लक्षण है। मेरा व्रत, पूजा, पाठ, उत्सव, चारों नवरात्र विधिपूर्वक करें। जैसी भी स्थिति मुझे प्राप्त है, वह मेरे कर्मो का ही परिणाम है। यही सोचकर मेरा ध्यान करता रहे। भक्ति की पराकाष्ठा ही ज्ञान है। वैराग्य की चरम सीमा ही ज्ञान है।

**भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम् । वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः ।।**

(देवीभागवत ०७.३७.२८)

*************************************************************************************

ज्ञान से ही मुक्ति होती है – '**ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा**'। यद्यपि में सर्वत्र समरूप हूँ, तदपि कण्ठगत हार को भूलवश व्यक्ति खोया हुआ मानकर खोजता फिरे, तभी कोई आकर बताये कि हार तो तुम्हारे गले में हैं, प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता। ठीक वैसे ही मुझ नित्यप्राप्त को भूलवश खोजने वाले को कोई गुरु आकर दिखा दे, तो कितना आनन्द होवेगा। मानव तन की प्राप्ति उसमें भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति, उसमें भी मोक्षेच्छा का उदय होना, ये पूर्वजन्मों का परिणाम है।

पर्वतराज ने पूछा, 'माँ! आपके व्रत तथा पवित्र स्थान बनाने की कृपा करें।' माँ ने कहा, 'यद्यपि मैं सर्वत्र समान रूप से हूँ तथापि दक्षिण में कोल्हापुर लक्ष्मीरूप से, मातुःपुर में भगवती रेणुका देवीरूप से, तुलजापुर में (सप्तशृंग में) भी मेरा पावन तीर्थ है। हिंगुला, ज्वालामुखी, शाकुम्भरी, भ्रामरी, रक्तदन्तिका, दुर्गा, विंध्यपर्वत पर विध्यवासिनी, कांचीपुर में अन्नपूर्णा, भीमादेवी, विमलादेवी। कर्णाटक में श्रीचन्द्रला देवी, वहीं कौशकी देवी है, नीलपर्वत पर नीलाम्बा, जम्बू में जाम्बूनरश्वेरी है, नेपाल में गुह्यकाली, चिदम्बर में मीनाक्षी, वेदराज में सुन्दरी, पुरुषोत्तमक्षेत्र में भुवनेश्वरी। चीन में नीलसरस्वती, वैद्यनाथ में बगलामुखी हैं। हे नगराज! योनिभाग जहाँ गिरा वह कामाख्या है, वही त्रिपुरासुन्दरी है। वह दिव्यस्थल है, वहाँ भगवती आज भी रजस्वला होती हैं। दुनिया में उसके जैसी दूसरी तपस्थली नहीं है।

**नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले । प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला ।।**

(देवीभागवत ०७.३८.१६)

पुष्कर गायत्री का उदयस्थल है, अमरकण्टक में चण्डिका है, प्रभास में पुष्करेक्षणी, नैमिष में लिंगधारिणी, श्रीशैल पर शाङ्करी है, महाकाल में शाकम्भरी है, गया में मंगला, कुरुक्षेत्र में स्थाणुप्रिया, कनखल में उग्रा, महेन्द्रपर्वत पर महान्तमा, काशी में विशालाक्षी, कालञ्जर पर्वत पर काली। हे पर्वतराज! सम्पूर्ण कलाओं से मेरा निवास काशी ही है, अतः वहीं रहकर मेरी उपासना करें।

**अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्यां सन्ति नरोत्तम**

(देवीभागवत ०७.२८.३२)

'अब तुम्हें व्रत बताती हूँ। सुनो! अनन्ततृतीया (रसकल्याणिनी आर्द्रानन्दकरी), शुक्रवार, चतुर्दशी, भौमव्रत प्रदोषव्रत – ये पावन व्रत सर्वाभीष्टफलप्रद हैं। सोमवार व्रत – ये शिव-शिवा दोनों के हैं। दिनभर उपवास करें रात्रि को भोजन करें। नवरात्र अत्यन्त प्रिय है।' नगाधिराज ने कहा, 'हे माँ! अपनी पूजा पद्धति बताकर कृतार्थ करें।' माँ ने कहना आरम्भ किया, 'हे पर्वतराज! पूजा पद्धति दो प्रकार की है : वैदिकी व तान्त्रिकी। मेरे विराट् रूप की पूजा यज्ञ द्वारा करें, कीर्तन द्वारा करें। साथ ही निष्काम वर्णाश्रमधर्म की रक्षा के लिए ही मेरा अवतार होता है। सब विभिन्नताओं को त्यागकर एकमात्र मेरा भक्त बनने वाला जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। इसके बाद दूसरी पूजा है मूर्ति, वेदी, सूर्य, चन्द्र, जल, वाण, चिह्न, यन्त्र, चित्र या हृदयरूपी कमल पर मेरा ध्यान करें। ये पूजा की दूसरी विधि है। मेरी बाह्य पूजा तबतक करे, जबतक आन्तरिक पूजा का अधिकार न मिल जाये।

**यावत् आन्तरपूजायामधिकारो भवेन्नहि । तावत् बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत् ।।**

भगवती कहती हैं, 'हे भक्त! प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर सहस्रदल कमल में मेरा ध्यान करे, जो मस्तक-ब्रह्मरन्ध्र में है। गुरु का ध्यान करे, तदन्तर श्रीदेवी को ध्यावे। यही कुण्डलिनीशक्ति मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती अमृतमयी हो जाती है – सुषुम्ना नाड़ी में जाते ही वे स्त्रीरूप में आ जाती हैं। इस प्रकार ध्यान करें। फिर नित्यक्रिया सम्पन्न कर, स्नानादि करके आसन पर पूर्व की ओर बैठकर बाह्यपूजा करे। भूतशुद्धि, अन्तर्मातृकान्यास, बहिर्मातृका-करन्यास करे। मूलाधार में हकार, हृदय में रकार, भ्रूमध्य में ईकार, मस्तक में '**ह्रीं**', स्वशरीर को दिव्य पीठ मानें। प्राणायाम द्वारा हृदयकमल खिलायें, पञ्चमहाप्रेतासन पर भगवती राजराजेश्वरी विराजमान हैं। ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव – ये पञ्च प्रेत हैं। ये पाँचों देवता पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के अधिष्ठाता और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, अतीत अवस्थाओं के व्यवस्थापक हैं। मैं तो अव्यक्त चिन्मय सबसे परे हूँ। मेरा मानसिक जप करें, ध्यान करे, जप समर्पण कर अर्घ्य देवे, पात्रासादन करे। '**ॐ फट्**' से ही दिग्बन्ध करें। गुरु को प्रणाम कर बाह्यपूजा प्रारम्भ करें,

***************************************************************************************

आन्तरिक हृदयस्थस्वरूप को ही पीठ पर स्थापित कर प्राण प्रतिष्ठा करें। आवाहनासन-पाद्यादि प्रकार से मेरी षोडशोपचार-राजोपचार से अंगावरण-पूजनपूर्वक उपासना करें। बड़ी पूजा रोज न हो सके, तो शुक्रवार को अवश्य करें।'

'सर्वप्रथम आवरणदेवता प्रकाशमयी माँ भगवती की अंगादि पूजा करें। सहस्रनाम, देव्याथर्वशीर्ष आदि का प्रीतिपूर्वक प्रीतिप्रद पाठ करें, महाविद्याओं का जप करें। तदनन्तर क्षमाप्रार्थना करके गद्‌गद वाणी में प्रेमाश्रुओं सहित रोमाञ्चित हो कीर्तन करें। अबोध बालकों, कन्याओं और ब्राह्मणों (श्रेष्ठ) को भोजन करायें। इससे पूर्व होम भी करावें, तब भोजन करायें। ये सारी पूजा '**ह्रीं**' (हृल्लेखा) द्वारा सम्पन्न करें। ये '**ह्रीं**' मन्त्र मेरा दर्पण है। तदनन्तर लयक्रम से विसर्जन करें। अन्त में उपासक मणिद्वीप पाता है। हे नगेश! अब अधिकारपूर्वक अधिकारानुसार मेरी उपासना करो।

**विंमृश्यैतदशेषेयणात्यधिकारानुरूपतः । कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ।।**

(देवीभागवत ०७.४०.३३)

'हे नगेश! अनाधिकारी के साथ ये चर्चा कभी न करें।' व्यासजी कहते है, 'हे जनमेजय! यही माँ हेमवती कहलाई, अन्तर्धान हो गयी। इनसे तारकासुर का वध करने वाले कार्तिकेय उत्पन्न हुए। हे राजन्! लक्ष्मीजी का अवतरण समुद्र-मन्थन के समय हुआ, जो विष्णु के साथ जगत्पालन की व्यवस्था करती हैं।' सूतजी कहते हैं, 'ऋषियो! इस प्रकार व्यासजी ने भगवतीगीता का उपदेश जनमेजय को सुनाया, जो माता ने स्वयं पर्वतराज को सुनाया था।'

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं सप्तमः स्कन्धः ।।*

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। अष्टमः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### नारद-नारायण संवाद, मनु-शतरूपा तप, वराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार, मनु का सन्तान-वितान, प्रियव्रत का कुल, खगोल-भूगोल वर्णन, जम्बुद्वीप वर्णन, जम्बूद्वीपस्थ पर्वत वर्णन, गंगा महिमा व भारतवर्ष महिमा, इलावृत्त व भद्राश्व वर्ष, हरिवर्ष, केतुमाल-रम्यक वर्ष, हिरण्य, उत्तरकुरु-किंपुरुष, भारतवर्ष वैशिष्ट्य, प्लक्ष-कुश-द्वीप, क्रौञ्चद्वीप, लोकालोक पर्वत

जनमेजय ने आगे प्रश्न किया, 'प्रभो! स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा सहज सुखद होती है। अतः भगवती के स्थूल विश्वरूप ब्रह्मण्डरूप की कथा सुनने की महती इच्छा है।' व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! प्राचीनकाल में नारदजी ने श्रीमन्नारायण से ऐसा ही प्रश्न किया था। प्रभु ने उत्तर में जो कहा, वह मैं तुमको सुनाता हूँ। नारदजी भ्रमण करते हुए बदरिकाश्रम पहुँचे तथा प्रश्न किया, 'महाराज! इस जगत् की उत्पत्ति, प्रलय और पालन का हेतु क्या है? किस ज्ञान से मोह और माया का विच्छेद होता है? संसारसागर को पार करने का उपाय क्या है? श्रीमन्नारायण ऋषि ने उत्तर दिया, 'हे देवर्षे! वास्तव में परमतत्त्व तो भगवती जगदम्बा ही हैं, जिनको जानने पर जगत्भ्रम नहीं रहता।'

**येन ज्ञातेन मर्त्योहि जायते न जगत्भ्रमः**

(देवीभागवत ०८.०१.१५)

वेद, शास्त्र, पुराण, ऋषि, मुनि, योगी – सब भगवती की उपासना को ही श्रेष्ठ मानते हैं। ब्रह्माजी ने मनु को भगवती भुवनेश्वरी की उपासना का उपदेश दिया था। तब शतरूपा और मनु ने भगवती की स्तुति की, 'हे जगत्कारिणी माँ! हम आपके चरणों में नमन करते हैं।'

**नमो नमस्ते देवेशि जगत्कारणकारणे । शंखचक्रगदाहस्ते नारायणहृदाश्रिते ।।**

(देवीभागवत ०८.०१.२४)

**********************************************************************************

'हे वेदमूर्ति ! महादेवप्रिये ! सर्वमंगलरूपा सर्वार्थसिद्धिदे ! हे नारायणि ! आपको नमन है।'

**सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तुते ।।**

(देवीभागवत ०८.०१.२८)

'मधु-कैटभादि को मारकर आपने जगत् का कल्याण किया। हे माँ! हम आपको बारम्बार नमन करते हैं।' इस प्रकार स्तुति करने पर माँ प्रकट हो गयी। माँ ने कहा, 'वत्स ! मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो।' मनु ने कहा, 'माँ ! सृष्टि के सृजन का कार्य सरलतया हो सके।' माँ ने 'तथास्तु' कहा और अन्तर्धान हो गयीं। 'हे नारद ! ब्रह्माजी अपने पुत्रों से घिरे चिन्तित थे। तभी उनकी नासिका से एकाङ्गुल बड़ा वराह-शिशु प्रकट हो गया।

**वराहपोतो निरगादेकाङ्गुलप्रमाणतः**

(देवीभागवत ०८.०२.०२)

क्षणमात्र में वह हाथी-जैसा हो गया। ब्रह्माजी समझ गये, 'ये यज्ञनारायण हैं।' तभी पर्वताकार वराह ने गर्जना से सात्विक प्राणियों को आनन्द एवं नास्तिकों को घोर त्रास प्रदान किया। छन्दोमय स्तवन से वराह भगवान् की भावपूर्वक होकर स्तुति की। प्रसन्न वराह भगवान् जल में प्रविष्ट हो गये तथा आघ्राण-शक्ति से पृथ्वी को खोजकर, दाढ़ों पर रखकर जल से बाहर ले आये।

**आघ्रायाघ्रायसर्वेशो धरामासादयन्दनैः । भूमिं स देवदेवेशो दंष्ट्रयोदाजहार ताम् ।।**

(देवीभागवत ०८.०२.१५)

उनकी भव्य झांकी की स्तुति ब्रह्मादि देवता करने लगे, 'हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्तसंतापहर्ता ! आपकी जय हो।

**जितं ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामार्तिनाशन । खर्वीकृता सुराधार सर्वकामफलप्रदः।।**

(देवीभागवत ०८.०२.१८)

'हे यज्ञरूप नारायण ! आप ही जगत् की व्यवस्था के हेतु हैं। आपको बारबार नमन है। आपके रोम-रोम में यज्ञ-वितान है। तभी भगवान् का मार्ग रोककर हिरण्याक्ष आ गया। भगवान् ने सन्ध्याकाल से पूर्व ही गदा प्रहार से उसे मार दिया तथा पृथ्वी को अपने संकल्प से जल पर स्थिर कर दिया और वैकुण्ठ चले गये। ब्रह्माजी ने यज्ञ द्वारा यज्ञेश की उपासना करके मनु से सृष्टि वृद्धि के लिए कहा तथा वर्णाश्रम धर्म की सुव्यवस्था का आदेश भी दिया।

**धर्ममाचार शास्त्रोक्तं वर्णाश्रमनिबन्धनम्**

(देवीभागवत ०८.०३.०४)

सन्तति सदाचारी हो, शास्त्रानुशासित हो, कन्याएँ श्रेष्ठ मनीषियों की सेवा करें। मनु ने ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर प्रजा बढ़ाई। उनको प्रियव्रत व उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए तथा आकूति, देवहूति, प्रसूति – तीन पुत्रियाँ भी हुई।

**आकूति प्रथमा कन्या द्वितीया देवहूतिका । तृतीया च प्रसूतिर्हि विख्याता लोकपावनी ।।**

(देवीभागवत ०८.०३.११)

आकूति का रुचि से, देवहूति का कर्दम से, प्रसूति का दक्ष से इनका विवाह किया गया। दक्ष तथा प्रसूति से ये सारा विश्व रचा गया। (**यासां लोक इमाः प्रजाः**) रुचि आकूति से यज्ञनारायण, कर्दम देवहूति से सांख्यशास्त्रप्रवर्तक कपिल हुए। इन्होंने ही ध्यानयोग द्वारा अध्यात्मज्ञान का विस्तृत विवेचन अपनी माँ को किया तथा वे पुलहाश्रम में ही साधना करते है। मनुपुत्र प्रियव्रत पितृसेवा में लगे रहते थे। विश्वकर्मापुत्री वर्हिष्मती से उनका विवाह हुआ। इनके दस पुत्र हुए, जिनके नाम हैं – आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, सवन, कवि, मेधातिथि, हिरण्यरेता, ऊर्ध्वरेता और अग्निहोत्र। इनमें से महावीर, सवन, कवि, ऊर्ध्वरेता परमहंस हो गये। प्रियव्रत की दूसरी पत्नी से उत्तम, तामस, रैवत – तीन पुत्र हुए। प्रियव्रत प्रथम चक्रवर्ती हुए। ग्यारह अर्वुद साल तक शासन किया तथा विलक्षण कार्य किया। सूर्यास्त के उपरान्त रात्रिरूप अन्धकार के निवारणार्थ दिव्यरथ पर ये बैठकर सूर्य के पीछे चलते रहे।

*************************************************************************************

फलतः सात परिक्रमा की। सात दिन तक रात नहीं होने दी। सात परिक्रमाओं से रथ के पहियों की पट्टियाँ ही सात समुद्र हैं तथा जम्बू, प्लक्ष, कुश, क्रोच, शाक, शाल्मलि, पुष्कर – ये सात द्वीप बन गये – १. जम्बूद्वीप – क्षारोद (लवणाब्धि) से घिरा इसके राजा आग्नीध्र हुए। २. प्लक्षद्वीप – इक्षुरसोद से घिरा इसके राजा इध्मजिह्व हुए। ३. शाल्मलिद्वीप – सुरोद से घिरा इसके राजा यज्ञवाहु हुए। ४. कुशद्वीप – घृतोद से घिरा इसके राजा हिरण्यरेता हुए। ५. क्रौंचद्वीप – क्षीरोद से घिरा इसके राजा धृतपृष्ठ हुए। ६. शाकद्वीप – भव्यद्वीप दधि मण्डोद सागर से घिरा इसके राजा मेधातिथि हुए। ७. पुष्कर द्वीप – शुद्धोदक से घिरा इसके राजा अग्निहोत्र हुए। ऊर्जस्वती नाम की कन्या का विवाह शुक्राचार्य से हुआ।' व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! श्रीनारायण बोले, 'हे नारद! द्वीपों का विस्तार अनन्त है। तदपि मैं संक्षेप में आपसे कहता हूँ। जम्बूद्वीप लक्षयोजन प्रमाण वाला कमलकोशवत् गोलाकार है। इसमें नवखण्ड या वर्ष हैं; जो आठ पर्वतों से विभक्त हैं – १. मध्यखण्ड, २. कनकमय रम्यकवर्ष, ३. कुरुवर्ष, ४. हरि वर्ष, ५. किंपुरुष, ६. भारतवर्ष, ७. केतुमाल, ८. भद्राश्व, ९. हिरण्यक। मन्दरपर्वत पर विशाल आम्रफलपूरित महावृक्ष, जिसके फलों के रस से अरुणोदा नामक नदी बहती है। यही श्रीअरुणा माँ का स्थान है। इन्हीं की कृपा से जाम्बूनद (स्वर्ण) उत्पन्न हुआ।

**अस्याः पूजा प्रभावेण जाम्बूनदमुदावहत्**

(देवीभागवत ०८.०५.३१)

इनको, आद्या, माया, अतुला, अनन्ता, पुष्टि, दुष्टनाशिनी, कान्तिदायिनी भी कहते हैं। श्रीमन्नारायण कहते हैं, 'नारद! ये अरुणोदा मन्दराचल से निकलकर इलावृत्त वर्ष के पूर्व भाग में गिरती है। मेरुमन्दर पर जामुन का महावृक्ष है। उसके फलों से जम्बु नाम की नदी बहती है। ये इलावृत्त से दक्षिण की ओर बहती है। यहाँ पर जम्बुनादिनी देवी हैं, जिन्हें कोकिलाक्षी, कामकला, करुणा, कामपूजिता, धन्या भी कहा जाता है। जम्बूनदी के तट की मिट्टी भी स्वर्णमयी है जो शृंगारपूरक आभरण के काम आती है। सुपार्श्व पर्वत पर कदम्ब वृक्ष है। उससे बहती मधु की पाँच धाराएँ इलावृत्त के पश्चिमतट पर धारेश्वरी देवी का मन्दिर है। ये देवपूज्या, महोत्साहा, कालरूपा, महामना, कर्मफलदा, आदि नव नामो से प्रसिद्ध है। हे नारद! कुमुद पर्वत पर वटवृक्ष की शाखाओं से कामधेनु समान दूध, दही, घी, अन्न, गुड़ वस्त्रादि की धाराएँ इलावृत्त के उत्तर में बहती है। यहाँ मीनाक्षी देवी विराजती हैं। इनको नीलाम्बरा, नीलकेशी, देमसंघा, वरदा, फलता, मानप्रिया, शिखिवाहना, गर्भभू आदि नामों से पुकारा जाता हैं। इनकी कृपा से जीव भौतिकाध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त कर लेता है। इनकी नदी का जल पीने से अभाव नहीं रहते, दुश्चिन्ता नहीं रहती, जरा-पलित, रोग, कलेश, नहीं सताते। प्राणी सदा आनन्द-निमग्न रहते हैं। हे नारद! इस प्रकार सुमेरु का मुख्यतः स्वरूप मैंने बता दिया। इसी के साथ और भी बीसों पर्वत इसकी शोभा बढाते हैं। जिनमें नाग, हंस, नारद, ऋषभ, शंख, कपिल, त्रिकूट, निषध आदि मुख्य हैं।'

श्रीनारायण ने कहा, 'हे नारद! सुमेरु के पूर्व में जठर देवकूल पर्वत है, जो अट्ठारह योजन लम्बे, दो हजार योजन चौडे हैं। पश्चिम में पवमान व परियात्र पर्वत हैं। दक्षिण में कैलाश व करवीर, उत्तर में त्रिशुद्ध व मकर नामक पर्वत हैं। इन सबका विस्तार पूर्ववत् ही है, इस देदीप्यमान पर्वत के ऊपर ब्रह्मपुरी; जो दस सहस्र योजन वर्गाकार है। तदनन्तर आठों लोकपालों की अष्टपुरियाँ (मनोवती, अमरावती, तेजवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गन्धवती, यशोवती) हैं, जो वर्गाकार २५०० योजन हैं। मेरुपर्वत पर ही वामन बलि के प्रसंग में वामन भगवान् ने ब्रह्माण्ड कटाह का भेदन कर गंगाजी को उत्पन्न किया था। ये विष्णुपदी ध्रुव को, सप्तर्षियों को, कैलाश सहित शिव को पवित्र करती हुई लोक कल्याणार्थ भूतल पर विराजमान हैं। इनकी चार धाराएँ सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा हैं। इनमें से सीता गन्धमादन होती हुई भद्राश्ववर्ष (तिब्बत, आसाम) में होती हुई पूर्व सागर में गिरी। दूसरी चक्षुष नदी (सिन्धु) केतुमाल वर्ष होती हुई पश्चिम अरब सागर में मिली, अलकनन्दा हेमकूट से उत्तर प्रदेश बिहार होती हुई बंगाल की खाडी दक्षिण सागर में मिली। यहीं श्रेष्ठ गंगासागर संगम है। ये परम पावन नदी है। इसमें स्नानार्थ जाने वाले प्राणी को पग-पग पर अश्वमेधादि यज्ञों का फल मिलता है।

**यस्याः स्नानाय सरतां मनुजानां पदे पदे। राजसूयाश्वमेधादि फलं तु न हि दुर्लभम् ।।**

(देवीभागवत ०८.०७.३१)

***********************************************************************************

तदनन्तर भद्रा, गुप्तसरस्वती नाम से उत्तरकुरु को पवित्र करती हुई विलीन ही रहती है। हे नारद! भारत वर्ष ही कर्मक्षेत्र है। अन्य वर्ष भोगक्षेत्र हैं।

**तत्रापि भारतं वर्ष कर्मक्षेत्रमुशन्ति हि । अन्यानि चाष्टवर्षाणि भौमस्वर्ग प्रदानि च ।**
**स्वर्गिण्यं पुण्यं शेषस्य भोगस्थानानि नारद ।।**

व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय! तदनन्तर श्रीमन्नारायण ने कहा, 'हे नारद! जम्बुद्वीपस्थ नवखण्ड निवासी प्राणी सभी विविध विधियों से भगवती की ही उपासना करते है, इलावृत्त वर्ष में महादेव पार्वती सहित रहते हैं। शिव के अतिरिक्त अन्य पुरुष नही रह सकता। जो जाता भी है, वह भी स्त्री बन जाता है। शिवजी भगवान् संकर्षण की पूजा करते हैं। भद्राश्ववर्ष में धर्मपुत्र भद्रश्रवा हयग्रीव की पूजा करते हैं।

**ॐ नमो भगवते धर्माय आत्मविशोधनाय नमः।।**

हे वेदोद्धारक देव! हम आपके चरणो में अनन्त प्रणाम करते हैं। नारायण कहते है, 'नारद! हरिवर्ष में दैत्येन्द्रनन्दन प्रह्लादजी परमाराध्य नृसिंह भगवान् की उपासना करते हैं। मन्त्र अद्भुत शक्तिसम्पन्न हैं।

**ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस**
**ॐ स्वाहा अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः क्ष्रौं ।।**

सहसा प्रह्लादजी प्रार्थना करते हैं, जिसे सामान्य सोच वाला प्राणी नहीं कर सकता, 'हे प्रभो! विश्व का कल्याण हो। खल भी प्रसादयुक्त हो जाएँ। प्राणियों में परस्पर सद्भाव हो। हमारा मन-बुद्धि अधोक्षज भगवान् के चरणों में लग जायें।'*

**स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी**

(देवीभागवत ०८.०९.०३)

हे प्रभो! हमें दुष्ट का संग न मिले, हमें सत्संग मिले, आपके भक्तों के बीच बैठने का अवसर मिले। केतुमाल वर्ष में श्रीलक्ष्मीजी कामदेवरूप भगवान् का मंत्र –

**ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैनिर्वलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां**
**चाधिपतये षोडषकलाय छन्दोपमाय अन्नमयाय अमृतमयाय सर्वमयाय महसे ओजसे**
**बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते दुभपयभूत ।।**

'हे देव! संसारभर की स्त्रियाँ विनाशी मरणधर्मा पति की प्राप्ति में जीवन बिता देती है। जबकि वास्तविक पति तो आप हैं, जो सर्वथा रक्षणकर्म में समर्थ है, वही तो वास्तविक पति हो सकता है।' रम्यक वर्ष में मनुजी मत्स्य भगवान् की स्तुति करते हैं। हे नारद! हिरण्मय वर्ष में अर्यमा (पितृश्रेष्ठ) भगवान् कच्छप की उपासना करते हैं। उत्तर कुरुवर्ष में पृथ्वी देवी वराहभगवान् की उपासना करती हैं। किंपुरुषवर्ष में हनुमानजी श्रीराघवेन्द्र की उपासना करते हैं।

**ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नमः आर्यलक्षण शील व्रताय नमः ।**
**उपशि क्षितात्मने उपातित लोकाय नमः साघुवादन निकषणाय नमो ।**
**ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाभागाय नमः।।**

'हे प्रभो! आपका अवतार तो मानवों को शिक्षित करने के लिए हुआ है। केवल राक्षसों के वधार्थ नहीं हुआ। अन्यथा आत्माराम को सीताकृत व्यसन कैसे?'

--------------------

* पूज्य धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज को प्रेरणा इसी प्रसंग से मिली। फलतः अनादिकाल से चले आ रहे लुप्तप्रायः (किन्तु इन परमार्थिक) उद्घोषों को जनता-जनार्दन की वाणी का अलंकरण बनाने का बीड़ा उठाया, जिसमें वे पूर्णतः सफल भी रहे। 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो, गौहत्या बन्द हो, गौमाता की जय हो, हर हर महादेव।।' - का नारा समवेत स्वर में देते हैं।

*******************************************************************************

**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।**
**कुतोन्यथा स्यात् रमतः स्व आत्मनः सीता कृतानि व्यसनानीश्वरस्य ।।**

(भागवत ०५.१९.०५)

प्राणीमात्र को चाहिए कि श्रीराम की उपासना करे। श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद ! ब्रह्माण्ड का अलंकरण भारतवर्ष में स्वयं मैं नारायण और नर रूप से करता हूँ। हे नारद ! तुम मेरी उपासना करते हो।'

**ॐ नमो भगवते उपशमशीलाय उपरत अनात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय**
**परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः ।।**

'हे नारद ! इस पावनतम भारतवर्ष में मलय, मैनाक, त्रिकूट, ऋष्यमूक, श्रीशैल, महेन्द्र, विन्ध्य, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, हिमालयादि पर्वत हैं। स्मरणमात्र से पवित्र करने वाली पापविनाशिनी – कावेरी, तुंगभद्रा, तापी, गोदावरी, रेवती, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती, सिन्धु, गंगा, यमुना, सरयू आादि अनेक नदियाँ भारतवर्ष में ही सुलभ हैं। अतः भारतभूमि गौरवमयी है। यहाँ देवता भी जन्म की स्पृहा करते हैं। भारतभूमि पर जन्म प्राप्त करने वाले प्राणियों ने कौन से पुण्य किये जो कि ये भगवान् की कृपा पाने के पात्र बने। उनकी सेवा करने के अधिकारी बने। हमें भी ये सौभाग्य मिले तो क्या बात हो।'

**अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।**
**यैर्जन्मलब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहा हि नः ।।**

(देवीभागवत ०८.११.२०, भागवत ०५.१९.२१)

दुष्कर तप, यज्ञ, व्रतादि से क्या फल? जो मात्र फल्गु स्वर्ग मिला, जहाँ नारायणस्मृति भी सम्भव नहीं। भोग ही भोग है, यहाँ योग नहीं –

**किं दुष्कैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैः दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ।**
**न यत्र नारायण पादपंकजस्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ।।**

(देवीभागवत ०८.११.२३)

कल्पावधि किन्तु नाशशील स्वर्ण को त्यागकर यदि अल्पावधि भारत–भू प्राप्त होवे तो श्रेष्ठ ही है; क्योंकि अभयपद को पाने के लिए भारतवर्ष ही श्रेष्ठ है।

**कल्पायुषां स्थान जयात्पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयोवरम् ।**
**क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयात्य भयं पदं हरेः ।।**
**न यत्र वैकुण्ठ कथा सुधापगा न साधवो भागवतास्तदा श्रयाः ।**
**न यत्र यज्ञेश मखा महोत्सवाः सुरेश लोकोपि न वै स सेव्यताम् ।।**

(देवीभागवत ०८.११.२४–२५)

'ये सब विशेषताएँ तो भारतवर्ष में ही है। यहाँ जन्म पाकर भी हम मुक्ति की उपेक्षा करके भुक्ति की ओर लपकते हैं, तो हमसे बडा अभागा कोई नही है। हे नारद ! सकल भूमण्डल का ही नहीं, ब्रह्माण्ड का भी पालन–पोषण भारतवर्ष के हाथ है। पितरों की तृप्ति श्राद्धादि द्वारा, देवों की तृप्ति स्वाहा यज्ञों द्वारा, काकबलि, गोबलि, श्वानबलि, पिपीलिकादि बलि, नागपंचमी में नाग–सर्प, शीतलाष्टमी में गर्दभ इत्यादि के द्वारा पिपीलिका से लेकर ब्रह्मा तक सबका पोषण करके सकल ब्रह्माण्ड के नियामक नन्दनन्दन को भोग लगाकर तृप्त करता है। भारत का वासी (यहाँ की महिमा – शबरी बेर से तृप्त करती है, तो द्रौपदी शाकपत्र से, सुदामा तन्दुलों से ही नारायण को रिझा लेते हैं। नारायण को ही कर्माबाई खिचडी खाने को विवश कर देती है ... आदि उदाहरण हैं।) भारतवर्ष ही कर्म भूमि है। इसके अतिरिक्त भोगभूमि है। यहीं किया गया कर्म उन्नति या अवनति का कारक होता है। अन्यत्र सत्कर्म से पुण्य, दुष्कर्म से पाप नहीं होता है।

*****************************************************************************************

हे नारद! जम्बूद्वीप में आठ उपद्वीप हैं – स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमण, मन्दर, हरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल (लंका)। इस प्रकार जम्बूद्वीप का वर्णन हो गया। हे नारद! जम्बुद्वीप के बराबर परिमाण का क्षार समुद्र है। मेरु के चारों ओर द्वीप, द्वीप के चारों ओर क्षारोदधि, इससे दोगुना प्लक्षद्वीप है। यहाँ विशालतम पाकड़ का वृक्ष है। सप्तजिह्वा वाले अग्नि यहाँ प्रियव्रत पुत्र बनकर इध्मजिह्व रूप से हैं। इध्मजिह्व के पुत्र हैं – शिव, यवस, भद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय। सात नदियाँ तथा सात पर्वत भी हैं। यहाँ हंस, पतंग, उर्ध्वायन और सत्यांग – ये चार वर्ण होते हैं। यहाँ अवस्था एक सहस्र वर्ष होती है। ये सूर्योपासक होते हैं।'

'प्लक्षद्वीप से दोगुना प्रमाण वाला इक्षुरस सागर है। शाल्मलिद्वीप भी दो गुणा है। इतने ही परिमाण का मदिरा समुद्र है। यहाँ सेमर का महावृक्ष है, गरुड़जी भी यहीं रहते हैं। यज्ञवाहु यहाँ के शासक हैं। इसके भी सात खण्ड हैं – सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन और विज्ञात। सात नदियाँ, सात पर्वत एवं चार वर्ण यहाँ है; जो कि श्रुतधर, वीर्यधर, वसुधर, इषुधर है। चन्द्रोपासक यहाँ के प्राणी हैं। मदिरोदधि से दुगुना कुशद्वीप है। घृतसागर से ये घिरा है, यहाँ हिरण्यरेता राजा हैं – वसु वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त, नामदेव। सात पर्वत सात नदियाँ है, चार वर्ण है – कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक। होम द्वारा ये अग्नि के उपासक हैं।'

'हे नारद! तदनन्तर है – क्रौंचद्वीप। क्रौंचद्वीप दुग्धोदधि से घिरा है। यहाँ क्रौंच नामक पर्वत है, जिसे कार्तिकेयजी ने दो टुकड़ो में विभक्त कर दिया था। घृतपृष्ठ शासक ने सप्तपुत्रों को (आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण, वनस्पति) सप्तद्वीप प्रदान किये। सात पर्वत, सात नदियाँ चार वर्ण (पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक) हैं। ये वरुणोपासक हैं। तदनन्तर बत्तीस लाख योजन वाला दधिसागर से घिरा शाकद्वीप है। मेधातिथि राजा हैं। पुरोजब, मनोजक, पावमान, धूमानीक, चित्ररेख, बहुरूप, विश्वरूप – ये सात पुत्र, सात खण्ड, सात नदियाँ, सात पर्वत तथा चार वर्ण हैं। (सत्यव्रत, कुतुव्रत, दानव्रत, अनुव्रत) वायु उपासक होते हैं। हे नारद! तदनन्तर मधुर जल के सागर से घिरा पुष्कर द्वीप हैं, जिसमें विशाल एक स्वर्णिम दिव्य कमल है। जहाँ ब्रह्मोद्भव होता है। मानसोत्तर नामक पर्वत के चारों ओर चार पुरियाँ हैं, जहाँ लोकपाल बसते हैं। सुमेरू की परिक्रमा करने से देवताओं का दिन उत्तरायण तथा रात दक्षिणायण हैं। वीतिहोत्र यहाँ के राजा हैं। इन्होंने रमणक तथा धातकि दो पुत्रों को द्वीप के दो खण्ड करके सौंप दिया। ब्रह्मा की उपासना होती हैं। हे नारद! पुष्करद्वीप के उपरान्त लोकालोक पर्वत है, जहाँ केवल देवता रहते हैं। सभी नक्षत्र इसके अधीन हैं। हे नारद! समस्त लोकों का परिमाण है – 'पचास करोड़ योजन'। उसमें चौथा हिस्सा है – यह 'लोकालोक पर्वत'।

**कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिभिर्गणितस्य च ।। भूगोलस्य चतुर्थांशो लोकालोकाचलो मुने ।**

(देवीभागवत ०८.१४.०८–०९)

चार दिग्गजों (ऋषभ, पुष्पचूड, वामन और अपराजित) द्वारा ये लोकालोक शोभित है, लोक सुरक्षित है। अष्टसिद्धियों विष्वक्सेनादि पार्षदों सहित नारायण यहाँ रहते हैं। मृत–चेतना शून्य अण्ड में रहने से सूर्य – मार्तण्ड है। हिरण्यमय ब्रह्माण्ड से प्रकट होने से सूर्य हिरण्यगर्भ है, सकल लोक की आत्मा सूर्य है।

**सर्वजीव निकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः**

'हे नारद! जितना परिमाण भूमण्डल का है, उतना ही द्यूमण्डल का होता है। जैसे मटर की दाल के दोनों भाग बराबर होते हैं। दक्षिणायन में गति तीव्र होती है, अतः दिन छोटा और रात बड़ी होती है। जब सूर्य उत्तरायण में होते है, गति धीमी होती है; अतः दिन बड़ा रात छोटी होती है। विषुवत् रेखा भूमध्य पर दिन–रात बराबर होते हैं। मेष व तुला राशि पर सूर्य के रहते दिन–रात समान होते हैं।

## सूर्यगति, ग्रहकक्षा, शिशुमारचक्र ध्रुवमण्डल, पातालान्त सप्तलोक, अधः सप्तलोक वर्णन, नरकलोक स्थिति, कुकर्मभेद से नरकभेद, नरक–भेद, तिथि क्रम से नैवेद्य समर्पण

श्रीमन्नारायण भगवान् कहते हैं, 'हे नारद! सूर्य की गति तीव्र, मन्द व सम भेद से तीन प्रकार की है। ग्रहों के स्थान तीन ही हैं –

***********************************************************************************

१. जारदगव मध्यमार्ग, २. ऐरावत उत्तरमार्ग, ३. वैश्वानर दक्षिणमार्ग। हे नारद! सूर्य उत्तरायण में आरोहण तथा दक्षिणायन में अवरोहण होता है। यद्यपि सूर्य का उदयास्त नहीं होता तदपि व्यवहार काल में मान लिया जाता है।

**नैवास्तमनर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः । उदयास्तमनाख्यं हि दर्शना दर्शनं रवेः ।।**

(देवीभागवत ०८.१५.२४)

'हे नारद! इन्द्रपुरी से संयमनी तक सूर्य को छः घण्टे में (पन्द्रह घटी में) सवा दो करोड़, बारह लाख, पचहत्तर हजार योजन चलना पड़ता है। बारह अरों (मासों), तीन धुरों (मौसम), छः नेमियों (ऋतुओं) से सजा हुआ ये सूर्य रथ छत्तीस लाख योजन विशाल है। अरुण इसके सारथी हैं। गायत्री आदि सप्त छन्द ही सप्ताश्व हैं। साठ हजार बालखिल्यादि ऋषि इनके रथ पर चलते हैं। सूर्य प्रतिदिन नौ करोड़ पचास लाख योजन की परिक्रमा करते हैं। ये प्रतिक्षण में दो हजार योजन चलते हैं।

**द्विसहस्त्रं योजनानां स गव्यूत्युत्तरं क्षणात्**

(देवीभागवत ०८.१५.४५)

'हे नारद! जैसे चाक पर चलने वाले चींटी आदि कीट, चाक की गति के साथ-साथ अपनी भी भिन्न गति रखते हैं। गाड़ी चल रही है (ट्रेन) और उसके सभी डिब्बों में घूम-घूम कर पुस्तकादि बेचने वाला विक्रेता भी चल रहा है। टीटी चल रहा है, वैसे ही सांवत्सरिक गति के साथ-साथ नक्षत्र गति भी है। संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर, इदवत्सर भेद से पञ्चविध है। सूर्य एक वर्ष में जिस मार्ग को पूरा करते हैं, चन्द्रमा एक मास में पूरा कर लेते है। सूर्य से एकमासीय मार्ग को सवा दो दिन में पूरा करते हैं। शुक्लपक्षीय कलाओं से देवताओं तथा कृष्णपक्षीय कलाओं से पितरों को तृप्त करते हैं। अतः सकल जीवधारियों के प्राणधन है चन्द्र। चन्द्रलोक से तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है। नक्षत्रमण्डल से दो लाख योजन ऊपर शुक्र रहते हैं। ये सूर्य के साथ या आगे-पीछे थोड़ा रहते हैं। शुक्र प्राणीमात्र के लिए शुभ हैं, ये वर्षा के विघ्नों को दूर करतें हैं।

**वृष्टिवृष्टम्भशमनो भार्गवः सर्वदा मुनेः**

(देवीभागवत ०८.१६.२८)

शुक्र से दो लाख योजन ऊपर बुध है। ये भी सूर्य के आसपास ही रहते हैं। ये जैसे ही सूर्य का अतिक्रमण करते हैं, आँधी-तूफान से अवर्षण होता है। बुध से दो लाख योजन ऊपर मंगल है। यदि यह वक्री न हो, तो लगभग तीन पक्ष एक राशि पर रहता है; अशुभप्रायः है। इनसे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति हैं। वक्री न रहें, तो वर्ष भर रहते है। एक राशि पर ये प्रायः विद्वानों और ब्राह्माणों के लिए शुभ हैं। यहाँ से दो लाख योजन ऊपर घोरातिघोर शनि है। शनि मन्दचारी ढाई वर्ष तक एक राशि पर रहता है, प्रायशः क्लेशप्रद है। यहाँ से ग्यारह लाख योजन है – सप्तर्षिमण्डल। ये ध्रुवलोक की प्रदक्षिणा करते हैं। ध्रुवलोक ही विष्णु पद है। हे नारद! काल के द्वारा स्थापित ध्रुवमण्डल सर्वप्रणम्य है। नक्षत्रमण्डल ग्रहमण्डल की अपर संज्ञा है – शिशुमार चक्र (ज्योतिषचक्र) जो कि नीचे शिर ऊपर पूँछ किये है। धाता-विधाता पुच्छ में, सप्तर्षि कटिभाग में, उत्तरायण के चौदह नक्षत्र दाहिने भाग में (अभिजित् से पुनर्वसु), दक्षिणायन के नक्षत्र वाले भाग में (पुष्य, उत्तराषाढ़ा) ऊपर के होठ में अगस्त्य, नीचे यमराज, मुख में मंगल, जननेन्द्रिय में शनि, ककुद पर गुरू, छाती पर सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्र, 'हे नारद! ये नारायण ही चक्ररूप में रहते हैं। दोनों संध्याओं में '**ॐ नमो ज्योतिर्लोकाय कालाय अनिमिषापतये महापुरुषायाधिपतये नमः**' इनका ध्यान करें।'

'हे नारद! सिंहिकापुत्र राहु सूर्य से दस हजार योजन नीचे है। सूर्यबिम्ब दस हजार योजन, चन्द्र बारह हजार योजन, राहु तेरह हजार योजन है। राहु सूर्य और चन्द्र को पीड़ित करता है। अतः श्रीहरि ने चक्र से उनकी रक्षा की। चक्र की ज्वाला से दग्ध राहु लौट जाता है। यही उपराग या ग्रहण है। इनसे नीचे क्रमशः सिद्ध, चारण, विद्याधर, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच आदि विहार करते है। मेघ दिखने तक अन्तरिक्ष हैं। गरुड़, बाज, सारस, हंस के उड़ने की क्षमता तक सौ योजन नीचे पृथ्वी है। हे नारद! भू-विवर में सप्तलोक हैं। सभी एक हजार योजन विस्तार वाले कहे गये हैं तथा ये परस्पर दस हजार योजन दूर भी हैं। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल,

रसातल, पाताल – इनमें भव्यता और दिव्यता स्वर्ग से भी अधिक है। इन्हें सुदर्शनचक्र के अलावा किसी का भय नहीं होता। हे नारद! सप्तलोकों के विषय में इस प्रकार विचार करते हैं –

**१. अतल लोक –** अतललोक में मयपुत्र बल राजा है। **२. वितल लोक –** वितल में हाटकेश्वर महादेव हैं। पार्वती सहित हाटकेश्वर स्वर्णिम नदी को जल से पूजित होते हैं। **३. सुतल लोक –** विरोचन पुत्र बलि भगवान् की हेतु की अनुकम्पा मानता हुआ वैभव को तुच्छ विभु को स्वच्छ मानकर यहाँ रहता है। श्रीहरि उसके द्वारपाल हैं। एक बार दिग्विजय में रावण यहाँ भी आया तो वामन भगवान् ने पैर के अँगूठे से दस हजार योजन दूर फैंक दिया। **४. तलातल लोक –** मय दानव ही त्रिपुरेश है इसके नगर जलाकर शिव ने इसे तलातल मे बसाया था उत्तम कोटि वैज्ञानिक मय हैं। **५. महातल लोक –** हे नारद! कद्रुवंशीय सर्प यहाँ रहते हैं अनेक फणवाले कुहक–तक्षक–सुषेण–कालिय ये मात्र गरुड से डरते है। **६. रसातल लोक –** यहाँ कालेय–पणि–निवात कवच–हिरण्यपुरवासी दैत्य रहते हैं। ये देवविरोधी विष्णु से भीत यहाँ रहते है। **७. पाताल लोक –** यहाँ वासुकि नागराज है। शंख, कुलिक, श्वेत, धनंजय, महाशंख, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर, देवदत्तादि रहते हैं। मस्तकमणियों से पाताल के अँधेरे को मिटा देते हैं। पाताल से तीस हजार योजन नीचे विष्णु की तमोगुणी कला रहती है, जो अनन्त नाम वाली है। ये ही संकर्षण हैं। इन्हीं के सहस्र फणों पर भूमण्डल है। सरसों के दाने जैसा शिवरूप, ये संकर्षण नाग कन्याओं द्वारा सेवित है। सभी देव, दनुज, मनुज गन्धर्वादि उनकी स्तुति करते हैं।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! नारायण नारदजी से कहते हैं, 'हे नारद! इस प्रकार ऊर्ध्व, अधः, सर्वत्र, सकल ब्रह्माण्ड का निरूपण कर दिया। अपनी कर्म सम्पत्ति के अनुसार जीव लोक प्राप्त कर सुख–दुःख भोगता रहता है। 'नारद ने पूछा, 'प्रभो! जीव को किस कर्म का क्या फल प्राप्त होता है? कौन–सा लोक मिलता है? आप सर्वसाक्षी सर्वसमर्थ हैं, अतः कृपया बताने का अनुग्रह करें।' श्रीमन्नारायण बोले, 'नारद! कर्त्ता की श्रद्धा त्रिविध (सात्विक, राजस और तामस) होती है। अतः फल भी त्रिविध सुखरूप, दुःखरूप तथा मोहरूप होता है। हे नारद! दक्षिण दिशा में अग्निष्वात्तादि पितर रहते हैं। पृथ्वी से नीचे अतल से ऊपर ये स्थान है।'

**भूमेरधस्तादुपरि त्वतलस्य च नारद**

(देवीभागवत ०८.२१.१६)

'यहीं रहकर यमराज अपने दूतों सहित समागत प्राणियों को कर्मानुसार फल देते हैं। असंख्य नरक यातनाओं में प्राधान्यतः २१ कदाचित् २८ सर्वमान्य हैं। 'नारद! किस कर्म से कौन सा नरक मिलता है, सुनो –

**०१. तामिस्र :** हे नारद! जो परधन, परस्त्री, परपुत्र का अपहरण करते हैं; उनको यमदूत कालपाश में बाँधकर तामिस्र नरक में डाल देते हैं। वहाँ जीव भारी क्लेश भोगता है। **०२. अन्धतामिस्र :** परस्त्रीगामी प्राणी को अन्धा करके अन्धकारावृत गर्त में डालते हैं। **०३. रौरव :** मैं, मेरा, तू, तेरा करता हुआ जो प्राणी स्वार्थान्ध हो, स्वपोषण व कुलपोषण में लगा रहता है, किसी की हत्या भी करके स्वार्थ पूरा करता है। वह रौरव नरक में गिरता है। रूरू नामक सर्प से भी भयंकर कीट उस कुण्ड में रहकर पतित व्यक्ति को काटते हैं। वह रौरव; जिन्हें हमने मार दिया वे ही 'रू', 'रू' बनकर हमें काटते हैं। **०४. महारौरव :** रौरव से बड़ी यातनायें महारौरव में होती हैं। **०५. कुम्भीपाक :** उदर की पूर्ति के लिए मांस पकाकर खाने वाला जीव खोलते तेल में डालकर पकाया जाता है। जो जीव मारा, उसके रोम संख्या के बराबर वर्ष तक इस कुम्भीपाक में खाने तथा मारने वाला – दोनों ही पकाया जाता है। **०६. कालसूत्र :** माता–पिता से, ब्राह्मण से द्रोह करने वाला, वेदनिन्दक, अग्नि सूर्य ताप से तप्त भूखा–प्यासा तड़पता है। जीव रोता, चीखता, चिल्लाता है, बेचैन रहता है। **०७. असिपत्रवन :** वेदमार्ग की उपेक्षा करके पाखण्ड–निरत जीव तलवार से तीखे पत्रों वाले वन में गिराया जाता है। धर्मध्वजी ठेकेदार यहीं के लिए आरक्षित हैं। **०८. शूकरमुख :** अधर्मपूर्वक शासन कर्ता ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देने वाला जीव यहाँ कोल्हू में गन्ने की तरह पेला जाता है। **०९. अन्धकूप :** जूँ, मच्छर, खटमल आदि को मारने वाला, दूसरों को पीड़ा देने वाला, मक्खी–मच्छर आदि रक्त–पायी जीवों से भरे कूप में गिरता है। **१०. कृमिभोजन :** पञ्चमहायज्ञ किये बिना या गौग्रास किये बिना या बिना अतिथि को दिये बिना खा लेता है, वह एक लाख योजन बड़े, कृमिकुण्ड में कीड़ो के लिए गिरता है। कीड़ों को वह खाता, कीड़े उसे खाते हैं।

**************************************************************************************

अत: बिना अतिथि को खिलाये नहीं खाना चाहिए। **११. संदंश :** जो लोग ब्राह्मणादि का धन रत्न बलपूर्वक या जालसाजी से छीन लेते है, वे अग्निकुण्ड में डाले जाते है। उन्हें यमदूत संडासी से पकड़ कर पकाते हैं। **१२. तप्तसूर्मि :** अगम्यागमन करने वाला पुरुष या स्त्री लोहे के तप्त स्त्री पुरुष से आलिंगित किये जाते है। **१३. वज्रकण्टक शाल्मलि :** सभी के साथ गमन करने वाला, पापात्मा, वज्र सम काँटो वाले इस अग्निमय वृक्ष पर चढ़ाया जाता है। **१४. वैतरणी :** धर्ममर्यादा ध्वसंक, राजा, कर्मचारी, उपदेशक, साधु, मठाधीश, पाखण्डाश्रित हो, जीने वाले रक्त, पीव, मलमूत्र, भरी भयंकर वैतरणी में डाले जाते हैं। **१५. पूयोद :** शौचाचारहीन, शूद्रासेवी, पशुप्रवृत्ति के प्राणी जो उच्चवर्ण के होने पर भी कीच करते हैं; वे पूयोद मलमूत्रभरित कुण्ड में गिराये जाते ह। रक्त, मांसादि ही खाना पड़ता है। **१६. प्राणरोध :** उच्चवर्ण में जन्म होने पर भी कुत्ता, गर्दभ आदि पालने वाले या मृगयारत हैं, वे बाणों द्वारा बीधे जाते है; निन्द्य पशु-पक्षी का पालन निषेध है। **१७. विशसन :** दम्भी, पाखण्डी यज्ञों में अविधिपूर्वक पशु-वध करते हैं, वे इस नरक में जाते हैं। **१८. लालाभक्ष :** सगोत्रा से विवाह करने वाला द्विजाति वीर्यपूरित कुण्ड में गिराया जाता है तथा खाने को वही दिया जाता है। **१९. सारमेयादन :** चोर, डाकू, राजसेवकादि आग लगाते, विष देते, परधन हरतें हैं। ये सभी अनीति करते हैं उन्हें ७२० सारमेय (कुत्ते) उन्हें खाते हैं। **२०. अवीथिमान :** जो झूठी गवाही देते हैं, वे अवीथिमान नरक में गिराये जाते हैं। यहाँ जल तरंग-जैसा लगता है। तरंग या जल नहीं, ये पत्थर ही होते हैं। झूठी गवाही देने वाले, एक सौ योजन ऊँचे पर्वत से गिराये जाते हैं। **२१. अय:पान :** द्विज होकर मदिरा पीने वाला यहाँ गरम लोहा पीता है। **२२. क्षारकर्दम :** नीच कुल में उत्पन्न होकर भी उच्चवर्ण के विद्या तपनिष्ठ श्रेष्ठ पुरुषों का आदर नहीं करता, वह अधम इस (क्षार-लवण-कीच) में दु:ख भोगता है। **२३. रक्षोगण भोजन :** अज्ञानी भक्ति-ब्याज से नरबलि देने वाले तथा प्रसाद पाने वाले यहाँ मृत पशुओं द्वारा ही काटे जाते हैं तथा उनका भोजन बनते हैं। **२४. शूलप्रोत :** किसी भी प्रकार के पशु या पक्षी को मनोंरजंन के लिए काटने वाले तथा शूल चुभाकर पीड़ित करने वाले नरपशु इस नरक में गिरकर वैसी ही यातनाएँ ब्याज सहित पाते हैं। **२५. द्वन्दशूक :** साधारण सी बात पर या अकारण ही दूसरों को प्राणान्त कष्ट देने वाले जीव यहाँ भारी सर्पावृत नरक में गिरकर पीड़ा पाते हैं। **२६. अवटनिरोध :** जो पापी किसी को अँधेरी कोठरी में बन्द करके कष्ट देते हैं, उन्हें यमदूत विषैले धूएँ से पीडा देते हैं। **२७. अक्षिपर्यावर्तन :** अतिथि/अभ्यागत के आने पर अप्रसन्न होने वाला यहाँ गिद्दों, कौओं, चीलों से आँख फुड़वाते हैं और पीड़ा पाते है। **२८. सूचीमुख :** स्वयं को धनी, मानी मानकर अभिमान से भरा होकर अन्यों का निरादर करता है, जोर नर शंकालु हो धनचिन्ता में जीता है, मरकर सूचीमुख में गिरता है; वहाँ उसे सुई से गोदा जाता है। हे नारद! धर्मपूर्वक देवी की उपासना करने वाला स्वर्ग पाता है तथा जीवन को व्यर्थ गवाने वाला नरकों की यातना भोगता है।'

नारदजी के द्वारा देव्याराधन विधि, स्थान, समय, स्तोत्रादि के पूछने पर श्रीनारायण ने कहा, 'हे नारद! संसार की सतत परम्परा में आकर जीव जब जगदम्बा की आराधना करता है, तो वे स्वयं उसकी रक्षा करती हैं।'

| तिथि | नैवेद्य | फल | दान-हेतु-वस्तु |
|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | गोघृत | रोगहानि | घृत ब्राह्मण को दान कर दे |
| द्वितीया | शर्करा | दीर्घायुष्य | चीनी ब्राह्मण को दान कर दे |
| तृतीया | गोदुग्ध | कष्टनिवारण | गाय का दूध ब्राह्मण को दान कर दे |
| चतुर्थी | मालपूआ | निर्विघ्नता | मालपूआ ब्राह्मण को दान कर दे |
| पञ्चमी | कदलीफल | बुद्धिवैदग्ध्य | केला ब्राह्मण को दान कर दे |
| षष्ठी | मधु/शहद | सौन्दर्य | शहद ब्राह्मण को दान कर दे |
| सप्तमी | गुड | शोकहानि | गुड़ ब्राह्मण को दान कर दे |
| अष्ठमी | नारियल | सन्तापहानि | नारियल या गोला ब्राह्मण को दान कर दे |

*************************************************************************************

| तिथि | नैवेद्य | फल | दान-हेतु-वस्तु |
|---|---|---|---|
| नवमी | धान का लावा | उभयलोकसौख्य | खील ब्राह्मण को दान कर दे |
| दशमी | कृष्णतिल-मोदक | यमभीतिनिवृत्ति | काले तिल या मोदक ब्राह्मण को दान कर दे |
| एकादशी | गोदधि | मातृप्रसन्नता | दही ब्राह्मण को दान कर दे |
| द्वादशी | चिउडा | मातृप्रेमास्पद | चिउड़ा ब्राह्मण को दान कर दे |
| त्रयोदशी | चणक | सन्ततिवान | चने ब्राह्मण को दान कर दे |
| चतुर्दशी | सत्तू | शिवप्रीति | जौ के सत्तू ब्राह्मण को दान कर दे |
| अमावस्या | खीर | पितृमुक्ति | खीर ब्राह्मण को दान कर दे |
| पूर्णिमा | खीर | पितृमुक्ति | खीर ब्राह्मण को दान कर दे |

पूर्वविहित तिथि के विहित नैवेद्य से ही हवन करने पर अरिष्टनाश होता है।

**तत्तिथौ हवनं प्रोक्तं देवीप्रीत्यै महामुने । तत्तश्यिुक्तवस्तूनामशिषारिष्टनाशनम् ।।**

(देवीभागवत ०८.२४.२७)

**वार नैवेद्य** – रविवार : खीर, सोमवार : दूध, मंगलवार : केला, बुधवार : मक्खन, गुरुवार : खाँड, भृगुवार : चीनी, शनिवार : गोघृत ।

**नक्षत्र नैवेद्य** – नक्षत्र नैवेद्य – अश्विनी : घृत, भरणी : तिल, कृत्तिका : चीनी, रोहिणी : दही, मृगशिरा : दूध, आर्द्रा : मलाई, पुर्नवसु : लस्सी, पुष्य : लड्डू, आश्लेषा : तारफेनी, मघा : शक्करपारा, पू.फा. : कसार, उ.फा. : पापड, हस्त : घेवर, चित्रा : बरी/पकौडी, स्वाति : खर्जूर रस, विशाखा : गुड, अनुराधा : घृतमिली चने के लड्डू, ज्येष्ठा : मधु, मूल : जिमीकन्द, पू.षा. : गुड-चिउडा, उ.षा. : दाख, अभिजित् : खजूर, श्रवण : खजूर, धनिष्ठा : चारक, शतभिषा : पूआ, पू.भा. : मखाना, उ.भा. : मूंग के लड्डू, रेवती : अनार ।

**योग नैवेद्य** – विष्कुम्भ : गुड, प्रीति : मधु, आयुष्मान : घृत, सौभाग्य : दुग्ध, शोभन : दधि, अतिगड : तक्र, सुकर्मा : पूआ, धृत्ति : नवनीत, शूल : ककडी, गंड : कूष्मांड, वृद्धि : मोदक, ध्रुव : कटहल, व्याघात : केला, हर्षण : जामुन, वज्र : आम, सिंह : तिल, व्यतीपात : सन्तरा, वरीयान : अनार, परिघ : बेर, शिव : आंवला, सिद्धि : खीर, साध्य : चिउडा, शुभ : चना, शुक्ल : नारियल, ब्रह्म : नीबू, ऐन्द्र : केशर, वैधृति : सूरन । **करण नैवेद्य** – बव : कसार, बालव : मण्ड, कौलव : फेनी, तैतिल : मोदक, गर : पापड़, वणिज : कद्दू, विष्टि : घेवर, शकुनि : तिल, चतुष्पद : दधि, नाग : घृत, किंस्तुघ्न : मधु । **मास नैवेद्य** – वैशाख : गुडनिर्मित पदार्थ, ज्येष्ठ : मधु, आषाढ : मक्खन, श्रावण : दही, भाद्रपद : चीनी, आश्विन : खीर, कार्तिक : दूध, अगहन : फेनी, पौष : लस्सी, माघ : गोघृत, फाल्गुन : नारियल ।

'हे नारद ! चैत्र शुक्ल तृतीया को महुआ वृक्ष में भगवती की भावना कर पञ्चविध नैवेद्य अर्पित करें। महुआ वृक्ष में बारह नामों (मंगला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मातंगी, काली, कमलवारिणी, शिवा, सहस्रचरणा, सर्वमंगलरूपिणी) से माता की पूजा करें। तदनन्तर बारम्बार प्रणाम करता हुआ उनकी स्तुति करें। उनकी स्तुति, पूजा, स्तोत्रपाठ से श्राद्धकाल में पितर तृप्त होते हैं। जो भी मनोरथ हो वह भक्त का पूर्ण होता है।'

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं अष्टमः स्कन्धः ।।*

*****************************************************************************************

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। नवमः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### मातृशक्ति वर्णन, राधाकृष्ण-तत्व-निरूपण, श्रीकृष्ण ही परासत्ता है, सरस्वती पूजन कवचादि, सरस्वती स्तोत्र, गंगा-सरस्वती व लक्ष्मी का परस्पर कलह, देवियों की शाप-मुक्ति उपाय, देवों देवियों ने भगवती की उपासना से ही फलयाचना

श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद ! श्रीदुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और राधा ये पाँचों ही प्रकृति हैं। धर्मश्रुत को तुम्हें सुनाता हूँ। प्र- प्रकृष्ट, कृति- रचना। शोभन-कर्तृत्व जिनमें रहे वह है, 'प्रकृति'।

**प्रकृष्ट वाचकः प्रश्न कृतिश्च सृष्टि वाचकः । सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ।।**

(देवीभागवत ०९.०१.०५)

**दुर्गा व लक्ष्मी -** परब्रह्म परमात्मा का वाम अंग प्रकृति तथा दक्षिण पुरुष हुआ। सकल लोक में सम्प्राप्त श्री, विद्या, विनय, शोभा, कान्ति, भक्ति, शक्ति; सब भगवती की कला ही हैं। वे स्वर्गलक्ष्मी स्वर्ग में, राज्यलक्ष्मी राजद्वार में, गृहलक्ष्मी घरों में, राजाओं में प्रभारूपा, व्यापारियों में वाणिज्यरूपा, विद्वानों में विद्यारूपा हैं। **सरस्वती -** वाणी, विद्या, बुद्धि तथा ज्ञान की अधिष्ठात्री शक्ति सरस्वती प्राणी को कविता, प्रतिभा, बोधरूपा, विवेकशक्ति, संगीतात्मिका शक्ति देती है।शारदा कृष्ण की रत्नमाला से उपासना करती हैं। इनके बिना विप्रौघ मूक-मृतकवत् रहते हैं।

**यया बिना तु विप्रौघो मूको मृतसमः सदा**

(देवीभागवत ०९.०१.३६)

**सावित्री या गायत्री -** सन्ध्यावन्दन के मन्त्र, तन्त्र यन्त्रादि का मूलाधार हैं। ब्राह्मण प्रिय हैं। **श्रीराधा -** ये परावरा, आद्या, सनातनी, धन्या, मान्या नित्यनिकुञ्जविलासिनी, रसक्रीडानिरता, रासेश्वरी, गोपीरूपा, श्रीराधा जगत का आधार हैं। इन्हें चर्म चक्षुओं से जान पाना असम्भव ही है। हे नारद् ! श्वेतवाराहकल्प में वृषभानु गोपराज के घर उत्पन्न होकर इन्होंने भारतभूमि का भाग्य बढ़ाया था।

*****************************************************************************

कैसा सौभाग्य भारतवर्ष का, जिन्हें ब्रह्मादि भी न देख पाये वे भारत में प्रत्यक्ष दिखीं।

**ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वे दृष्टा च भारते**

(देवीभागवत ०९.०१.५४)

साठ हजार वर्ष तप करके भी ब्रह्मा इनके नखमणि प्रकाश को न देख पाया। प्रत्यक्ष दर्शन की तो बात ही क्या?

**षष्टिवर्ष सहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा । न च दृष्टं च स्वप्नेपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ।।**

(देवीभागवत ०९.०१.५६)

वही श्रीराधिका वृन्दावन में प्रकट हो गयीं। **गंगा –** इन पाँचों देवियों के अतिरिक्त गंगाजी ब्रह्मद्रवा जलस्वरूपा है, ये पापियों के पापों को जलाने के लिए जलती अग्निसमा हैं।

**पापि पायेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी**

(देवीभागवत ०९.०१.६१)

ये विष्णुपदी शिवजटाओं से होती हुई, भारतभूमि पर तपस्वियों की सफलता सिद्ध करने के लिए ही आयी। **तुलसी –**

**छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन बिन तुलसा हरि एक न मानी ।**

**नमो नमो तुलसी महारानी नमो नमो हरि की पटरानी ।।**

विष्णुचरणप्रिया तुलसी (विज्ञान शोध सिद्ध करता है, सतत् प्राण वायुप्रवर्धिका है तुलसी) इनके दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। ये कल्पवृक्षरूपा हैं।

**कल्पवृक्षस्वरूपा या भारते वृक्षरूपिणी । भारतीयानां प्रीणनाय जाता या परदेवता ।।**

(देवीभागवत ०९.०१.७०)

**मनसा –** कश्यप पुत्री, शिवशिष्या, महाविदुषी, शेषभगिनी, नागेश्वरी, नागवाहना। इन्होंने दिव्य तीन लाख वर्ष तक श्रीहरि का तप किया। ये मानसा ही कृष्णावतारी जरत्कारू की पत्नी जरत्कारू बनी हैं। ये ही हैं, 'आस्तीक की माता'। **देवसेना –** ये षष्ठी देवी के नाम से जानी जाती हैं। प्रकृति का ये षष्ठांग हैं, अतः ये षष्ठी हैं। सन्तानोत्पादिका संरक्षिका भी ये ही हैं। इनकी पूजा जन्म से छठे या इक्कीसवें दिन की जाती है। **मंगल चण्डी –** प्रकृति के मुख से उत्पन्न इनकी पूजा मंगल को होती है। ये मंगलस्वरूपा हैं। सभी मांगलिक कर्म इनकी कृपा से सम्पन्न होते हैं। **काली –** दुर्गाजी के ललाट से उत्पन्न काली कराल वन्ध्या। ये कृष्णोपासिका हैं।

**कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैः गुणैः**

(देवीभागवत ०९.०१.९०)

सकल प्रपञ्च की संहारक क्षमता इनमें हैं। **वसुन्धरा –** रत्नगर्भा सर्वशण्या भूमि सबका आधार है। स्वाहा अग्निभार्या (इनके बिना देवताओं को हवि नहीं मिल सकता), स्वधा पितृभार्या (इनके बिना पितर श्राद्धपिण्ड नही पा सकते), दक्षिणा यज्ञभार्या, स्वस्ति वायुपत्नी (आदान-प्रदान इनके बिना निष्फल होंगे), पुष्टि गणेशभार्या (ये निर्बलता नाशिका हैं), तुष्टि अनन्तभार्या (सन्तुष्टिप्रदा), सम्पत्ति ईशानभार्या (इनके बिना सभी दरिद्र हो जाते हैं), धृति कपिलभार्या (ये अधैर्यनाशिका हैं), सती सत्यपत्नी (इनके बिना सब बन्धुता रहित हो जायेंगे), कीर्ति सुकर्मभार्या (भाग्यशालियों को प्राप्त होती है), क्रिया उद्योगभार्या (इनके बिना तो कोई काम चलता नहीं), मिथ्या अधर्मभार्या (धूर्तो द्वारा आहत है, कलि में परिपूर्ण रूप इनका प्राप्त होता है। इनका भाई है – कपट। ये संग-संग रहते है, घर-घर घूमते हैं।) शान्ति व लज्जा सुशीलभार्या (इनके बिना प्राणीजगत नग्ननिर्लज्ज हो जाता है), बुद्धि-मेधा-धृति ज्ञानभार्या (इनके बिना जगत मूर्ख व पागल हो जाये), मूर्ति धर्मभार्या (इनका आश्रय तो परमात्मा भी लेता है और निराकार से साकार हो जाता है), कालाग्नि शिवभार्या (निद्राप्रदा), रात्रि-संध्या-दिवा कालभार्या (काल गणना हेतुभूता), भूख-प्यास लोभभार्या (इनके प्रतिकूल होने पर सभी चिन्ताकुल है), जरा मृत्युभार्या (काल की कन्याएँ हैं, जो ज्वरप्रिया हैं), श्रद्धा-भक्ति वैराग्यभार्या, रोहिणी

**********************************************************************************

चन्द्रभार्या, संज्ञा सूर्यभार्या, शतरूपा मनुभार्या, शची इन्द्रभार्या; पितरों की मानसी कन्या मेनका हिमालयपत्नी हैं।

इस प्रकार ये सभी शक्तियाँ प्रकृति की कलाएँ हैं यावत् स्त्रियाँ संसार में हैं, वे सब भगवती की कला ही हैं। इनके अपमान से (शक्ति का ही अपमान होने से) वहाँ दरिद्रता रहती है।

**योषितावमानेन प्रकृतेश्च पराभवः**

(द्विजवर्णा) अष्टवर्षीया कुमारी की पूजा से भगवती प्रसन्न हो जाती है।

**कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालंकार चन्दनैः। पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिः तेन पूजिताः ।।**

(देवीभागवत ०९.०१.३९)

राजा सुरथ द्वारा पूजिता दुर्गा इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि रावण वधार्थ श्रीराम ने इनकी उपसना की थी।

**श्रीरामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना पूजिता**

शिवापमान से व्यथित इन्होंने पिता दक्ष के यज्ञ में देहपात कर हिमालय के घर अवतार लिया था तथा शिव संग से गणेश और स्कन्द – दो पुत्रधन प्रदान किये। गणेश तो कृष्ण ही है, स्कन्द विष्णु हैं। सबसे पहले सुरथ ने दुर्गा की उपासना की, मंगला ने लक्ष्मी की उपासना की, अश्वपति ने सावित्री की उपासना की, ब्रह्मा ने सरस्वती की उपासना की, श्रीकृष्ण ने राधा की पूजा की। गोलोक में रासमण्डल के मध्य शिवाज्ञा से भारतवर्ष में सब राधोपासना करते हैं।

**शंकरेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते**

(देवीभागवत ०९.०१.१५७)

नारदजी ने कहा, 'प्रभो ! इन पंच प्रकृतिरूपा देवियों के प्राकट्य, ध्यान–विधि, पूजन, प्रकार, स्तोत्रादि सुनाने की कृपा करें।' नारायण ने बोले, 'हे नारद ! जैसे अग्नि में दाहकता है, चन्द्र में आह्लादता है, सूर्य में तेजस्विता है। वैसे ही ये प्रकृति भी परमात्मा में नित्यत्वेन है। जैसे मिट्टी बिना घट, स्वर्ण बिना कटक नहीं बन सकते, वैसे ही प्रकृति बिना परमात्मा कुछ नहीं बन सकते।

**बिना मृदा घटं कर्तुं कुलालोहि न हीश्वरः । नहि क्षमस्तथात्मा च सृष्टिं सृष्टं तया बिना ।।**

(देवीभागवत ०९.०२.०९)

शक्ति पद में, 'श' ऐश्वर्यवाचक, 'क्ति' पराक्रम वाचक है।

**ऐश्वर्य वचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च। तत्स्वरूपा तयोदोत्री सा शक्तिः परिकीर्तित ।।**

(देवीभागवत ०९.०२.१०)

ऐश्वर्य एवं पराक्रम दोनों देने वाली भगवती शक्ति हैं। श्रीकृष्ण किशोरावस्था के शान्त स्वभाव वाले, अनुपम शृंगार सम्पन्न, शोभाशाली, कन्दर्प दर्पदलन पटीयान्, कोमल कान्ति, कला कुशल, परिपूर्ण ब्रह्म; जो कि सनातन पुरुष हैं; वे सबके ध्येय हैं। उनका एक निमेष ब्रह्मा की पूरी आयु है।

**ब्रह्मणा वयसो यस्य निमेष उपचर्यते**

कृष्ण शब्द में **– कृषिः – भक्तिकृषिस्तदभक्ति वचनो नः – उनकी सेवा नश्चतद्दास्य वाचकः**

भगतद्भक्ति व भगवद्दास्य अनायास देने वाले श्रीकृष्ण है। अथवा

**कृषि– सर्वकृषिश्च सर्व वचनो न बीजनकारो बीजमेव च**

जो सबका आदि कारण बीज है, पिता है। ये कृष्ण स्वतः स्त्री पुरुषरूप में विभक्त हो गये बायांश श्रीराधा कमनीयता का महोदधि सौन्दर्यामृताम्बुधि श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण ने रासलीला की। ब्रह्मा का एक दिन बीत गया। रासक्रीडा श्रमजन्य स्वेद (पसीना) ही ब्रह्माण्ड गोल बना। प्रकृति पुरुष का मिलन हुआ, तो पञ्चीकृत महाभूतात्मक ब्रह्माण्ड बना; उनका खास ही वायु बना। प्रञ्चप्राण बने। पसीना ही वरुणालय बना। प्रकृति को जो गर्भ ठहरा, उसे उन्होंने अगाध जल में पटक दिया। क्लेशाकान्त कृष्ण ने उसे

***************************************************************************************

नि:सन्तानता का शाप दिया, 'तेरे कलांशोत्पन्न देवियाँ भी सन्तान सुख न पा सकेंगी।'

**उत्ससर्जचकोपे न ब्रह्माण्ड गोलके जले । दृष्ट्वा हा हा करां च कृत्वा शशाप देवीं ।।**

**यतो अपत्यं त्वया त्यक्तं भवत्वं अनपत्यापि । त्वं देशपासुरस्त्रियः अनपत्याः नित्ययौवनाः च भविष्यन्ति ।।**

तब तक उन राजेश्वरी देवी के जिह्वाग्र से सरस्वती कन्या रूप में प्रकट हुईं। पुनः मूलप्रकृति कमला राधारूप में प्रकट हो गयी। श्रीकृष्ण भी दो रूप हो गये। द्विभुज कृष्ण राधा, चतुर्भुज विष्णु कमला। राधा के रोमच्छिन्द्रों से गोपियाँ राधा जैसी ही उत्पन्न हुईं। कृष्ण के रोमों के गोप कृष्ण जैसे ही प्रकट हुए।

**गोलोकनायस्य लोम्नां विवरतो असंख्या गोपाः । राधांगलोमकूपेभ्यो वभुवुर्गोपकन्यकाः ।।**

(देवीभागवत ०९.०२.६०)

'हे नारद ! वहाँ भगवती जगदम्बिका प्रकट हो गयी। कृष्ण जिनकी उपासना करते हैं, 'विविधास्त्रधारिणा, त्रिनेत्रा देवि, सकल प्रपञ्च की उत्पादिका हैं।' उन्हें सिंहासन पर बैठाया था कि ब्रह्माणी सहित ब्रह्मा, विष्णु वे नाभिकमल से प्रकट हो गये। तब तक कृष्ण पुनः दो रूप हो गये– वामांग से महादेव, दक्षिणांग से गोपेश कृष्ण रूप में महादेव स्फटिक समान (कर्पूरगौर) कृष्ण साम मेघवत्।

**कृष्णो द्विधारूपो वभूव ह । वामार्द्धो महादेव दक्षिणे गोपिकापति ।।**

शिव मृत्यंजय इसलिए हैं कि ये मृत्यु विजेता कृष्ण से अभिन्न हैं। श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद ! वह अण्डाकार बालक ब्रह्मा की आयु तक जल में रहा। सहसा दो रूप हो गया– एक अण्डाकार रूप, दूसरा बालक रूप। उसका नाम महाविराट् हुआ। इसके रोम–रोम में कितने विश्व है? कृष्ण भी न जान सके।

**प्रत्येकं लोम कूपेषु विश्वानि निखिलानि च । अस्यापि तेषां संख्या च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः ।।**

(देवीभागवत ०९.०३.०६)

ब्रह्माण्ड से ऊपर वैकुण्ठ है, उससे ऊपर गोलोक धाम है जो पचास करोड योजन दूर है। उस बालक ने चारों ओर देखा, भूख–प्यास से व्याकुल रोने लगा। सहसा उसे पीताम्बरधारी श्यामलकान्ति कृष्ण का दर्शन हुआ, तो उसकी मुस्कान खिल उठी। कृष्ण ने वर दिया, 'मेरी तरह भूख–प्यास रहित होकर ज्ञानी हो जाओ।'

**मत्समो ज्ञान युक्तश्च क्षुत्पिपासादिवर्जितः**

(देवीभागवत ०९.०३.२४)

और उसके कान में '**ॐ कृष्णाय स्वाहा**' मन्त्र तीन बार उपदेश किया।

**तस्ये कर्णे षडाक्षरं महामन्त्रं त्रिकृत्वश्च प्रजजाप**

(देवीभागवत ०९.०३.२४)

भक्तों द्वारा प्रदत्त नैवेद्य ही तुम्हारा भोजन होगा। सोलहवाँ भाग विष्णु का तथा पन्द्रह भाग उस बालक के हैं। विराट (बालक) ने वर माँगा, 'प्रभो ! आपकी भक्ति मुझे मिले, क्योंकि आपकी भक्ति बिना जीवन व्यर्थ है।

**कृष्णभक्ति विहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा**

(देवीभागवत ०९.०३.३७)

भगवान् कृष्ण ने विराट को अविनाशी रूप दे दिया। ब्रह्मा को सृष्टि कर्म तथा शिव को संहार कर्म का निर्देश दिया और गोलोक चले गये। ब्रह्माजी नाभिकमल पर पड़े अनन्तकाल तक तप करते रहे। तब उन्हें जल में पड़े लघु विराट का दर्शन मिला तथा गोलोकधाम भी दिखा। उनकी कृपा से ही ब्रह्मा ने सृष्टि आरम्भ की। 'हे नारद ! राधा चरित्र व दुर्गा चरित्र विस्तीर्ण है अतः पश्चात् सुनाऊँगा। पहले सरस्वती का कवच, पूजा सुनो जिसके प्रभाव से मूर्ख भी पण्डित हो जाता है। ये कृष्ण निर्मित है।

**आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता। यत्प्रसादन्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः ।।**

*************************************************************************************

श्रीकृष्ण ने इन्हें नारायण की सेवा मे लगाया। वहाँ लक्ष्मी हैं, तदपि लक्ष्मी राग, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध से रहित है, यहाँ राधा से तुम्हारी बनेगी नहीं; अत जाओ! '**गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति**' माघ शुक्ल पंचमी को सदा तुम्हारी पूजा होगी। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै नमः**' – ये सरस्वती मन्त्र है। इससे घट में या पुस्तक में पूजा करें तथा इस कवच को गले मे या दक्षिण भुजा में धारण करें। तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि ने सरस्वती की पूजा की। हे नारद! सुनो! माघ शुक्ल पञ्चमी को या विद्यारम्भ में संकल्पपूर्वक नित्य–क्रिया करके घट स्थापना करे। गणेशम्बिकार्चन करके भोग लगावे। सरस्वती माँ को नवनीत, दधि, क्षीर, लाजा, तिललड्डु, ईख–रस, बेर, कन्दमूल, आम, ऋतुफल, श्वेतपुष्प (बेला, जूही, चमेली, मालती आदि) श्वेतचन्दन, श्वेतवस्त्र, शंख; श्वेतोपचार से शुक्लवर्णा माँ का पूजन करें। सबसे पहले श्रीनारायण ने बाल्मीकि ऋषि को ये मन्त्र गंगातट पर भारतवर्ष में दिया था। बदरिकाश्रम में ब्रह्माजी ने भृगु को दिया। पुष्कर में सूर्यग्रहण में भृगु ने ये कवच शुक्र को दिया। चन्द्रग्रहण में मारीच ने बृहस्पति को दिया। जरत्कारू ने क्षीरसागर पर गौतम गोत्रीय कणाद को दिया। याज्ञवल्क्य व कात्यायन ने सूर्य से प्राप्त किया। सुतल में बलि की सभा में शेषनारायण से पाणिनी, भारद्वाज, शाकटायन को ये उपदेश मिला। ये महामन्त्र चार लाख जपने पर सिद्ध हो जाता है।

**चतुर्लक्षजपे नैव मंत्रः सिद्धो भवेन्नृणाम्**

यदि ये सिद्ध हो जाये तो बृहस्पति–जैसी बुद्धि हो जाये। गन्धमादन पर भृगुजी द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने कवच सुनाया –

**ब्रह्मोवाच – शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं शुत्युक्तं श्रुतिपूजितम्।। उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने। रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले।। अतीव गोपनीयञ्च कल्पवृक्षसमं परम्। अश्रुताद्भुत मन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम्।। यद्धृत्वां भगवान्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः। यद्धृत्वा पठनात् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पति।। पठनात्धारणात्वाग्मी कवीन्द्रो बाल्मिकोमुनिः। स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः।। कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः। ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम्।। धृत्वां वेदविभागञ्च पुराणान्यखिलानि च। चकार लीला मात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम्।। शातातपश्च सम्वर्तो वसिष्ठश्च पराशरः। यद्धृत्वा पठनात् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः।। ऋष्यशृंगो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा। जैगीषव्येययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजितः।। कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः। स्वयं छन्दश्च बृहती देवता शारदाम्बिका।। सर्वतत्व परिज्ञान सर्वार्थ साधनेषु च। कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः।। श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः। श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदा वतु।। ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तम्। ॐश्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु।। ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदाऽवतु। ह्रीं विद्याधिष्ठातृ देव्यै स्वाहा चोष्ठं सदावतु।। ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्मयै स्वाहेति दंतपंक्ति सदावतु। ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदावतु।। ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदावतु। ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदावतु।। ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्। ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यैं स्वाहति मम हस्तौ सदावतु।। ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु। ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहां सर्वं सदावतु।। ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु। ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु।। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्राराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु।। ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां सदवतु। ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु।। ॐ सर्वाम्विकायै स्वाहा वायव्ये मां सदावतु। ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु।। ॐ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदावतु। ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्व सदावतु।। ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधोमां मां सदावतु। ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सदावतु।। इति ते कथितं विप्रब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम्। इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम्।। पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने। तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तं यं न कस्यचित्।। गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् वस्त्रालंकार चन्दनैः। प्रणम्य दण्डवत् भूमौ कवचं**

**धारयेत्सुधीः ।। पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत् । पञ्चलक्षजपेनैव कर्ता वृहस्पतिसमो भवेत् ।। महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्य विजयी भवेत् । शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः ।। इदञ्च कण्व शाखोक्तं कवचं कविथं मुने । स्तोत्रं पूजा विधानञ्च ध्यानञ्च वन्दनं शृणु ।।**

'हे नारद ! अब सर्वकामद सरस्वतीस्तोत्र सुनो, याज्ञवल्वयजी गुरुशाप से दग्ध सूर्य की शरण में गये। सूर्य ने रोते हुए शोकार्त याज्ञवल्क्य को वेद-वेदांग पढ़ाये तथा स्मृति के लिए वाग्देवता की स्तुति बताई।

**याज्ञवल्क्य उवाच - कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हत तेजसम् । गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुखितम् ।। ज्ञानं देहि स्मृति विद्यां शक्तिं शिष्य प्रबोधिनीम् । ग्रन्थकर्तृत्व शक्तिं च विचारक्षमतां शुभाम् ।। प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् । लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु ।। यथांकुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः । ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतिरूपा सनातनी ।। सर्व विद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः । विसर्गविन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च ।। तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नित्यै नमो नमः । व्याख्या स्वरूपा सा देवि व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी ।। यया बिना प्रसंख्यावान् संख्यां कर्तु न शक्यते । कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ।। भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः । स्मृति शक्ति ज्ञानशक्ति बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी। । प्रतिभा कल्पना शक्तिः या च तस्यै नमो नमः । सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै ।। बभूवमूक वत्सोपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः । तदाजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ।। उवाच स तां स्तौहि वाणी मिष्टां प्रजापते । स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ।। चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम् । यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा ।। बभूव मूक वत्सोपि सिद्धान्तं कर्तु मक्षमः । तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्त कश्यपाज्ञया। ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रम भञ्जनम् । व्यासः पुराण सूत्रञ्च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा । मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदम्बिकाम् । तदा चकार सिद्धान्तं तद्वरेण मुनीश्वरः। सम्प्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमान्ध ध्वंस दीपकम् । पुराण सूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्ण कलोद्भवः ।। तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षञ्च पुष्करे । तदात्वत्तो वरं प्राण्य सत्कवीन्द्रो बभूव ह ।। तदा वेदविभागंच पुराण च चकार सः । यदा महेन्द्रः पप्रच्छ तत्वज्ञानं सदाशिवम् ।। क्षणं तामेव सञ्चिन्त्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभु । पप्रच्छ शब्दशास्त्रञ्च महेन्द्र बृहस्पतिम् ।। दिव्यं वर्ष सहसुञ्च स त्वां दध्यौ च पुष्करे । तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्य वर्ष सहस्त्रकम् ।। उवाच शब्द शास्त्रं च तदर्थ च सुरेश्वरम् । अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः। ते च तां परि संचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरीम् । त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैः मनुमानवैः ।। दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । जडीभूतः सहस्त्रास्यः पञ्चवक्त्रस्चतुर्मुखः ।। यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः । इत्युक्तवा याज्ञवल्कयश्च भक्ति नम्रात्मकन्धरः ।। प्रणनाम निराहारो रूरोद च मुहुर्मुहुः । ज्योतिरूपा महामाया तेन दृष्टाप्युवाच तम् ।। सुकवीन्द्रो भवेत्युक्तवा वैकुण्ठं च जगाम ह । याज्ञवल्कय कृतं वाणी स्तोत्रमेतत्तु यः पठेत् ।। स कवीन्द्रो महावाग्मी बृहस्पति समो भवेत् । महामूर्खश्च दुर्बुद्धिः वर्षमेकं यदा पठेत् । स पण्डितश्च मेधावी सुकवीन्द्रो भवेत् ध्रुवम् ।।**

एक वर्ष तक नित्य इसका पाठ करने वाला मूर्ख दुर्बुद्धि भी पण्डित मेधावी तथा सुकवीन्द्र हो जाएगा। श्रीनारायण बोले, 'हे नारद ! वैकुण्ठस्था सरस्वती गंगा शापवशात् भारतवर्ष में एक कला से सरस्वती नदी रूप मे आयी तथा पाप रूपी ईंधन को जलाती हैं। इनमें पूर्णिमा, अक्षयनवमी, अक्षयतृतीया, क्षायाह, व्यतीपात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहणादि में स्नान का अतीव पुण्य है। नारदजी ने शाप का कारण पूछा तो नारायण बोले, 'नारद ! लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगा तीनों ही विष्णु भार्या हैं।

**लक्ष्मीः सरस्वती-गंगा-तिस्रोभार्या हरेरपि**

(देवीभागवत ०९.०६.१७)

एक दिन गंगा विष्णु को प्रेमपूर्वक कटाक्ष से देखने लगीं विष्णु ने भी प्रसन्नता से उन्हें देखा। लक्ष्मी की अपेक्षा सरस्वती ने भगवान् को उलाहना दिया कि श्रेष्ठ पति को अपनी सभी भार्याओ के प्रतिसम भाव रखना चाहिए। आपको सतोगुणी कहने वाले भी

***********************************************************************************

मूर्ख हैं, भगवान् सरस्वती को कुप्त देख चले गये किन्तु सरस्वती ने गंगा को प्रताडित करना चाहा तो लक्ष्मी ने बचाया अतः सरस्वती ने लक्ष्मी को नदी तथा वृक्ष जैसे जड़ होने का शाप दिया। बदले में गंगा को भी सरस्वती से नदी होने का शाप मिला।

**त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यति**

(देवीभागवत ०९.५.४२)

तभी भगवान् विष्णु पुनः पधारकर तथा सबको शान्त करके लक्ष्मी को धर्मध्वज की पुत्री बनने को कहा तथा स्वयं के अंश से शंखचूड बनने की बात कहा। (तुलसी नाम होना) पहले तुम पद्मावती नदी बनो। तदनन्तर जगत्कल्याणाय गंगा को भगीरथ की तपस्या के ब्याज से भूतल पर भागीरथी बनाया तथा आत्मांशभूत सागर की पत्नी बना। तदनन्तर सरस्वती को भी नदी रूपा बनाकर भारत में भेजा। गंगाजी अंश से नदी पूर्णाश से कैलाश पर शिवा रहे, लक्ष्मी मेरे समीप ही रहेंगी। व्याधिज्वाला या विषज्वाला से अधिक क्लेश तो स्त्री की मुखज्वाला से होता है।

**व्याधि ज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने । दुष्ट स्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते ।।**

(देवीभागवत ०९.०६.६२)

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! श्रीनारायण बोले, 'हे नारद! क्षणमात्र में ही तीनों देवियाँ परस्पर शोकाकुल होकर रोने लगीं, 'हे भगवान्! जो पति अपनी निरपराधनी पत्नी को त्यागता है। वह नरक जाता है भले ही सर्वेश्वर क्यों न हो।'

**निर्दोष कामिनी त्यागं करोति यो नरो भुवि । स याति नरकं घोरं किन्तु सर्वेश्वरोपि वा ।।**

(देवीभागवत ०९.०७.०६)

'हे नारद! लक्ष्मी ने चरण पकड़कर अपने उद्धार तथा गंगा सरस्वती के उद्धार का उपाय पूछा। भगवान् ने कहा, 'तुम अंश रूप में वहाँ जाओगी तथा कलियुग के पाँच हजार वर्ष बीतने पर पुनः आ जाओगी।'

**कलेः पञ्चसहस्त्रे च गते वर्षे तु गोक्षणम् । युष्माकं सरिताश्चैव मद्रे हे चागमिष्यथः ।।**

(देवीभागवत ०९.०७.२३)

'हे देवि! मेरे भक्तों-सन्तों-गुप्तोपासकों के स्पर्श से दर्शन से तुम भी पवित्र हो जाया करोगी।'

**मन्मन्त्रोपासकानाञ्च सतां स्नाना वगाहनात । युष्माकं मोक्षणं पापात् दर्शनात् स्पर्शनात् तथा ।।**

(देवीभागवत ०९.०७.२३)

'जहाँ मेरे भक्त रहते हैं, वह पावनतम तीर्थ बन जाता है। अधमाधम पापी भी पवित्र हो जाते हैं। मेरे भक्तों के दर्शन से वर्णोचिताचारहीन ब्राह्मण भी (असि जीवि-मसिजीवि-धावको ग्राम याजक) पवित्र हो जाते हैं। आश्रितों का भरण-पोषण न करने वाला महापातकी भी पावन बन जाता है। वे श्रेष्ठ भक्त मुझे त्यागकर मुक्ति भी नहीं चाहते। वैसे भक्तों के संसर्ग से जगत्पवित्र हो जाता है। 'हे नारद! इस प्रकार ये तीनों देवियाँ नदी बनकर भारतवर्ष में आ गयीं। अपने कलांश से लक्ष्मीजी 'तुलसी' नाम से धर्मध्वज की पुत्री बनी। पाँच हजार वर्षोपरान्त काशी और वृन्दावन को छोड़कर सभी तीर्थ; इन नदियों के साथ वैकुण्ठ चले जायेंगे।'

**कलेः पञ्चसहस्त्रञ्च वर्ष स्थित्वा तु भारते । काशी वृन्दावनं बिना यास्यन्ति सर्वे वैकुण्ठम् ।।**

(देवीभागवत ०९.०८.०१)

दस सहस्त्र वर्ष बीतने पर शालिग्राम, शिव-शक्ति, जगनाथादि भी चले जायेंगें। सत्य-धर्माचरण, वेदोक्त कर्म, वर्णाश्रमाचार भी नष्टप्रायः हो जायेगा। वर्ण अपनी शास्त्रोंचत कुल परम्परा को छोड़ देंगे, राजा प्रतापहीन तथा प्रजा कर पीडित होगी।

**प्रतापहीनाः भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः । जलहीना महानद्यो दीर्घिकादन्दरादयः ।।**

(देवीभागवत ०९.०८.२९)

महानदियाँ जलहीन हो जायेगी तथा वनवासी भी कर के दायरे में आयेंगे, कन्या-विक्रय होगा, अधार्मिक नास्तिक कलि के

*****************************************************************************************

कुचाली प्राणी राक्षस प्रवृत्ति के होंगे। देववृत्ति, ब्रह्मवृत्ति, गुरुकुलवृत्ति स्वदत्तया परदत्त हो वंशपरम्परा में चल रही हो, उसे ही छीन लेगे।

**देववृत्ति ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरूकुलस्य च । स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लंघयिष्यति ।।**

(देवीभागवत ०९.०८.४२)

सभी सम्बन्ध अपवित्र हो जायेंगे मात्र पशुओं के जैसे स्त्री पुरुष का सम्बन्ध रह सकेगा। लाख, लोहा, रस, अन्न, लवण, पानी का व्यापार चलने लगेगा। भयानक हाहाकार के मध्य कलि के अन्त में विष्णुयश नाम ब्राह्मण के घर सम्भल ग्राम में कल्कि अवतार होगा।

**विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्र कल्किर्भविष्यति**

(देवीभागवत ०९.०८.५४)

अधर्म का उन्मूलन करके धर्म की संस्थापना होगी। तदनन्तर पुनः प्रजा वर्णाश्रमाचार परम्परा का पालन करने वाली होगी। 'हे नारद! इकहत्तर युगों का एक मन्वन्तर होता है, जो कि इन्द्र की सत्ता की अवधि है। इस प्रकार अट्ठाईस मन्वन्तर होने पर ब्रह्मा का एक दिन-रात पूरा होता है। इस मान से १०८ वर्ष तक ब्रह्मा की आयु है। यही प्राकृत लय है। यही महामाया भुवनेश्वरी का पलक गिरने के समान काल है।

**निमेषमात्रं कालश्च दैव्याः प्रोच्यते बुधैः**

(देवीभागवत ०९.०८.७५)

पुनश्च माता के निमि मात्र में सृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। इन्हीं भगवती की कृपा से सरस्वती, लक्ष्मी तथा दुर्गा की जगत् में पूजा प्राप्त होती है। श्रीराधा भी उनकी उपासना से ही कृष्ण को प्राप्त कर सकी हैं। श्रीराधा ने कृष्ण को पाने के लिए शतशृंग पर्वत पर सहस्त्रों दिव्य वर्ष तक तपस्या की थी।

**तपश्चकार सा पूर्व शतश्रृंगे च पर्वते । दिव्यवर्ष सहस्त्रञ्च पतिं प्रादयर्थमेव च ।।**

(देवीभागवत ०९.०८.९४)

फलतः वे कृष्ण के हृदयस्थल पर विराजी। दुर्गा ने हिमालय पर तप किया। सरस्वती ने गन्धमादन पर्वत पर तप किया। लक्ष्मी ने पुष्कर में सहस्त्रों वर्षो तक तप किया। सावित्री ने मलयाचल पर तप किया। शिव, ब्रह्मा, विष्णु ने भी इनकी आराधना से जगत्पूज्यत्व मनाया तथा गोलोक प्राप्त किया।

**दशमन्वन्तरं तप्त्वा श्रीकृष्णां परमंतपः । गोलोकं प्राप्तवान् दिव्यं मोदतेद्यापि यत्र हि ।।**

(देवीभागवत ०९.०८.१०७)

## पृथ्वी पूजामन्त्र, दान-धर्म विचार, गंगाचरित्र, गङ्गोत्पत्ति, गङ्गा ब्रह्मा के कमण्डलु में आईं, तुलसी कथा, सीता चरित्र, वेदवती जन्म, तुलसी विवाह, राधा शाप से सुदामा गोप दैत्य बना

पृथ्वी के आविर्भाव के विषय में श्रीनारायण ने कहा, 'हे नारद! कुछ लोगों का मत है, 'पृथ्वी मधु और कैटभ के मेद (चर्बी) से बनी। अतः 'मेदिनी' कहलाती है'। किन्तु नारद! पुष्कर में मैंने धर्म के मुख से सुना था कि विराट का रोम-रोम मनोरम बन जाता है। उन्हीं रोमों से पृथ्वी प्रकट होती है। भारतवर्ष जैसे पवित्र देश से शोभितभूमि के ऊपर सात स्वर्ग और नीचे सात पाताल हैं।

**पुण्यतीर्थ समायुक्ता पुण्यभारत संयुता**

(देवीभागवत ०९.०९.१८)

ये भूमि वराह भगवान् की पत्नी हैं। वराहकल्प में भगवान् वराह ने हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी का उद्धार किया तथा भूमि

************************************************************************************

स्वयं स्त्री रूप में परिवर्तित हो गयी। वराह भी पावन सुन्दर रूप वाले होकर रमण करने लगे। एक दिव्य वर्ष बीत गया। तदनन्तर चेतना आने पर पुनः वराह रूप हो गये।

**क्रीडाञ्चकार रहसि दिव्य वर्ष महर्निशम् । पूर्व रूपं वराहञ्च दधार स च लीलया ।।**

(देवीभागवत ०९.०९.३३)

फिर भगवान् ने उसकी पुष्प फल धूप दीपादि से पूजा की तथा सब तुम्हारी पूजा करेंगे। जो नहीं करेगा वह पापी होगा। पृथ्वी ने कहा, 'नाथ! सब ठीक है किन्तु मोती, सीपी, कृष्णपूजा, शिवलिंग, शालिग्राम, शंख, पार्वती, दीप, यन्त्र, मणि, हीरा, जनेऊ, पुष्प, पुस्तक, तुलसी-माला, कपूर, सुवर्ण, चन्दन आदि भूमि पर रखने से मुझे पीडा होती है इनका भार मैं नहीं उठा पाती।'

**एतान्वोढुमशक्ताहं क्लिष्टा च भगवान् शृणु**

(देवीभागवत ०९.०९.४१)

भगवान् ने कहा, 'जो प्राणी ये वस्तुएँ पृथ्वी पर रखेगा, वह कालसूत्र नरक में जायेगा। पृथ्वी से मंगल की उत्पत्ति हुई। सभी पृथ्वी की पूजा करने लगे तथा स्तवन किया। नारायण ने कहा, 'हे नारद! संध्या वन्दन निष्ठ ब्राह्मण को भूमि दान का विशेष माहात्म्य है, उसे शिवलोक प्राप्त होता है, भूमि-धान्य-ग्राम-आदि का दाता-अनुमोदन कर्ता-प्रतिग्रहीता तीनों ही जगदम्बा लोक प्राप्त करते है; किन्तु- दान की हुई भूमि का अपहर्ता नरक लोक भोगता है तदनन्तर ऋणी तथा दरिद्री बन जाता है। गोचर की भूमि का अधिग्रहीता कुम्भीपाक नरक भोगता है।

**गवां मार्ग विनिष्कृष्ण यश्च सस्यं ददाति नै । दिव्यवर्ष शतं चैव कुम्भी पाके स विष्ठति ।।**

(देवीभागवत ०९.१०.१०)

भूमि पर वीर्यपात करने वाला भूमि कण (जितनी वीर्यसिक्त) तुल्य वर्ष नरक (रौरव) भोगता है, अम्बुवाची नक्षत्र* में भूमि खोदने वाला कृति देश नरक में जाता है। आर्द्रा नक्षत्र से तीन दिन तक किसी के कूप, तालाब का जीर्णोद्धार उसके स्वामी की अनुमति से ही करना चाहिए अन्यथा उसका पुण्य नहीं प्राप्त होता। उसका फल पूर्व स्वामी को ही मिलता है, बदले में तप्तकुण्ड नरक प्राप्त होता है। तात्पर्य है - दूसरे के द्वारा निर्मित कूप, तडाग, धर्मशाला, प्याऊ, मठादि पर उसकी आज्ञा के बिना कब्जा करके उसका उद्धारक मालिक बनने की चेष्टा करने वाला नरक जाता है। वही यदि आज्ञा लेकर करेगा तो पुण्य मिलेगा। स्वार्थ के लिए नहीं, नाम के लिए भी नहीं परमार्थ के लिए जो दूसरे के तालाब की मिट्टी निकालकर उसमें स्नान करने वाला ब्रह्मलोक पाता है।

**परकीये तडागे च पंकमुद्धत्य चोन्मृजेत् । रेणुप्रमाण वर्षञ्च ब्रह्मलोके वसन्नरः ।।**

(देवीभागवत ०९.१०.१७)

भूमिपति के पितरों को श्राद्ध करके ही अपने पितरों का श्राद्ध करे। भूमि पर दीपक रखने वाला सात जन्म तक अन्धा होता है। भूमि पर शंख रखने वाला कुष्ठ रोगी होता है। पूर्वोक्त शिवलिंग शालिग्राम आदि को भूमि पर रखने वाला नरकगामी होता है। पुस्तक, माला, रुद्राक्ष, जनेऊ भूमि पर रखने वाला पुनः ब्राह्मण नहीं बनता।

**पुस्तकं यज्ञसूत्रञ्च भूमौ संस्थापयेन्नरः । न भवेत् विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः ।।**

(देवीभागवत ०९.१०.२५)

यज्ञोपरान्त जो मनुष्य यज्ञ भूमि को दूध से नहीं सीचता, वह सात जन्म तक तप्तभूमि नामक नरक में कष्ट पाता है।

**यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण न हि सिञ्चति । स याति तप्त भूमिं च सन्तप्तः सप्तजन्मसु ।।**

(देवीभागवत ०९.१०.२७)

--------------------

* अम्बुवाची नक्षत्र आषाढ़ कृष्णपक्ष दशमी से आषाढ़ कृष्णपक्ष त्रयोदशी तक (आर्द्रा नक्षत्र से तीन दिन तक) पृथ्वी रजस्वला होती है। इस समय में किसी प्रकार से भूमि को नहीं खोदना चाहिए। ब्रह्महत्या का पाप लगता है।

*****************************************************************************************

श्रीनारदजी ने भगवान् से गंगा का चरित्र सुनने की इच्छा व्यक्त की श्रीनारायण ने कहा, हे नारद! सूर्यवंश के राजा सगर जिनकी वैदभी एवं शैव्या दो भार्या थी। शैव्यापुत्र असमंजस था, जो वंश वर्धक हुआ। वैदर्भी ने पुत्रेच्छा से शिवाराधन किया। सौ वर्षोपरान्त एक मांस पिण्ड निकला। जिसे विप्रवेशधारी शिव ने साठ हजार खण्डों में विभक्त कर दिया।

**शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह । चकार संविभज्यैतत्पिण्ड षष्टिसहस्त्रधा ।।**

(देवीभागवत ०९.११.०८)

बड़े होकर वे साठ हजार राजकुमार कपिल शाप से जल कर नष्ट हो गये। उनके उद्धार के लिए गंगावतरणार्थ सगर ने तप किया। असमंजस ने तप किया। अंशुमान ने तप किया। तदनन्तर भगीरथजी महाराज को श्रेय प्राप्त हुआ। श्रीहरि ने उन्हें दर्शन दिये। किशोरवय वंशी कर में भव्यातिभव्य स्वरूप सर्वदेव वन्दित वे साक्षात्ब्रह्म श्रीकृष्ण ... ...।

**स्वेच्छाभयं परंब्रह्म परिपूर्णतमं प्रभुम् ।।**

**द्विभुजं मुरलीहस्त किशोरगोप वेषिणम् । गोपाल सुन्दरी रूपं भक्तानुग्रहरूपिणम् ।।**

(देवीभागवत ०९.११.१५-१६)

उन्होने भगीरथ की इच्छा पूर्ण करने के लिए गंगा को भूतल पर जाने की आजादी दी तथा श्रीकृष्ण ने कहा, 'हे देवि! करोडों जन्मों के पाप गंगा के स्पर्श से आयी वायु के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। दर्शन से दस गुणा फल अधिक होता है, मुसल स्नान मात्र से सैकडों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

**कोटि जन्मार्जितं पापं भारते यत्कृतं नृभिः । गंगाया वातस्पर्शेन नश्यन्तीति श्रुतौ श्रुतम् ।।**

(देवीभागवत ०९.११.२५)

'ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि भी गंगा स्नान का फल पूर्व दिनों में क्या है?' कह नहीं सकते। मुसल स्नान (संकल्प रहित) से दशगुणित ससंकल्प मुसल स्नान का सूर्य-ग्रहण काल में इससे तीस गुना फल। अमावस्या स्नान का फल भी इतना ही है। अक्षय-नवमी, अक्षय-तृतीया के स्नान का अनन्त फल है। माघशुक्ल सप्तमी, भीमाष्टमी, अशोकाष्टमी, रामनवमी स्नान से सौगुना फल गंगातट पर दान का है। वारुणी, महावारुणी पर्व पर स्नान का भी चौगुना फल है। चन्द्रग्रहण पर गंगास्नान का सौ गुना फल है।' गंगाजी ने भगवान् से कहा, 'प्रभो! संसार-भर के पापियों के पाप से मेरा उद्धार कैसे होगा?

**दास्यन्ति पापियो मह्यं पापानि यानि कानि च । तानि मे केन नश्यन्ति तमुपायं वद प्रभो ।।**

(देवीभागवत ०९.११.४०)

भगवान् कृष्ण ने कहा, 'देवि! संसार के सद्धार्मिक भक्त आपकी उपासना करेंगे। सैकड़ों योजन दूर से भी 'गंगा' उच्चारण करके मेरा लोक पा लेंगे।'

**गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।।**

(देवीभागवत ०९.११.५०)

'रही बात पापशोधन की, तो लाखों पापियों के द्वारा प्रक्षालित पाप किसी एक देवीभक्त के स्पर्श मात्र से नष्ट हो जायेंगे।'

**सहस्त्रपापिनां स्नानात्यपापं ते भविष्यति । प्रकृते भक्ति संस्पशादिव तद्धि विनश्यति ।।**

(देवीभागवत ०९.११.५१)

'हे देवि! मृतक का शव बड़े पुण्य से तुम्हारे जल को पाता है तथा सालोक्यमुक्ति का अधिकारी मात्र जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा गंगा का माहात्म्य कहकर निलीन हो गये। तदनन्तर भगवान् की आज्ञा से भगीरथ से भगवती गंगा का समर्चन किया। गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा व गंगा की पूजा क्रमशः सम्पन्न की। भगवती गंगा का ध्यान करे। ये श्रीकृष्ण के चरणों से निकली हैं।

*************************************************************************************

**कृष्णविग्रहसंभूतां कृष्णतुल्यां परां सतीम् ।श्वेतपंकजवर्णाभां गंगां पापप्रकाशिनीम् ।।**

(देवीभागवत ०९.१२.०१)

'हे माँ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके चरण-कमल मुमुक्षुओं को मुक्ति, कामियों को भुक्ति देते हैं। हे भक्तानुग्रहकारिणी माँ! आपको नमन है।'

**मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वभोगदम् । वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकारिणीम् ।।**

(देवीभागवत ०९.१२.११)

इस प्रकार षोडषोपचार से गंगा की पूजा करे। स्तोत्र पाठ करे। 'राधा के अंग से द्रवित गंगा, शिव संगीत पर मुग्ध गंगा, कृष्णांगसमुद्भवा गंगा को प्रणाम है।

**शिवसंगीत संमुग्ध श्रीकृष्णांग समुद्भवाम् । राधांग द्रवसंयुक्तां तां गांगाम्प्रणमाम्यहम् ।।**

(देवीभागवत ०९.१२.१८)

सतयुग में गंगा क्षीर सदृश, त्रेता में चन्द्रप्रभ, द्वापर में चन्दन जैसी, कलियुग में जलप्रभा गंगा को बारम्बार प्रणाम है।

**सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दु सन्निभा । द्वापरे चन्दनाभा या तां गंगां प्रणनाम्यहम् ।।**

(देवीभागवत ०९.१२.३९)

इस प्रकार गंगा माँ की स्तुति करके भगीरथ ने उनकी कृपा से अपने पूर्वजों का उद्धार कराया। 'हे नारद! पाँच हजार वर्ष कलि के बीतते ही गंगा वैकुण्ठ चली गयी। कोई इन्हें शिवप्रिया, कोई विष्णु प्रिया, कोई कृष्णचरणोत्पन्ना, कोई ब्रह्मद्रवा, कोई ब्रह्म कमण्डलुवासिनी कहते हैं, इनकी वास्तविकता है कि ये राधा-कृष्ण के अंग से उत्पन्न जलरूपा से गोलोक में थी।

**पुरा बभूव गोलोके सा गंगा द्रवरूपिणी । राधाकृष्णांगसम्भूता तदंश तत्स्वरूपिणी ।।**

(देवीभागवत ०९.१३.०७)

ये नवयुवती वेष धारणकर सर्वविध शृंगारालंकृत होकर श्रीकृष्ण के समीप स्नेहभाव से उपस्थित थी कि तभी गोपियों सहित राधिकाजी आ गयीं। उन्हें गंगा के हावभाव - कोटि देखकर (राधाजी को) क्रोध आ गया। वे सिंहासन पर बैठने चलीं तो कृष्ण ने उठकर उनका स्वागत किया।

**तां दृष्टवा च समुत्तस्थौ कृष्णः सादरपूर्वकम्**

गंगाजी ने भीत हो राधिकाजी को प्रणाम किया तथा रक्षार्थ कृष्णचरणों का ध्यान करने लगी। श्रीकृष्ण ने उन्हें मन ही मन अभय दिया। गंगाजी ने देखा, 'असंख्य ब्रह्मादिकों की निर्मातृ प्रपञ्चोत्पादिका श्रीराधिका सदा द्वादशवर्षीया किशोरीरूपा है। कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री है अतः प्राण समप्रिया हैं।

**कृष्णप्राणाधिदेवीञ्च प्राणप्रियतमां रमाम्**

(देवीभागवत ०९.१३.३८)

श्रीराधा ने कहा, 'हे कृष्ण! इस आकृष्टचित्ता स्त्री में तुम अनुरक्त हो। अतः यदि कल्याण चाहते हो तो गोलोक से बाहर इसे लेकर चले जाओ।'

**संगृह्योयं इमां प्रियामिष्टां गोलोकात् गच्छ लम्पट । अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति व्रजेश्वरः ।।**

(देवीभागवत ०९.१३.४५)

'पहले विरजा के संग आप रहे बिचारी को शर्मसार हो, यमुना नदी बनना पड़ा था।'

**देहं तत्याजविरजानदीरूपा बभूव सा**

(देवीभागवत ०९.१३.४७)

************************************************************************************

तदनन्तर शोभा (जो चन्द्रमण्डल में शीतलता है) प्रभा (जो सूर्यमण्डल, तपस्वी, सती, ब्राह्मण, राजा, अग्नि में है) शान्ति (जो कुछ मुझमें, निकुंज में, ब्राह्मणों में, देवी भक्तों में है।) तदन्तर क्षमा के साथ रमण के परिणाम से आप काले पड़ गये।

**लज्जया कृष्णवर्णोऽभूत भवान् पापेन यः प्रभो**

(देवीभागवत ०९.१३.७४)

क्षमा देह त्यागकर पृथ्वी में, पण्डितों, देवों, दुर्बलों में रही। इधर सारे प्रसंग सुनकर गंगा (पानी-पानी हो गयी) जलरूप हो गयी। राधा ने उन्हें पीना चाहा तो वे कृष्ण चरणों में समा गयी।

**श्रीकृष्ण चरणाम्भोजे विवेश शरणं ययौ**

(देवीभागवत ०९.१३.८२)

जल के बिना त्रिलोकी में त्राहि-त्राहि होने लगी। सभी देवता कृष्ण की शरण में आये। उन परिपूर्णतम कृष्ण ने सभी को सान्त्वना दी। दिव्य सिंहासन पर विराजमान श्रीराधा-कृष्ण उनके सम्मुख दीन व याचक बने देव, ऋषि, गन्धर्व-समाज ब्रह्मा के दाहिने विष्णु तथा बाये शिव ... ...।

**ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृत्वा स्वदक्षिणे । वामतो वामदेवं च जगाम कृष्ण सन्निधिम् ।।**

(देवीभागवत ०९.१३.९८)

सभी ने प्रार्थना करके मनाया तथा राधा को प्रसन्न करके गंगा देवताओं को देने लगे। ब्रह्माजी ने श्रीराधा को गंगा की उत्पत्ति का स्मरण कराया कि शिव संगीत से द्रवीभूत राधा-कृष्ण ही गंगा जलरूप है; तुम्हारी पुत्री जैसी है।

**युवयोर्द्रवरूपा सा मुग्धयोः शंकर स्वनात् । कृष्णाशाखत्वदेशा च त्वत्कन्या सदृशी प्रिया ।।**

(देवीभागवत ०९.१४.११५)

निर्भय हो गंगा प्रकट हुई। ब्रह्माजी ने उन्हें कमण्डलु में रख लिया। शिव ने वही जल शिर पर धारण किया। ब्रह्माजी ने गंगा को राधा-मन्त्र की दीक्षा दी। उपासना पद्धति बतलाई। नारदजी ने पूछा- 'हे भगवान! गंगा का विवाह विष्णु से कैसे हुआ?' नारायण बोले, 'हे नारद! गंगा वैकुण्ठ चली गयी। तब ब्रह्माजी ने विष्णु को गंगोत्पत्ति की सारी कथा सुनाकर विष्णु से विवाह करने का प्रस्ताव रखा। जिसे विष्णु ने स्वीकार कर लिया। यहीं लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा में ईर्ष्यावश विवाद हुआ शापाशापी हुई फलतः नदी बनी। नारदजी ने तुलसी सम्बन्धी प्रश्न किया, 'महाराज! ये तुलसी कौन थी? जिसने अपनी तपस्या द्वारा साक्षात् ब्रह्म को पति बना लिया। क्यों ये वृक्ष बनी? तथा क्यों ये शंखचूड दैत्य की भार्या हुई? श्रीनारायण ने कहा, 'नारद! विष्णु अंश से दक्षसावर्णि हुए, उनसे ब्रह्म सावर्णि हुए, इनसे धर्मसावर्णि हुए, इनसे रुद्रसावर्णि हुए, इनसे देवसावर्णि हुए, इनसे इन्द्रसावर्णि हुए, इनके पुत्र हुए – वृषध्वज। परमशैव, शिवातिरिक्त किसी और को माने ही नहीं। न विष्णु, न लक्ष्मी, न सरस्वती आदि। न इनके उत्सव मनावे। निन्दा करे घोर ... ... । सूर्य ने इसे शाप दे दिया, 'जाओ! श्रीहीन हो जाओ!' वृषध्वज को पुत्रवत् मानने वाले शिव ने सूर्य को मारने के लिए त्रिशूल उठायाा। सूर्य पिता कश्यक, ब्रह्मा सहित नारायण की शरण में गये। रक्षा के लिए प्रार्थना की। उन्होंने निर्भयत्व प्रदान किया। तभी शंकरजी आ गये। उन्होंने विष्णु को भव्य स्वागत शिव जी का करके प्रणाम किया। आगमन का कारण तथा क्रोध का कारण पूछा तो भोले बाबा को याद आया है, 'मैं तो सूर्य को मारने चला था' सारी कथा सुना दी। पर अब तो ये आपकी शरण में आ गया है (वैकुण्ठ में आधी घड़ी बीती थी) पृथ्वीलोक पर वृषध्वज की चौथी पीढ़ी दारिद्रय भोगती लक्ष्मी का आराधन करती है। धर्मध्वज तथा कुशध्वज इनके वंश में महालक्ष्मी अपनी कला से अवतरित होंगी। जाओ! अब भोलेबाबा! आपके भक्त परिवार को श्रीलौटाएँगे। (समय सबसे बड़ा समाधान है) 'हे नारद! कुशध्वज तथा धर्मध्वज; दोनों ही तप करके राज्य और पुत्र पा चुके हैं। हे नारद! कुशध्वज की भार्या मालावती के गर्भ से महालक्ष्मी अंशभूला कन्या उत्पन्न हुई तो वेदघोष हुआ। अतः उसका नाम वेदवती रखा गया। स्वयं कन्या ने वेदघोष किया तथा जन्म लेते ही स्नान करके वन में तपस्या करने पुष्कर में चली गयी।

*****************************************************************************************

**वेदध्वनीं सा चकार जातमात्रेण कन्यका । जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम् ।।**

(देवीभागवत ०९.१६.०६)

एक दिन आकाशवाणी हुई कि अगले जन्म में तुमको श्रीहरि पतिरूप में प्राप्त होंगे तो वेदवती गन्धमादन पर्वत पर तप करने लगी। एक दिन रावण आया तो वेदवती ने (अतिथि देवो भव) रावण का सत्कार किया। किन्तु रावण देवता नहीं, राक्षस था। अतः बलपूर्वक उनसे प्रणय चाहने के लिए उद्योग करने लगा तो वेदवती ने उसे स्तम्भित कर दिया।

**सती चुकोप दृष्ट्वा तं स्तम्भितं च चकार ह । स जडो हस्तपादैश्च किंचित्वक्तुं न च क्षमः ।।**

(देवीभागवत ०९.१६.१८)

वेदवती ने शाप दिया, 'पापात्मन् ! मेरे कारण ही तेरा सकुल, सश्री, सराज्य विनाश होगा।'

**सा शशाप मदर्थेत्वं विनंक्ष्यसि सबान्धवः**

(देवीभागवत ०९.१६.१८)

और योगबल से शरीर त्याग दिया। रावण ने उन्हें गंगा में डालकर लंका की ओर प्रस्थान किया। हे नारद ! वही वेदवती अगले जन्म में जनकपुत्री सीता बनी थी, जिसके कारण रावण के बारे में कहा जाता है –

**एक लख पूत सवा लख नाती । ता रावण घर दीया न बाती ।।**

'हे नारद ! एक बार वनवास काल में श्रीराम, लक्ष्मण व सीता सहित समुद्रतट पर थे। तभी अग्निदेव ब्राह्मण बनकर आये तथा बोले, 'राघवेन्द्र ! सीतापहरण सन्निकट है। आप सीता मुझमें स्थापित करके छायामयी सीता को रख लो। पश्चात परीक्षा के बहाने मैं आपको सीता वापिस कर दूँगा।'

**सीताहरण कालोऽयं तवैव समुपस्थितः**

(देवीभागवत ०९.१६.३०)

**जगत्प्रसूं मयि पयस्य छायां रक्षान्ति केऽधुना । दास्यामि सीतां तुभ्यञ्च परीक्षासमये पुनः ।।**

(देवीभागवत ०९.१६.३२)

इस प्रसंग को लक्ष्मण तक न जान सके। तभी स्वर्णमृग की घटना घटी। राम दौड़े मृग के पीछे तथा एक ही बाण से मार दिया (मारीच वैकुण्ठ के द्वारपालों का अनुचर था, अतः वही चला गया) 'हा लक्ष्मण' के शोक स्वर से मोहित लक्ष्मण राम की ओर चले तो रावण ने सीतापहरण कर लिया। जैसे–तैसे बिचारे राम ने वानर सहायता से सागर पर सेतु बाँधकर रावण को पराजित करके अग्नि परीक्षा के बहाने सीता को पा लिया।

**तां च वह्निपरीक्षां च कारयामास सत्वरम् । हुताशस्तत्र काले तु वास्तवीं जानकीं ददौ ।।**

(देवीभागवत ०९.१६.४७)

माया (छाया) सीता पुष्कर में तप करके स्वर्ग लक्ष्मी बनी। यहाँ उन्होंने तीन लाख वर्ष तप किया। कालान्तर में वही द्रुपद के घर यज्ञकुण्ड से उत्पन्न हो, पाँचों पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी हुई। वेदवती–सत्ययुग में, त्रेता में छाया (सीता), द्वापर में द्रौपदी हुईं। अतः त्रिहायमी कही जाती है। 'हे नारद ! छाया सीता ने ही पति प्राप्ति के लिए शिवार्चन किया तथा भाव विभोर हो, 'हे पञ्चानन ! 'मुझे पति दो' , 'मुझे पति दो' ऐसा पाँच बार कह गयी।

**पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन । पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारं चकार सा ।।**

(देवीभागवत ०९.१६.५६)

'हे नारद ! धर्मध्वज भार्या माधवी स्वपति के साथ दिव्य सत वर्ष तक गन्धमादन पर्वत पर विहार करती रही। फलतः भुभाति शुभयोग में कार्तिक पूर्णिमा शुक्रवार को लक्ष्मी के अंश से कन्या उत्पन्न हुई।

*************************************************************************************

**कार्तिकी पूर्णिमायां तु सितवारे च पाद्मजम् । सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं तां मनोहराम् ।।**

(देवीभागवत ०९.१७.०८)

उसकी तुलना सम्भव नही थी अतः तुलसी नाम रखा। शरदऋतु के चन्द्र की समग्र कान्ति, समस्त कलाएँ उसकी नखमणि चन्द्रिका की समता नहीं कर सकती थी। उसने बदरिकाश्रम जाकर देवमान से एक लाख वर्ष तक तप किया। वह 'नारायण को पति बनाऊँगी' संकल्प के साथ ग्रीष्म में पञ्चाग्नि तप, शरत् में जल में, वर्षा में जलधारा के नीचे तप करती थी। बीस हजार वर्ष तक फलाहार, तीस हजार तक पत्राहार, चालीस हजार तक वाताहार, दस हजार तक निराहार एक पैर पर खड़ी होकर तप किया। तब ब्रह्माजी ने आकर कहा, 'देवि! वर माँग लो।' तुलसी ने कहा, 'महाराज! वर तो है कृष्ण को ही पाना। उनकी ही थी पूर्वजन्म में ... उनके ही रहूँगी। मैं राधिका के शाप से मानवी बनी हूँ।'

**याहि त्वं मानवीयोनिमित्येवञ्च शशाप ह**

(देवीभागवत ०९.१७.२५)

अतः हे ब्रह्मन्! मेरे ऊपर कृपा करो और कृष्ण प्राप्ति में साधक बनो।' ब्रह्माजी ने कहा, 'देवि! भगवान् के अंश से सुदामा नामक गोप राधा शापवश दनुवंश में शंखचूड नाम से उत्पन्न हो गया है, श्रीकृष्णांशोत्पन्न उस पूर्वजन्म के अनुरक्त प्रेमी को प्राप्त करके तुम कृष्ण को ही प्राप्त कर लोगी। तदनन्तर तुम वृक्ष बनोगी। भगवान् तुम्हारे बिना भोग नहीं प्राप्त करेंगे। तुम्हें प्राणाधिक प्रिय मानेंगे।

**भविष्यसि वृक्षरूपात्वं पूताविश्वपावनी । त्वया बिना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत् ।।**

(देवीभागवत ०९.१७.३५)

माधव की पूजा तुम्हारे पत्रो से होगी। सब सुनकर प्रसन्नमना तुलसी ने कहा, महाराज! आप मुझे राधिका विषयक भय से मुक्त करें तथा कृष्ण प्राप्त हो मुझे।' ब्रह्माजी ने उन्हें राधा मन्त्र उपदेश किया। व्यासजी कहते है, 'राजन्! श्रीनारायण ने कहा, 'नारद! एक दिन तुलसी ने स्वप्न में एक कन्दर्प, दर्पदलन, पटु युवक को देखा और कामासक्त हो विह्वल हो उठी। स्वप्न में ही अपूर्व सुख का अनुभव कर तत् वियोगजन्य भय से काँपने लगी। विलाप करने लगी। स्वप्न टूटा तो कुछ नहीं ...। उधर शंखचूड भी योगी था। उसे जैगीषव्य मुनि से कृष्णमन्त्र की दीक्षा प्राप्त थी। उसने पुष्कर तीर्थ में मन्त्र सिद्ध किया था। वह पुष्कर से बदरिकाश्रम पहुँच गया। उसे देखकर लज्जित-सी तुलसी छिपने का असफल प्रयास करती, तब तक रसिक वर शंखचूड ने पूछा, 'देवि! कौन हो तुम? यहाँ एकाकी निर्जन वन में क्या करती हो?' तुलसी ने अपना परिचय दिया तथा एकान्त में स्त्री-संग की निन्दा तथा स्त्री चरित्र की निन्दा-सी करती हुई बोली, 'ये स्त्रियाँ संसाररूपी कारागार की जंजीर हैं। बेडी हथकडियाँ है।

**संसार कारागारे च शश्वन्निगडरूपिणी**

(देवीभागवत ०९.१८.४६)

इनके अन्दर सदा काम-ज्वाला जलती रहती है। अन्दर कुछ, बाहर कुछ होता है। शंखचूड ने सबकुछ ध्यान से सुनकर कहा, 'देवि! संसार में प्रशस्त एवं अप्रशस्त स्त्रियाँ है। गंगा, अनुसूया, अरुन्धती, आदि सब प्रशस्त हैं; दूसरी रजोगुणी, तमोगुणी वृत्ति की स्त्रियाँ मोह व कपटरूपा ये अप्रशस्त धर्मबाधिका हैं।' 'हे देवि! मैं तो ब्रह्माजी की आज्ञा से तुम्हारी इच्छा के लिए आया हूँ। आओ! गान्धर्व विवाह कर लें। याद करो तुम, मैं सुदामा गोप हूँ, तुम तुलसी हो। हम तुम जातिस्मर हैं। गान्धर्व विवाह शास्त्र विहित हैं। जैसे ब्राह्मण के यहाँ १० दिन में सूतक पातक शुद्ध होते है। क्षत्रिय के यहाँ १२ दिन मे, वैश्य के यहाँ १५ दिन में, शूद्र के यहाँ मास भर में ...

**शुद्धो विप्रो दशाहेन जातके मृतके यथा । भूमियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ।।**

**शूद्रो मासेन वेदेषु ...... ।**

स्त्रीजित व्यक्ति मरण तक शुद्ध नहीं होता। उसका श्राद्ध, तर्पण, पितर नहीं पाते। हे देव! जो पिता अंगहीन, दरिद्र, वृद्ध, मूर्ख, असक्त को कन्यादान करता है, वह नरक जाता है। ब्रह्महत्या सम पातकी होता है। वह सुयोग्य वर को कन्या दान करने वाला स्वर्ग

****************************************************************************************

जाता है। कन्या विक्रेता नरक में कीडों द्वारा काटा जाता है भोजन में कन्या के मलमूत्र ही पाता है। हे नारद ! इस प्रकार बात चलती थी कि ब्रह्माजी आ गये तथा दोनों का गान्धर्व विवाह करा दिया। 'हे नारद ! तदनन्तर तुलसी तथा शंखचूड परस्पर स्नेहपूर्वक आनन्द से रहने लगे, विभिन्न मनोहारी स्थलों पर, विमानों में, विविध शृंगारिक क्रीडाओं से आनन्दित हो, समय बिताने लगे। शंखचूड ने देवताओं को परास्त कर उनके अधिकार छीन लिये। एक मन्वन्तर तक राज्य किया। देवता ब्रह्माजी के पास, ब्रह्माजी शिवजी के पास, शिवजी वैकुण्ठाधिपति विष्णु के पास पहुँचे। परस्पर अभिवादनोपरान्त देवताओं की पीडा ब्रह्माजी ने विष्णु भगवान् से कहीं। विष्णु जी ने कहा, 'हे ब्रह्माजी ! ये दानव मेरा पार्षद सुदामा है। श्रीराधाजी के शाप से ही इसे दानव बनना पड़ा है। एक बार विरजा के साथ मुझे देख राधा रुष्ट होकर चली गयी थी। मैं भी एकान्त में सुदामा के साथ बैठ गया। मुझे देख राधा ने फिर मुझे क्रोधपूर्वक डाँटा तो सुदामा ने राधाजी को डाँट दिया। फलतः उन्होनें इसे निकुंज से निकालकर दैत्य होने का शाप दिया।

**याहि रे दानवीं योनि इत्येवं दारुणं वचः**

सुदामा रोकने पर भी बिना रुके 'सुदामा चला गया' कहकर सब रोने लगे। मैंने कहा, 'आधे क्षण में पुनः आ जायेगा (अर्थात् वैकुण्ठ का आधा क्षण भूतल पर एक मन्वन्तर बराबर है)।

**गोलोकस्य क्षणार्धेचैकं मन्वन्तरं भवेत् पृथिव्या**

'मन्वन्तर पूरा होने वाला है। शिवजी त्रिशूल लेकर उसका वध करें। उसका सर्वार्थ सिद्धि कवच में ब्राह्मण बनकर ले लूँगा। तभी वह मरेगा, अन्यथा नहीं। मैं उसकी पत्नी तुलसी का सतीत्व भी विचलित करूँगा।'

## शिवदूत शंखचूड के पास गया, शिव-शंखचूड संवाद, दैत्यों ने देवसेना व गणों को पराजित किया, विष्णु द्वारा तुलसी व्रतभंग, तुलसी शाप से पाषाण बने विष्णु, तुलसी पूजा/जयन्ती, गायत्री महिमा, सत्यवान-सावित्री विवाह, यम सावित्री संवाद, दान का फल, यम द्वारा सावित्री को वर

'हे नारद ! तदनन्तर महादेव ने चन्द्रभागा नदी के तट पर वट वृक्ष के नीचे आसन जमाया तथा गन्धर्वराज चित्ररथ को दूत बनाकर शंखचूड के पास भेजा। सात खाई, सात दुर्ग रक्षित नगर की अपूर्व शोभा को देखते-देखते चित्ररथ शंखचूड़ के दरबार पहुँचे। वहाँ शिवजी का सन्देश सुनाया, 'हे दानवराज ! भगवान् शिव ने कहा है कि तुम देवताओं का राज्य लौटाकर सुखपूर्वक रहो या युद्ध के लिए तैयार रहो।' चिन्तनरत शंखचूड ने कहा, 'हे दूत ! मैं स्वयं प्रातः महादेव के दर्शन करूँगा।'

**प्रभातेऽहं गमिष्यमि त्वञ्च गच्छेत्युवाच ह**

(देवीभागवत ०९.२०.२८)

सम्पूर्ण गणादिकों देवसेना के सम्मुख दूत ने शंखचूड का सन्देश सुना दिया। भद्रकाली की सेना, कार्तिकेय, गणेशजी, इन्द्रादि देवता, भूत, प्रेतादि सभी शिवजी के सेवक हैं। उधर शंखचूड ने अन्तःपुर में जाकर तुलसी को शिव सन्देश सुनाया तो वह काँपने लगी, बोली, 'आज ही मैंने दुःस्वप्न देखा है। आप युद्ध न करें किन्तु शंखचूड ने विधाता के क्रम व भाग्य का भरोसा दे युद्ध को ही अंगीकार किया, 'हे देवि ! शोक तो अज्ञानी को होता है, ज्ञानी को नहीं। तुम सर्वेश्वर की साधना करो। फल उन्हीं के चरणों में सौंप दो। चिन्ता त्याग कर शापमुक्त होने के अवसर का आनन्द लो। पूर्व स्मृतिवश श्रीकृष्ण से भाण्डीर वन में प्राप्त ज्ञान के उदय होने पर तुलसी ने शोक त्याग दिया। हे नारद ! प्रातःकाल नित्यक्रिया करके ब्राह्मणों को दानादि देकर दधि, घृत, मधु, दूर्वा आदि देखकर, पुत्र को राजा बनाकर, सेना को व्यवस्थित करके, स्वयं शिवजी के पास गया। तपस्या के फल देने वाले, सर्वसम्पदा देने वाले, भक्तानुग्रह कातर शिवजी को देखा तथा श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। तब शिवजी ने कहा, 'शंखचूड ! तुम विप्रचित्ति पुत्र दम्भ की उपासना का फल हो। कृष्ण के सखा सुदामा हो। अद्भुत भक्त भगवान् के हो, मुक्ति का भी आदर न करने वाले, तुच्छ स्वर्गसम्पदा पर क्यों मुग्ध हो। अरे ! देवों की सम्पत्ति

****************************************************************************************

व अधिकार उन्हें सौप दो। इसी में तुम्हारा गौरव है।'

'हे शंखचूड़! स्थिति भी सदा एक सी नहीं रहती। चन्द्र, सूर्य भी ग्रहणकाल में अशक्त हो जाते हैं। तुम भी उत्पन्न हुए तप द्वारा शक्ति अर्जित कर धनवान् बलवान् हो गये हो। यदि पुनः राज्य छिन जाय, तब भी क्या हानि? अतः युद्ध की अपेक्षा सन्धि ठीक है।' शंखचूड ने कहा, 'महादेव! आपकी बात सर्वथा सत्य है किन्तु देवताओं ने सदा दैत्यों के साथ छल ही किया अमृतपान हो या बलिदान सबमें हम छले गये हैं। हे देव! आप तो समदर्शी हैं। आपके लिए तो दैत्य-देव - दोनों बालक है। आप तो सम है। आप न्याय की बात करो। युद्ध यदि मैं हारा तो क्या बिगड़ा मेरा, शिव से हारा न ...। यदि तुम हारे तो बडा अपयश होगा।' हे नारद! दोनों ओर युद्ध की तैयारियाँ हो गयी। महेन्द्र वृजपर्वा से युद्ध प्रारम्भ हो गया किन्तु शिवजी कार्तिकेय व काली सहित वहीं वट के नीचे बैठे रहे। युद्ध में दानव विजयी हुए। फलतः कार्तिकेय ने क्रोधपूर्वक युद्धारम्भ किया। भद्रकाली दैत्यों का रक्तपान करने लगी। कार्तिकेय की मार से दैत्य पराजित से होने लगे तो शंखचूड ने आग्नेयास्त्र से सभी देवताओं को भगा दिया। अन्ततः कार्तिकेय को भी जर्जरित कर दिया। भयंकर युद्ध हुआ। स्कन्द ने दैत्यराज की शक्ति, शस्त्र, रथ, अश्व सबको नष्ट कर दिया। किन्तु उत्साही शंखचूड ने स्कन्द को शक्ति-प्रहार से मूर्च्छित कर दिया। जिन्हें भद्रकाली उठाकर ले गयीं। पुनः शिवसंकल्प से स्वस्थ हो, युद्ध में आये किन्तु किसी की एक नहीं चलती। नारायणास्त्र को प्रणाम करके शान्त किया। पाशुपतास्त्र को आकाशावाणी ने कहा कि सती के पति को मारने की शक्ति त्रैलोक्य में ही नहीं।

**यावत् सतीतवमस्त्येव सत्याश्च नव योषितः । तावद अस्य जरामृत्युः नास्तीति ब्रह्मणो वचः ।।**

(देवीभागवत ०९.२२.५८)

भद्रकाली के साथ भयंकर युद्ध में भी दैत्य पराजित न हो सका। हे नारद! अब भोले बाबा युद्ध करने चले तो शंखचूड ने उनको दण्डवत् प्रणाम किया। तदनतर भारी युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। विष्णु वृद्ध ब्राह्मण बनकर आये। शंखचूड से प्रतिज्ञा कराकर कवच माँग लिया तथा उसे धारण करके तुलसी के पास शंखचूड बनकर पहुँच गये तथा विलासपूर्वक सतीत्व भंग कर दिया। तभी अवसर पाकर शिव ने त्रिशूल से शंखचूड का संहार कर ही दिया। मरने से पूर्व दैत्य ने युद्धभूमि में योगासन में बैठे कृष्ण का ध्यान किया। फलतः देहान्त होते ही कृष्णरूप हो गया। विमान से गोलोक गया। उसे देखकर राधाकृष्ण प्रसन्न हो गये। शंखचूड की हड्डियाँ ही शंख बनी हैं।

**अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव**

(देवीभागवत ०९.२३.२३)

'शंखजल गंगाजल सम पवित्र होता है। शिवजी को शंखजल नहीं चढता। जहाँ शंख बजता है, वहाँ लक्ष्मी स्थिर रहती है।'

**शंखशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीः सुसंस्थिरा**

(देवीभागवत ०९.२३.२५)

**शंखो हरेरधिष्ठानं यत्र शंखस्ततो हरिः। तत्रैव वसते लक्ष्मी दूरीभूतममंगलम् ।।**

'स्त्री तथा शूद्रों को शंख नही बजाना चाहिए। इससे लक्ष्मी रुष्ट हो जाती है।'

**स्त्रीणां च शूद्रः ध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः । भीता रूष्टा याति लक्ष्मी स्तत्स्थलात् अनयदेशत् ।।**

(देवीभागवत ०९.२३.२८)

नारदजी ने पूछा, हे प्रभो! तुलसी जैसी सती के सतीत्व को भंग करने में भगवान् ने रूप कौन-सा धारण किया?' नारायण ने कहा, 'नारद! भगवान् ने वैष्णवी माया से विप्ररूप धारण करके दैत्य से कृष्ण कवच लिया। स्वयं शंखचूड बने नकली जयघोष करवाये 'शंखचूड महाराज की जय हो'। बडे-बडे दान दक्षिणा बाँटे। अन्तः पुर में अपूर्व स्वागत तुलसी ने किया, 'अहो भाग्य हमारे, आपने प्रकृति संहारक शिव को परास्त कर दिया।' तदनन्तर शय्या पर लेटकर तुलसी के साथ रमण करने लगे, किन्तु तुलसी के मन में

************************************************************************************

संशय हो गया। उसने कहा, 'अरे धूर्त कपटी ! कौन हो तुम? तुम मेरे पति नहीं हो सकते। रहस्य खोलो, नहीं तो अभी शाप से दग्ध किये देती हूँ।' एक सती के वचन सुनकर विष्णु काँप उठे तथा डरकर तुरन्त सनातन विष्णु रूप में आ गये।

**तुलसी वचनं श्रुत्वा हरिः शाप भयेन च**

(देवीभागवत ०९.२४.१९)

उन्हें देखकर तुलसी बेहोश हो गयी। मूर्छा जाने के तदनन्तर बोली, अरे ! पाषाण हृदय ! निर्दयी !! मुझे वैधव्य देकर मेरा सतीत्व भग्न करने वाले, जाओ ! तुम पाषाण हो जाओ ! हे विष्णो ! तुमने मेरे पवित्र जीवन को कलंकित कर दिया।' और रोने लगी। भगवान् ने कहा, देवि ! तुमने भारतवर्ष की पुण्यभूमि पर स्थित बदरिकाश्रम में मदर्थे (**श्रीकृष्ण मम पतिर्भवतु**) तप किया। शंखचूड मेरा ही अंश है। अब वह गोलोक धाम गया, तुम भी मेरे साथ रमण करो। तुम्हारी ये देह 'गण्डकी' नाम से प्रसिद्ध होगी। तुम्हारे केश तुलसीवृक्ष बनेंगे।

**इयं तनुर्नदी रूपा गण्डकीति च विश्रुता ।। तुलसीकेश सम्भूता तुलसीति च विश्रुता ।**

(देवीभागवत ०९.२४.३१-३२)

'सभी पुष्पों, पत्रों में तुलसीपत्र ही प्रधान होंगे। तुलसी में सभी तीर्थ होंगे। तुलसीपत्र के जल से नहाया प्राणी सभी तीर्थों में स्नात माना जाता है।

**सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । तुलसीपत्र तोयेन योभिषेकं समाचरेत् ।।**

(देवीभागवत ०९.२४.३९)

हजारों घट अमृत, लाखों गौदान से भी अधिक प्रीति भगवान् को एक तुलसी पत्र से होती है। (कार्तिक के मास में तुलसी विशेषतः चढाये) मरणासन्न के मुख में तुलसीदल जल मृतक को अमृत्व दे वैकुण्ठ ले जाता है। नित्य तुलसीदल व जल लेने से अपूर्व पुण्य होता है। (माला लेकर या तुलसी हाथ में रखकर जो प्रतिज्ञा करने पर उसे तोड़ता है तो वह महापातकी होता है।) पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, संक्रान्ति, मध्याह्न, संध्या, आशौचकाल में, बिना स्नान के या तैल मर्दनोपरान्त तुलसीपत्र तोडने वाला विष्णुशिरच्छेदी है।

**तुलसी ये विचिन्वन्ती ते छिन्दन्ति हरेः शिरः**

(देवीभागवत ०९.२४.२५)

'इन दिनों में तीन रात्रि तक तुलसीपत्र पवित्र रहता है। तुम अब वैकुण्ठ चलो। मैं तुम्हारा शाप सत्य करूँगा। गण्डकी नदी में ही पाषाण शालिग्राम बनूँगा।'

**अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ**

'एक द्वार, चार चक्र, श्यामवर्णीय शिला वनमाला सहित लक्ष्मीनारायण होगी। वनमाला रहित पृथक् लक्ष्मी व विष्णु जानें।'

| आकार | द्वार | चक्र | वर्ण | नाम | शृंगार/चिह्न |
|---|---|---|---|---|---|
| | १ | ४ | श्याम | लक्ष्मीनारायण | वनमाला |
| | १ | ४ | श्याम | लक्ष्मीविष्णु | - |
| | २ | ४ | श्याम | राघवेन्द्र | गोखुर-वनमाला |
| सूक्ष्म | - | २ | श्याम | वामन | - |
| | - | २ | - | श्रीदायक/श्रीधर | वनमाला |
| | - | २ | गोलाकृति | दामोदर | - |
| | - | २ | श्याम | राम | धनुष तर्कस/बाण |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| बृहत् | – | ७ | – | राजेश्वर | क्षत्रभूषणभूषित |
| | – | १४ | – | अनन्त | – |
| मध्यम (चक्राकार) | – | २ | श्याम | मधुसूदन | श्रीगोखुर |
| मध्य (गुप्त चक्र) | – | १ | श्याम | गदाधर | – |
| | २ | – | हयग्रीव | अश्वमुखाकृति | |
| विस्तृतमुख | – | २ | – | नृसिंह | – |
| विशालमुख | – | २ | – | लक्ष्मी नृसिंह | वनमाला |
| गोलाकार | – | २ | – | वासुदेव | लक्ष्मी |
| मध्य | – | सूक्ष्मचक्र | | प्रद्युम्न | अनेक छोटे छिद्र |
| पृष्ठविशाल | – | २ | – | संकर्षण | – |
| गोलाकार | – | – | पीत | अनिरूद्ध | सुन्दर |

**विविध आकार के शालिग्राम और उससे मिलने वाला फल : क्षत्राकार –** राज्यप्रद; **वर्तुलाकार –** समृद्धि; **शकटाकार –** दु:ख; **शूलाकार –** मृत्यु; **विकृतमुख –** दारिद्रय; **पिंगलवर्ण –** हानि (पीलेरंग की प्रतिमा धूप के कारण पीली हो जाती है, जो पूज्य नहीं); **भग्नचक्र –** व्याधि; **कटे-फूटे/खण्डित :** मृत्यु। 'हे नारद! समस्त पुण्यों की प्राप्ति शालिग्राम की अर्चना से हो जाती है पर शालिग्राम की सन्निधि में दान-पुण्य जैसे अनन्त है, वैसे ही पापासत्यादि भी अनन्त हो जाते हैं। शालिग्राम से तुलसी हटाने वाला, शंख से हटाने वाला स्त्रीहीन रहेगा। हे नारद! इस प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा व तुलसी की कथा पूर्ण हुई। श्रीनारायण ने ही सर्वप्रथम तुलसी की पूजा की थी।' **ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा** या **ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा**।। इस दशाक्षर मन्त्र का जप किया। घृतदीप, धूप, सिन्दूर, चन्दन, पुष्प, फल, नैवेद्य आदि अर्पण करके उन्हें प्रणाम किया था। 'विश्वपावनी, वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नन्दिनी, श्रीकृष्ण जीवनी-तुलसी' ... ... ...

**वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी । पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी ।।**

(देवीभागवत ०९.२५.३२)

... इन आठ नामों से तुलसी पूजन करने वाला अखिल सौभाग्य पाता है। कार्तिक पूर्णिमा में तुलसी का जन्म हुआ। अतः इस दिन इनकी पूजा विशेष होती है। कार्तिक मास में विष्णु को तुलसी भेंट करने वाला विपुल सौभाग्य पाता है इनका षोडषोपचार पूजा करें। नारदजी ने भगवान् नारायण से सावित्री का उपाख्यान् पूछा तो भगवान् बोले, 'हे नारद! सर्वप्रथम सावित्री की पूजा ब्रह्माजी ने की। तदनन्तर देवों, ऋषियों ने तथा महाराज मद्रदेशाधिपति अश्वपात ने मालती सहित वेदमाता की उपासना सन्तान प्राप्ति के लिए पुष्कर में की। पुष्कर में पराशर मुनि ने अश्वपति से कहा, 'राजन्! गायत्री का एक बार जप दिवसकृत पापों को नष्ट करता है, दस बार जप अहोरात्र कृत पापों को जलाता है। शत बार जप से मास कृत, सहस्त्र जप से वर्ष कृत, एक लक्ष जप से जन्म भरके पाप, शत लक्ष (कोटि जप) चार पुरश्चरण करने से सकल जन्मों के पातक पुंज नष्ट होते हैं।

**सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत् । दशवारं जपेनैव नश्येत्पापं दिवानिशत्।।**
**शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत् । सहस्त्रधा जपश्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम् ।**
**लक्षोजन्म कृतं पापं दशलक्षोऽन्य जन्मजम् ।।**
**सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षात् विनश्यति । करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः ।।**

(देवीभागवत ०९.२६.१५)

दस करोड़ जपने वाला आवागमन से मुक्त हो जाता है। अतः तुम दस लक्ष जप करो तो सावित्री के दर्शन होंगे, त्रिकाल

*****************************************************************************************

सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए। सन्ध्याहीन द्विज सभी दैवकर्म और पितृकर्मो के अयोग्य तथा शूद्र के समान निन्द्य है। शास्त्रानुमोदित कर्मत्याग कर शास्त्र निषिद्ध कर्म करने वाला ब्राह्मण, विषहीन सर्प जैसा है। सूर्यादय तक सोने वाला अभक्ष्य भक्षी अग्नि जैसा है। इस प्रकार पराशरजी ने अश्वपति को उपदेश देकर पूजन विधि बताई। ज्येष्ठ कृष्णपक्ष त्रयोदशी के बाद चतुर्दशी व अमावास्या में (त्रिरात्रव्रत) करे। त्रयोदशी की रात्रि चतुर्दशी की रात्रि तथा अमावस्या रात्रि; इनमें, व्रत करके भगवती का ध्यान करे। ये चौदहवर्षीय व्रत है। इसमें चौदह प्रकार के फल-नैवेद्य अर्पित किये जाते हैं। षोडषोपचार पूजा गणेशम्बिकादि पञ्चदेवोपासना के बाद कलश पर सावित्री पूजा की जाती है।

**वेदाधिष्ठात् देवीं च वेदशास्त्र स्वरूपिणीम् । वेदबीज स्वरूपां च भजे तां वेदमातरम् ।।**

(देवीभागवत ०९.२६.५२)

**'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा', 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा'** (प्राचीनमत)

माताओं के लिए – **'ह्रीं श्रीं क्लीं सावित्र्यै नमः'**

'हे राजन् ! नारायण ने नारदजी से कहा, 'हे नारद ! एक बार गोलोकधाम में श्रीकृष्ण ने सावित्री से ब्रह्माजी ने स्तुति की। तब सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोक गयी। हे नारद ! अश्वपति की उपासना से सावित्री माता ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये तथा कहा, 'राजन् ! तुम पुत्र चाहते हो, रानी पुत्री जाओ ! दोनों की इच्छा पूर्ण होंगी। समय प्राप्त कर राजा के यहाँ दिव्य कन्या हुई। राजा ने उनका नाम सावित्री ही रखा। यथासमय राजाज्ञा, पित्राज्ञा से, स्वेच्छया सावित्री ने द्युमत्सेन पुत्र सत्यवान् को पति रूप में प्राप्त किया। वर्षोपरान्त सत्यवान् की आयु पूर्ण हो गयी। वे सावित्री के साथ वन में फल-फूल काष्ठ लेने गये थे। वृक्ष से गिरकर मर गये। यमराज जैसे ही सूक्ष्म शरीर को लेकर चले, सावित्री भी चलने लगी। तब धर्मराज ने मधुर शब्दों में कहा, 'सावित्री ! मेरे नगर में सशरीर कोई नहीं जा सकता, तुम लौट जाओ ! संयोग-वियोग, जन्म-मरण, लाभ-हानि, ये सब कर्मो का खेल है।'

**गन्तु मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम्**

(देवीभागवत ०९.२२.१५)

**कर्मणाजायते जन्तुः कर्मणैव प्रविलीयते । सुखं दुःखं भयंशोकः कर्मणैव प्रविलीयते ।।**

(देवीभागवत ०९.२७.१७)

कर्म बल से ही जीव शिव बन सकता पशु बन सकता है। उच्चावच्च योनियाँ भी कर्म से ही प्राप्त होती हैं। श्रीनारायण कहते हैं, हे नारद ! यमराज के वचनों को श्रद्धापूर्वक सुनती हुई सावित्री ने कहा, 'महाराज ! आप मेरे गुरू हैं, अतः कृपया बताइए –

**किम् कर्म-तद् भवेत् केन-को वा तत् हे तुरेव च । को वा देही- चं देहः कः- कोवात्र कर्म कारकः।।**

(देवीभागवत ०९.२८.०२)

धर्मराज ने क्रमशः उत्तर दिये –

१. **प्रश्न-** कर्म क्या है? **उत्तर-** हे सावित्री ! कर्म दो प्रकार के हैं- शुभ तथा अशुभ। वेदोक्त कर्म शुभ है, सुखप्रद है, सौभाग्यप्रद है, अवैदिक कर्म अशुभ, दुःखप्रद, नारकीय यातनाप्रद है।

**वेदप्रणिहितोधर्मः कर्म यन्मङ्गलं परम् । अवैदिकन्तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च ।।**

(देवीभागवत ०९.२८.१५)

२. **प्रश्न-** कर्मफल का भोक्ता कौन है? **उत्तर-** अज्ञानी ही कर्म फल भोक्ता है। **'ज्ञानी तु सर्व कर्म कुर्वन्नपि न लिप्यते।'**

३. **प्रश्न-** कर्म किससे होता है? **उत्तर-** सप्तदश अवयवात्मक सूक्ष्म शरीर के नेतृत्व में पाञ्चभौतिक शरीर से कर्म होता है।

४. **प्रश्न-** कर्म फल क्या है? **उत्तर-** अज्ञानी के लिए शुभकर्म का शुभफल अशुभकर्म का अशुभ फल ज्ञानी के लिए कुछ भी नहीं।

५. **प्रश्न-** आत्मा क्या है? **उत्तर-** अद्वैतवाद में ब्रह्म ही आत्मा है तदतिरिक्त कुछ नहीं; वैसे अज्ञान की उपाधि से उपहित चैतन्यप्राज्ञ है।

*************************************************************************************

६. **प्रश्न–** शरीर क्या है? **उत्तर–** पाञ्चभौतिक सामग्री से निर्मित नितान्त स्थूल विनाश शील संघट्ट है।
७. **प्रश्न–** भोग क्या है? **उत्तर–** सुख दुःख का साधन रूप वैभव ही भोग है।
८. **प्रश्न–** निष्कृति क्या है? **उत्तर–** मुक्ति ही निष्कृति है?
९. **प्रश्न–** ज्ञान क्या है? **उत्तर–** सत् असत सम्बन्धी विचार का मूल कारण ज्ञान है।
१०. **प्रश्न–** बुद्धि क्या हैं? **उत्तर–** विवेचन मयी शक्ति ही बुद्धि हैं।
११. **प्रश्न–** प्राण क्या हैं? **उत्तर–** वायु के पञ्चप्राण है।
१२. **प्रश्न–** मन क्या हैं? **उत्तर–** ईश्वरांश–इन्द्रिय नायक,चञ्चल,अनिरूण्य, संकल्प विकल्पात्मक है मन
१३. **प्रश्न–** इन्द्रियाँ व इनके देवता क्या है? **उत्तर–** नेत्र (अग्नि), कर्ण (नभ), नासिका (पृथ्वी), त्वचा (वायु), जिह्वा (वरुण)।
१४. **प्रश्न–** जीव क्या है? **उत्तर–** प्राण देहिन्द्रिय का धारक ही जीव है।
१५. **प्रश्न–** परमात्मा क्या है? **उत्तर–** सर्वव्यापक–प्रकृति से परे–निर्गुण ब्रह्म ही परमात्मा है।

इन विलक्षण प्रश्नों के उत्तर देकर धर्मराज ने कहा, 'पुत्रि! अब तुम जाओ! यहाँ से आगे तुम जा नहीं सकती। अब लौट जाओ! अपने पति का और्ध्वदैहिक संस्कार करो।' किन्तु सावित्री ने कहा, 'महाराज! अपने पति तथा आप जैसे धर्मोपदेशक को छोड़कर मैं नहीं जा सकती। कृपया मेरी शंकाओं का समाधान आप करें।'

१६. **प्रश्न–** हे देव! जीव किस कर्म से कौन योनि पाता है? किस कर्म का क्या फल है?

नारायण कहते हैं, 'हे नारद! सावित्री के गूढ प्रश्न को सुन प्रसन्नमना धर्मराज बोले, 'हे देवि! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ तथा प्रथम वर देता हूँ कि तुम सदा सत्यवान् की प्रिया बनी रहो (सौभाग्यवती भव)। जैसे– शिव–शिवा, लक्ष्मी–विष्णु आदि। और भी वर माँगो– मैं आज तुम से अत्यन्त सन्तुष्ट हो गया हूँ।' सावित्री ने सत्यवान् से सौ औरस पुत्र माँगे, सौ भाई माँगे, श्वसुर के लिए सनेत्र राज्यश्री माँग ली। और माँग लिया, 'मेरा गमन वैकुण्ठ तक सत्यवान् के साथ ही हो।'

धर्मराज ने सभी के लिए 'तथास्तु' कहकर कर्मविपाक कहना आरम्भ कर दिया। 'हे सावित्री! पूर्वजन्मों के शुभाशुभ कर्मों के कारण ही जीव भटकता रहता है। विभिन्न योनियों में सुकर्मवशात् स्वास्थ्य, सुख, शान्ति, सम्पत्ति, सन्तति, सौन्दर्य, सम्मान आदि पाता है तथा कुकर्मवशात् रोग, दुःख, पीडा, विकलता, विपत्ति, वैरुण्य, दौर्भाग्य, दौर्मनस्य, अपमान, विग्रह तथा विनाश पा लेता है। हे देवि! सभी योनियों में मनुष्य बनना कठिन है। वह भी भारत में। उसमें भी ब्राह्मण बनना तो अत्यन्त कठिन है, ब्रह्मनिष्ठ होना तो और भी कठिन है।'

**दुर्लभा मानुषी जाति सर्वजातिषु भारते । सर्वेभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठ प्रशस्तः सर्वकर्मसु ।।**

(देवीभागवत ०९.२९.२३)

'निष्काम ब्राह्मण मुक्त हो जाता है, सकाम कर्मफलवशात् चक्कर काटता रहता है। हे सावित्री! चाहे जहां रहे, सकाम भाव की उपासना से जन्म अवश्य मिलता है। जिसकी उपासना करोगे वही लोक मिलेगा, किन्तु निष्कामी मुक्त हो जाता है। निष्काम भाव से कन्यादान करने वाला विष्णुलोक पा लेता है। गव्य–रजत–स्वर्ग–फल–दान करने वाले चन्द्रलोक पाते हैं। सुवर्ण–ताम्र–गौ ब्राह्मणको दान करने पर सूर्य लोक मिलता है। ब्राह्मण को भूमि दान करने पर श्वेतद्वीप प्राप्त होता है। ब्राह्मण को गृहदान करने पर दाता अनन्त काल तक विष्णु धाम का अधिकारी होता है, वापी से कीचड़ निकालने पर भी निर्माण जैसा फल मिलता है।

**यत्फलं च तडागे वै तदुद्धारे च तत्फलम् । वाप्याश्च पंकोद्धरणे वापी तुल्य फलं लभेत् ।।**

(देवीभागवत ०९.२९.५९)

पीपल का वृक्ष लगाने पर तपोलोक मिलता है। पुष्पवाटिका देने पर ध्रुवलोक मिलता है। हे सावित्री! सत्य ये है कि जो पूर्वजन्म में हम देकर आते हैं वही पाते हैं, दान नहीं किया तो वैभव मिल नहीं सकता।

*****************************************************************************************

**यद्धि दत्तञ्च तद्भुङ्क्ते न दत्तं नोपतिष्ठते**

(देवीभागवत ०९.२९.६६)

'पूर्वजन्म के कर्मो से ही हमें जाति मिलती है। कोई कितना भी कर्म से जाति का समर्थन कर इसी जन्म में ब्राह्मणत्व बनने का ढिंढोरा पीटे, तपस्या से ब्रह्मणत्व नहीं मिलता। हे देवि! मैं तुमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। हे सावित्री! ध्यान से सुनो – अन्नदान महादान है। इसका दाता शिवलोक प्राप्त कर लेता है। इससे बढकर दान दूसरा नहीं, क्योंकि; इस दान में पात्र परीक्षा काल, परीक्षा स्थान, परीक्षा जाति नहीं देखी जाती।

**अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । नात्र पात्र परीक्षा स्थान्न काल नियमः क्वचित् ।।**

(देवीभागवत ०९.३०.०४)

उभयमुखी गौ (सवत्सा गौ), सक्षीरा गौ दान करने वाला गौ के रोम के बराबर वर्ष तक विष्णुलोक पा लेता है। पर्व पर अथवा शिवसन्निधि या तीर्थ में इसका अनन्त गुणा होता है। दान ब्राह्मण को ही दे तथा दया प्राणिमात्र पर करे। शालिग्राम दान से वैकुण्ठ प्राप्त होता है, शय्या दान से चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, उपवन दान करने से वायुलोक पाता है। विधिपूर्वक दान देने व लेने वाला दोनों ही वैकुण्ठ प्राप्त करते हैं।

**दाताग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामित्रौ**

(देवीभागवत ०९.३०.२०)

'हे सावित्री! भारतवर्ष में जन्म पाकर ब्राह्मण को तिल दान करने वाला तिल प्रमाण वर्ष तक शिवलोक को प्राप्त करता है।

**तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते । तिलप्रमाण वर्षञ्च मोदते शिवमन्दिरे ।।**

(देवीभागवत ०९.३०.२५)

धनधान्य सम्पन्न भवन का दान करके सौ मन्वन्तर तक देवलोक प्राप्त करता है। तदनन्तर धनाढ्य आभिजात्य कुल में उत्पन्न होता है। कृषिभूमि दान करने वाला सौ कल्प तक वैकुण्ठ में निवास करता है। उत्तम गौशाला दान करने वाला वैकुण्ठ जाता है। तदनन्तर राजा बनता है। सावित्री सम्पूर्ण पृथ्वी दान करने वाला भी मुक्त नहीं होता। जन्म पाता ही है, किन्तु भुवनेश्वरी का उपासक मणिद्वीप पाता है। आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है। हे सावित्री! कार्तिक मास में तुलसी का दान करने वाला तीन युग तक विष्णुलोक पाता है। अरुणोदय काल में गंगास्नान करने वाला विष्णुलोक पाता है।

**मध्ये यः स्नाति गंगायाम् अरुणोद्रय कालतः । युगषष्टि सहस्त्राणि मोहते हरि मन्दिरे ।।**

(देवीभागवत ०९.३०.५९)

नारायण कहते हैं, 'हे नारद! जो ग्रीष्मऋतु में जल पिलाता है वह कैलास पाता है। जन्माष्टमी का व्रत करने से वैकुण्ठ प्राप्त होता है। शिवरात्रि व्रत करने वाला शिवलोक में सात मन्वन्तर तक रहता है। उस दिन विल्वपत्र चढाने वाला भी यही फल पाता है। रामनवमी व्रत का भी अपूर्व पुण्यदायक है। चैत्र व माघ मास में शिवार्चन करकें वेंत लेकर भक्तिपूर्वक नृत्य करने वाला शिवसायुज्य पाता है। शारदीय नवरात्र व्रत करने वाला सप्त मन्वन्तर तक देवीलोक पाता है। आश्विन शुक्लाष्टमी को महालक्ष्मी की पूजा करे या पक्षभर पूजा करे तो यहाँ सम्राट बनकर वहाँ गोलोक में कल्पभर रहता है। कार्तिक पूर्णिमा को शालिग्राम में राधाकृष्ण की पूजा करने वाला, एकादशी व्रत करने वाला वैकुण्ठ में बसता है। शुक्लपक्ष सप्तमी रविवार की संक्रान्ति के दिन हविष्यान्न खाकर सूर्यार्चन करने वाला विप्र को भोजन कराने वाला सूर्यलोक में कल्प तक रहता है। ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी को सावित्री की पूजा करने वाला सात मन्वन्तर तक ब्रह्मलोक में रहता है। माघ शुक्ल पञ्चमी (बसन्तपञ्चमी) को सरस्वती पूजा करने वाला मणिद्वीप में ब्रह्मायु पर्यन्त बसता है। ब्राह्मण भोजन कराने वाला हरिनाम् संकीर्तन करने कराने वाला विशेषकर नारायण क्षेत्र में (गंगाक्षेत्र में) युगों तक वैकुण्ठ में रहता है।

**यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुण भवेत्**

(देवीभागवत ०९.३०.१०७)

******************************************************************************************

प्रतिदिन पार्थिव पूजा करने वाला शिवलिंग के मृत्कणों के प्रमाण से शिवलोक में बसता है। फिर उसके बाद भारत में राजा बनता है।

**शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिंग च पार्थिवम् । यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम् ।**
**मृदो रेणु प्रमाणब्दं शिवलोके महीयते ।।**

(देवीभागवत ०९.३१.११)

शालिग्रामपूजक चरणोदक ग्रहीता वैकुण्ठ में बसता है। भारतवर्ष की भूमि पर जन्म लेकर भी जिसने देवी यज्ञ नहीं किया वह व्यर्थ जीवन गँवाता है। शिव, विष्णु, ब्रह्मा, धर्म, कश्यप, शेष, कर्दम, कपिल, ध्रुवादि ने किये है। जैसे– देवों में विष्णु–वैष्णवों में नारद–शास्त्रों में वेद–वर्णो में ब्राह्मण श्रेष्ठ है वैसे ही सब यज्ञों में देवीयज्ञ श्रेष्ठ है। हे सावित्री ! जाओ ! पति सहित सुखपूर्वक भगवती की आराधना करना। तुम्हें मेरा आशीर्वाद है। हे सावित्री ! आज मैं तुम्हारी भक्ति, सतीत्व, श्रद्धा, विश्वास, दृढ़ता के आगे हार गया (द्वार गयी मौत भी) भारत माता की सती के आगे। मेरे पिता सूर्य ने मुझसे संयमनी का राजा बनने के लिए कहा तो मैने मना कर दिया। तब उन्होंने भगवती के दिव्य गुणों के विषय में मुझे बताया था मुझे याद है कि माता भगवती स्त्रीत्व, पुंस्त्व, नपुंसकत्व रहित हैं। इन्हीं का प्रतिबिम्ब प्रपञ्च है कृष्ण शिवादि देवता है। उन्हीं की आज्ञा से सूर्य समय पर उदयास्त होते, वायु चलती हैं, दिन–रात होते हैं; ब्रह्माा, विष्णु, शिव, इन्द्रादि जिनके संकेत से ही सृष्टि की व्यवस्था देखते हैं। और अन्त में सब इन्हीं में विलीन हो जाते हैं। इनका शयन ही प्रलय और जागरण ही सृजन है। 'हे देवि ! मुक्ति चार प्रकार की है– सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य। भक्ति भी चार प्रकार की हैं– सालोक्यदा, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्यदा। किन्तु भक्त तो भगवान् के चरणों की सेवा के आगे मुक्ति तक की उपेक्षा कर देते हैं। हे सावित्री ! अब जाओ ! तुम और चौदह वर्ष तक लगाकर सावित्री ज्येष्ठ शुक्लपक्ष चतुर्दशी व्रत करना।'

**ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं शुभम्**

(देवीभागवत ०९.३८.८२)

दूसरा व्रत है भाद्र शुक्लाष्टमी महालक्ष्मी व्रत सौलह वर्ष तक करे, मंगलवार को मंगलचण्डी की पूजा करे, प्रत्येक शुक्लपक्ष षष्ठी को षष्ठी देवी की पूजा करे। आषाढ संक्रान्ति को मनसा देवी की पूजा करे। कार्तिकी पूर्णिमा को राधा की पूजा करें। प्रत्येक शुक्लाष्टमी का दुर्गाव्रत करें। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को चाहिए माँ की पूजा अवश्य करे, इन्ही की कृपा से भक्ति मुक्ति मिलती है। तदनन्तर धर्मराज ने सावित्री को पति सहित विदा किया। स्वयं अपने लोक चले गये।

## कृष्णांगोत्पन्न राधा लक्ष्मी, दुर्वासा शाप से श्रीहीन इन्द्र, विष्णु ने लक्ष्मी को सागर में भेजा, इन्द्र द्वारा महालक्ष्मी उपासन, स्वाहावतार, स्वधाख्यान, दक्षिणा चरित्र, षष्ठी चरित्र, मनसा चरित्र, मंगलचण्डी चरित्र, सुरभि चरित्र, राधा-दुर्गा चरित्र

नारदजी अत्यन्त हर्षित होकर बोले, 'प्रभो ! सावित्री का पवित्रोपाख्यान सुनकर अब मैं महालक्ष्मी के विषय में सुनना चाहता हूँ। नारायण ने कहा, हे नारद ! प्राचीनकाल में श्रीकृष्ण के वामांग से लक्ष्मी तथा दक्षिणांग से श्रीराधा प्रकट हुईं। वे दो रूप हो गयी– वामांग लक्ष्मी, दक्षिणांग श्रीराधा। श्रीराधा ने कृष्ण को सर्वस्व मान अपना लिया। जैसे ही लक्ष्मी ने भी कृष्ण की इच्छा की तो श्रीकृष्ण भी दो रूप हो गये– चतुर्भुज विष्णु, द्विभुज श्रीकृष्ण। कृष्ण ने चतुर्भुज विष्णु को लक्ष्मी दे दी।

**दक्षिणांशश्च द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजया द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ पुरा ।।**

(देवीभागवत ०९.३९.१२)

विष्णु लक्ष्मी सहित वैकुण्ठ चले गये। सर्वत्र शोभा, कान्ति, यश रूप में महालक्ष्मी ही विराजती हैं। इनकी प्रथम पूजा वैकुण्ठ में नारायण ने की। दूसरी ब्रह्माजी ने भाद्रपद शुक्लाष्टमी को पूजा की। अन्यों ने सारे शुक्लपक्ष में पूजा की। चैत्र–पौष–भाद्रपद के

*************************************************************************************

मंगलवारों में इनकी पूजा होने लगी। पौष संक्रान्ति में मनु ने मध्या में इनकी पूजा की फिर तो सब ही इनकी पूजा करके मनोरथ पूर्ण करने लगे। श्रीनारदजी ने प्रश्न किया, 'प्रभो ! महालक्ष्मी सागरसुता कैसे हुईं? सुनाइए।' श्रीनारायण ने कहा, 'नारद ! पूर्व में दुर्वासा के शाप से रुष्ट हो लक्ष्मी ने स्वर्ग त्यागकर वैकुण्ठ में निवास किया। क्लेशयुक्त श्रीहीन देवता ब्रह्माजी को ले वैकुण्ठ पहुँचे। भगवान् ने इनकी प्रार्थना पर लक्ष्मी को एक अंश से सिन्धुसुता होने की आज्ञा दी। क्षीरसागर के समय देवताओं को सुख का वरदान मिला। लक्ष्मी को वरदान मिला विष्णु रूप में। विष्णु को कन्यादान मिला – लक्ष्मी रूप में।' पुनः नारदजी ने पूछा, 'प्रभो ! दुर्वासा ने क्यों शाप दिया? तदनन्तर इन्द्र ने किस स्तोत्र-मन्त्र द्वारा भगवती को मनाया? कृपया सुनाइए।'

श्रीनारायण ने कहा, 'नारद ! एक बार रम्भा के प्रति समासक्त इन्द्र बाह्यज्ञान शून्य से हो गये थे। एक दिन लक्ष शिष्यों सहित दुर्वासाजी पधारे। इन्द्र ने भव्य स्वागत किया। दुर्वासाजी ने आशीर्वाद सहित विष्णु प्रदत्त पारिजात पुष्प भी दिया, विलक्षण पुष्प जरा, शोक, मृत्युनाशक था; जिसे इन्द्र ने ऐरावत के सिर पर रख दिया। गजेन्द्र पुष्प के स्पर्श से उन्मत्त हो, वन में भाग गया। दुर्वासाजी ने पुष्प का तिरस्कार देखकर क्रोधपूर्वक कहा, 'अरे मदोन्मत्त ! तुमने विष्णु से सम्प्राप्त पुष्प का त्याग कर हमारा अपमान किया। तुम्हें ब्रह्महत्या सम पाप लगा है। प्राणी भगवान् का प्रसाद त्यागने पर श्रीहीन हो जाता है और प्राणी के द्वारा तुरन्त प्रसाद पा लेंने पर विष्णु कृपा प्राप्त हो जाती है। जाओ ! तुम राज्य भ्रष्टहीन हो जाओ।' इन्द्र तो चरणों में गिर गये, बोले, 'ठीक ही किया प्रभो ! आपने। मैं वैभव नहीं चाहता मेरे ऊपर तो आपकी कृपा हो जाये। ये सम्पत्ति ज्ञान को आवृत करके प्रमत्त बनाती है। आप मुझे ज्ञानोपदेश करें।' दुर्वासाजी ने कहा, 'इन्द्र ! धनान्ध प्राणी को मुक्ति का सूक्ष्म मार्ग दिखता ही नहीं है।'

**सम्पत्ति मदमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः । महाकामी राजसिकः सत्व मार्गं न पश्यति ।।**

(देवीभागवत ०९.४०.४९)

प्रवृत्ति मार्ग पर क्लेश दुःख-जरा-शोक-मृत्यु प्राप्त होती है। निवृत्ति मार्ग परम सुखदायी आनन्द प्रदायक है। इन्द्र जब पूर्वजन्मों के व्रत तप-दान-धर्माचरण पुण्य उदित होते हैं; तब मिलता है – सत्संग। जिसके द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।' इस प्रकार दुर्वासाजी से सत्संग करके इन्द्र आये तो अमरावती में दैत्य है। वे गुरु बृहस्पति के पास पहुँचे। वे गंगा में खड़े सूर्याराधनारत प्रेमाश्रुपूरित नयन, ध्यानान्तर इन्द्र ने समस्त वृतान्त संक्षेप में उन्हें सुनाया तथा रोने लगे। बृहस्पति ने कहा, 'देवेन्द्र ! सुख, दुःख, विपत्ति, सम्पत्ति हमारे कर्मों का ही फल है। अतः धैर्यपूर्वक इसका निदान खोजे, न कि रुदन करें, क्योंकि किया हुआ कर्म बिना भोगे शान्त नहीं होता।'

**नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।।**

(देवीभागवत ०९.४०.७४)

**कर्माधीन ही शाप है, कर्माधीन ही वरदान । कर्माधीन वैभव सकल कर्माधीन महान ।।**
**कर्माधीन ही मृत्यु है कर्माधीन अवतार । कर्माधीन ही डूबना कर्माधीन है पार ।।**

'देखो, देवेन्द्र ! साधारण वस्तु साधारण काल में साधारण पात्र को दान दी जाये तो उसका फल भी साधारण ही होगा किन्तु वहीं वस्तु उत्तम पर्व में किसी विशिष्ट पात्र को दी जायें तो विलक्षण प्रभावकारी सिद्ध होगीं। खेत की उर्वरा पर उपज निर्भर करती है। एक ही बीज, एक ही काल, एक ही किसान बराबर परिश्रम से बोकर भी कम या ज्यादा फसल पाता है क्यों? खेत भेद से न ! जून में गेहूं बोकर क्या मिलेगा? दिल्ली, कलकत्ता में केशर बोकर क्या मिलेगा? मरुस्थल में धान बोने से क्या मिलेगा? 'हे इन्द्र ! सामान्य काल की अपेक्षा संक्रान्ति, पूर्णिमा, अक्षय तृतीया, अक्षय नवमी में दिया गया दान अक्षय फल देता हैं। अतः तुम, अब उचित समय है, भगवदाराधन करो। कष्ट मिट जायेगा।' 'हे नारद ! तदनन्तर इन्द्र देवताओं सहित गुरु को आगे करके ब्रह्माजी के यहाँ पहुँचे। प्रणामादि किया, ब्रह्माजी ने कहा, 'इन्द्र ! जिसका मातृकुल पवित्र, पितृकुल पवित्र, गुरुकुल पवित्र हो, उसे अभिमान नहीं हो सकता।'

**कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोहं कृतो भवेत्**

**********************************************************************************

'हे इन्द्र! जिन कृष्ण के अंश हम-शिव-शेष-विष्णु-धर्म इन्द्र तुम सब हैं। उनके निर्माल्य पारिजात पुष्प का तुमने अनादर किया। वह पुष्प तो शिव द्वारा भगवान् की पूजा में प्रयुक्त था; जो दुर्वासा ने तुम्हें दिया। तुम तो अभागे हो! कौन करेगा तुम्हारी रक्षा? चलो! वैकुण्ठ चलें। वहाँ उन्होंने भगवान् के चरणों में अपनी व्यथा कथा कही। भगवान् ने कहा, 'हे इन्द्र! मैं तो भक्त पराधीन हूँ। दुर्वासा शिवअंश व मेरे भक्त हैं। उनका तिरस्कार ही तुम्हारे विनाश का कारण हैं। जहाँ शंख नहीं बजता, तुलसी नहीं, शिवपूजा नहीं होती, ब्राह्मण भोजन नहीं होता, वहाँ लक्ष्मी नहीं रह सकती।'

**यत्र शंख ध्वनि नोस्ति तुलसी न शिवार्चनम् । न भोजनञ्च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति ।।**

(देवीभागवत ०९.४१.३०)

भक्त निन्दक के यहाँ, एकादशी व जन्माष्टमी को अन्न खाने वाले के यहाँ, कन्या विक्रेता व भगवन्नाम विक्रेता के यहाँ लक्ष्मी नहीं रह सकती। अतिथि को भोजन जहाँ नहीं मिलता, वहाँ से लक्ष्मी चली जाती है। शूद्रों का यज्ञ कराने वाला, कृपणान्न भोजी, नाखून से भूमि में लिखने वाला, व्यर्थ तृण तोडने वाला, जो तैल लगाकर स्नान नहीं करता, अपने अंग से बाजा बजाने वाला, कभी भी लक्ष्मीवान् नहीं हो सकता। हे इन्द्र! जहाँ शंख ध्वनि हो, शालिग्राम तुलसी हो, जहाँ नर्मदेश्वर पार्थिकेश्वर हो, दुर्गापूजा हो, वहाँ लक्ष्मी सदा निवास करती है। इस प्रकार सबको समझाकर विष्णु ने महालक्ष्मी को क्षीरसागर सुता होने की आज्ञा दी। तदनन्तर समुद्र-मन्थन के ब्याज से पुरुषार्थ व भगवत्कृपा के द्वारा देवताओं को राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई और भगवान् को महालक्ष्मी। 'हे नारद! अब महालक्ष्मी की ध्यान, स्तोत्र व पूजाविधि सुनो। एक बार देवराजेन्द्र ने क्षीरसागर तट पर भगवती का आवाहन गुरु के सानिध्य में किया तथा षोडषोपचार पूजा की, महामन्त्र का दस लाख जप किया।

**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा**

कुबेर को इसी मन्त्र से ऐश्वर्य मिला तथा इन्द्र को प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। इन्द्र माँ की कृपा का स्मरण करके रोमाञ्चित होते, रोते जाते थे तथा ब्रह्मा से प्राप्त भव्य दिव्य स्तोत्र का पाठ कर रहे थे, 'हे माँ! जैसे सद्योजात बालक की रक्षा माँ ही कर सकती है, अन्य नहीं। भले ही एक बार कोई बालक माँ बिना जी उठे किन्तु आपकी कृपा के बिना किसी का जीना सम्भव ही नहीं है।'

**मातहीनः स्तनान्धस्तु स च जीवति दैवतः। त्वया हीनो जनः कोपि न जीवत्येव निश्चितम ।।**

(देवीभागवत ०९.४२.६४)

इस प्रकार कहते-कहते देवराज आनन्दविभोर होने लगे। 'हे नारदजी! पूर्व में देवताओं के भोजन की व्यवस्था नहीं थी। वे ब्रह्माजी के पास पहुँचे तथा अपनी पीड़ा व्यक्त की। ब्रह्माजी बोले, 'ब्राह्मण, क्षत्रिय जो होम करेंगे उसी हवि से तुम्हारी क्षुधा मिटेगी।'

**हवि ददाति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः**

(देवीभागवत ०९.४३.१३)

तब भी उनकी क्षुधा निवृत्ति नहीं हुई तो वे भगवती भुवनेश्वरी की शरण में गये। प्रार्थना करने पर जगन्माता के कलांश से स्वाहा का उद्भव हुआ तथा अग्नि की सहचरी बनी तथा स्वाहा पूर्वक देवी ने कृष्णप्राप्ति के लिए तप किया। श्रीकृष्ण ने उनसे कहा, 'देवि वराहकल्प में मेरी प्रिया बनोगी। उस समय राजा नग्नजित् की पुत्री होने से तुम्हारा नाम 'नाग्नजिति' होगा। अब तुम अग्नि के सहयोग से मंत्र का भाग बनकर यज्ञ सम्पन्न करो।'

**अधुना अग्नेदोहिका त्वं भव पत्नी च भामिनी । मन्त्रांगरूपा पूज्या च मत्प्रसादान्भविष्यति ।।**

(देवीभागवत ०९.४३.३१)

श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। तभी से जो द्विजाति स्वाहा रहित आहुति देते हैं, उनकी आहुति मानी नहीं जाती। जैसे विषहीन सर्प व्यर्थ, वेदहीन ब्राह्मण व्यर्थ, पति सेवाहीन स्त्री व्यर्थ, विद्याहीन पुरुष व्यर्थ, फलहीन वृक्ष व्यर्थ है उसी प्रकार स्वाहाहीन मन्त्र से हवन का फल नहीं, वह आहुति व्यर्थ है।

*****************************************************************************************

**स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः । स्वाहान्ते नैव मन्त्रेण सफलं सर्वमेव च ।।**

(देवीभागवत ०९.४३.४२)

स्वाहा मन्त्र – **ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा ।।** इनके सोलह नाम स्मरणीय हैं : स्वाहा, वह्निप्रिया, वह्निजाया, सन्तोषकारिणी, क्रिया, कालरात्री, पारिपाककरी, ध्रुवा, गति, नरदाहिका, दहनक्षमा, संसारतारिणी, देवजीवनरूपा, शक्ति, देवपोषण। 'हे नारद ! इसके बाद अब स्वधादेवी का उपाख्यान सुनो– पितरों का भोजन, श्राद्धान्न व तर्पण प्रदत्त जल था। संध्यावन्दन, तर्पण, श्राद्ध, बलि, वैश्वदेव, वेदाध्ययन विहीन ब्राह्मण अपवित्र रहता है। उसे द्विजोचित कर्मो में अधिकार नहीं होता। पितर क्षुधापीडित ब्रह्माजी के पास पहुँचे। अपनी व्यथा कही तो ब्रह्माजी ने मानसी कन्या जो जगदम्बा के अंश से उत्पन्न थी (स्वधा) उत्पन्न कर दी तथा पितरों को दान में दे दी। तभी से पितरों के तुल्य दान में स्वधा का प्रयोग अनिवार्य हो गया।

**स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य पितृभ्योदेयमित्यपि । स्वाहाशस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता ।।**
**सर्वत्रदक्षिणाशस्ता हतं यज्ञमदक्षिणम् ।।**

(देवीभागवत ०९.४४.१५)

देवकार्य में स्वाहा, पितृकार्य में स्वधा; सर्वत्र दक्षिणा प्रशक्त है। 'हे नारद ! आश्विन कृष्णपक्ष त्रयोदशी, मघा नक्षत्र में या श्राद्धदिवस में स्वधा की पूजा करें। तब श्राद्धारम्भ करे क्योकि इनकी पूजा बिना किया श्राद्ध निष्फल होता है।

**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा**

'हे नारद ! तीन बार स्वाहा, तीन बार स्वधा शब्दोच्चारण से श्राद्ध तर्पण का फल मिल जाता है। स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा; ये चार नाम इष्टपूर्ति करने वाले होते है। अन्त में माँ को प्रणाम करे। श्रीमन् नारायण ने कहा, 'हे नारद ! अब दक्षिणा चरित्र सुनो– गोलोक में कृष्णप्रिया एक सुशीला गोपी थी। रासमण्डल में एक दिन सहसा सुशीला कृष्ण की वामजंघा पर बैठ गयी तो राधा को क्रोध आ गया। अतः कृष्ण अन्तर्धान हो गये। राधा ने शाप दिया, 'आज के बाद गोलोक में आते ही सुशीला भस्म हो जायेगी।' तदनन्तर वह रोकर कृष्ण को पुकारने लगी किन्तु कृष्ण नहीं आये। 'हे नाथ मेरा साम्राज्य आपके बल से ही है, आप कृपा करके दर्शन दें, तभी दक्षिणा देवी आ गयीं। पूर्वकाल में यज्ञों का फल न मिलने से सभी उदास हो, ब्रह्माजी के पास गये। तब ब्रह्माजी विष्णु के पास गये तो विष्णु जी ने महालक्ष्मी से मर्त्यलक्ष्मी दक्षिणा दी जिसे यज्ञ के साथ किया। उनसे यज्ञफल प्राप्त हुआ। दक्षिणा बिना यज्ञ अपूर्ण है। अवैधानिक है। यदि प्रमादवश दक्षिणा देने में मुहूर्त बीतने पर दुगुनी, रात बीतने पर सौ गुनी, तीन रात्रि बीतने पर अयुत गुनी, सप्ताह बीतने पर बीस हजार गुनी हो जाती है।

**मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम् । एकरात्रे व्यतीते तु भवेत् शतगुणा च सा ।।**
**त्रिराते तत्छत्रिगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः। मासे लक्षगुण प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते ।।**

(देवीभागवत ०९.४५.५५–५६)

'ब्राह्मणवृत्ति को मारने वाला अपवित्र पामर होता है, देवपूजा व तर्पणफलकारक सफल नहीं होता, आहुति देवता नहीं लेते; संकल्पित, सुनिश्चित दक्षिणा यजमान न दे अथवा ब्राह्मण न माँगे, तो दोनों पापी होते है। नरक में गिरते हैं जैसे रस्सी टूटने पर घट कूप में गिर जाता है।'

**दत्तं न दीयते दानं गृहीता नैव याचते । उभौ तौ नरके यातश्छिन्न रज्जौ यथा घटः ।।**

(देवीभागवत ०९.४५.६१)

'हे नारद ! दक्षिणा बिना यज्ञकर्म या पूजा का फल बलि को जाता है।'

**अदक्षिणाञ्च यत्कर्म तद्भुक्ते च बलिर्मुने**

(देवीभागवत ०९.४५.६६)

*************************************************************************************

'अश्रोत्रिय श्रद्धाहीन श्राद्ध का अन्न बलि का आहार है। वामन भगवान् ने उसे वर दिया था। आचार-भ्रष्ट व्यक्ति का श्राद्ध गुरु अभक्त का कर्म फल भी बलि ही पाता है। महालक्ष्मी के दक्षिण स्कन्ध से प्रकट होने के कारण इनका 'दक्षिणा' नाम है। ब्रह्मा कर्मरूप, शिव फलरूप, विष्णु यज्ञरूप। अभक्त का फल भी बलि ही पाता है। '**ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा**' अभीष्ट मनोरथों को पूर्ण करने वाला ये आख्यान है।' नारदजी ने कहा, 'प्रभो ! अब षष्ठी देवी, मंगलचण्डी व मनसा देवी का चरित्र भी सुनाइये।

नारायण ने कहा, 'हे नारद ! महामाया के षष्ठांश से उत्पन्न होने के कारण ये षष्ठी कहलाईं। इन्हें देवसेना कार्तिकेय पत्नी भी कहा जाता है। बालादिष्ट शान्ति के लिए इनकी उपासना की जाती है। ये पुत्र प्रदान करने वाली भी हैं। मनुपुत्र प्रियव्रत तो मरने को तैयार, तभी आकाशमण्डल में विमानस्थ षष्ठीदेवी ने आकर राजा को समझाया कि सुख-दुःख, संयोग-वियोग, विपत्ति-सम्पत्ति, हर्ष-विषाद, सब कर्मवश प्राप्त होते हैं, रोगी-निरोगी, पुण्यात्मा-पापात्मा सब पूर्व जन्म का खेल है। तदनन्तर अपनी कृपामात्र से उन्होंने बालक को जीवित कर दिया तथा कहा, 'राजन् ! तुम मेरी पूजा करो तथा कराओ। ये सुव्रत तुम्हारा यश बढायेगा सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा। तभी से षष्ठी देवी की पूजा प्रत्येक शुक्ल षष्ठी को होने लगी। छठे दिन या इक्कीस्वें दिन पूजा शालिग्राम में, कलश पर, बटमूल में या दीवार पर भी इनकी पूजा की जाती है।

**'ॐ ह्रीं षष्ठी देव्यै स्वाहा'**

एक लक्ष जप करने से अवश्य पुत्र होगा। वर्ष पर्यन्त निरन्तर स्तोत्र पाठ करने वाला पुत्रवान् होगा। रोगी बालक की रक्षार्थ मास पर्यन्त अर्गलास्तोत्र पाठ करें। हे नारद ! 'मंगलचण्डी' शब्द की व्याख्या चण्डी (प्रभाव शालिनी) मंगलचण्डिका, मंगल भी जिनकी पूजा करते हैं। शिवजी ने मंगलचण्डी की पूजा करके ही त्रिपुरासुर पर विजय प्राप्त की थी। तदनन्तर शिवजी ने विधानपूर्वक मंगलचण्डी की उपासना की थी।

**'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मंगलचण्डिके हुँ हुँ फट् स्वाहा'**

इक्कीसाक्षर मन्त्र कल्पवृक्ष ही है। सभी का मंगल करने वाली मंगलरूपा मंगलाश्रया। मंगल के दिन इनकी पूजा की जाती है। हे नारद ! अब कश्यप की मानसिक पुत्री मनसा देवी का उपाख्यान सुनो। मननशीला मनसा ने तीन युग प्रमाण तक श्रीकृष्णप्राप्त्यर्थ तप किया। फलतः शरीर जीर्ण हो गया, जिससे इनका नाम जरत्काररू हो गया। यही सती जगत्गौरी, शिवप्रिया बनी। ये ही सिद्धयोगिनी, मृत्संजीवनी है, ये ही आस्तीक मुनि की माता हैं तथा महायोगी जरत्कारू ऋषि की प्रिया है। इनके बारह नाम स्मरणीय हैं - 'जरत्कारू, जगत्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारूप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी, महाज्ञानयुता।' इन बारह नामों का स्मरण करने से सर्पभय नहीं रहता। इस स्तोत्र की सिद्ध करने से सर्पो नागों को अपने वश में किया जा सकता है। 'हे नारद ! अब मनसा देवी का पूजा विधान सुनो ! इनका मन्त्र है -

**'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसा देव्यै स्वाहा'**

'ये मन्त्र पाँच लाख जपने से सिद्ध हो जाता है। तथा साधक को बिष भी अमृत तुल्य हो जाता है। संक्रान्ति के दिन या पंचमी को किसी एकान्त गुफा में मनसा देवी का ध्यान करे। इससे मनोरथ पूर्ण होते हैं। हे नारद ! एक बार सारे संसार में सर्प ही सर्प हो गये। अतः भयभीत प्राणी ब्रह्माजी के पास गये। कश्यपजी ने ब्रह्माजी की कृपा से मन्त्र तथा उनकी अधिष्ठात्री देवी मनसा को उत्पन्न किया। तब से ये कैलाश पर जाकर महादेव की तपस्या करने लगीं। उन्होंने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण का अष्टाक्षर मन्त्र '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय नमः** ' दिया तथा त्रैलोक्य मंगल कवच भी प्रदान किया। वहाँ मनसा देवी पुष्कर में जाकर तप करने लगी। श्रीकृष्ण ने आकर दर्शन दिये। उनका आराधन स्वयं किया। फिर सबसे कराया। त्रैलोक्य पूजिता बनाया और चले गये। कश्यपजी ने जरत्कारू ऋषि के साथ इनका विवाह कराया। शर्त थी - जिस दिन मेरी इच्छा के विरुद्ध ये आचरण करेंगी, उसी दिन त्याग दूँगा। एक दिन पुष्कर में वट के नीचे ऋषि पत्नी की जंघा पर सिर रखकर सो गये। सूर्यास्त होने लगा। धर्मपरायणा मनसा को 'सन्ध्याहीनता से ब्रह्महत्या लगेगी।' ऐसी चिन्ता होने लगी। धर्मपत्नी का पूर्णदायित्व निभाया। जैसे ही जगाया वैसे ऋषि रुष्ट हो गये। स्त्री का परम धर्म पतिसेवा है। जो पति

*****************************************************************************************

का अपकार करती है, उसका पूजा-पाठ व्यर्थ है। जिसने पति की पूजा की उसने कृष्ण की पूजा की।

**भर्तुरप्रिय कारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम्  । यया प्रियः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया ।।**

(देवीभागवत ०९.४८.३३)

तीर्थ, दान, धर्म, कर्म, यज्ञ, पूजा, व्रत, तप, सत्य - सबका फल पतिसेवा के फल के सोलहवाँ अंश भी नही है। मनसा ने मनाया तथा कहा, 'प्रभो ! मैंने तो संध्यालोप के भय से आपको जगाया। मेरा दोष नहीं है।' ऋषि तब बोले, 'सूर्य की क्या ताकत जो मेरे अर्घ्य लिये बिना अस्त हो जाये।' सूर्य ने ऋषि को सन्ध्या सहित मनाया, 'हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण की शक्ति अपार हैं। इनके कोप से क्षण भर में विश्व नष्ट हों जाये। क्षणभर मे वे नूतन सृष्टि कर दें। जरुत्कारू ऋषि ने पूर्व प्रतिज्ञानुसार मनसा देवी को त्याग दिया; पुनः तप में लीन हो गये। किन्तु उससे पूर्व उन्होंने मनसा देवी का नाभि का स्पर्श कर उन्हें योगबल से पुत्रवती बना दिया। 'तुम्हारा पुत्र त्रैलोक्यविख्यात होगा, तुम्हारे कुल की रक्षा करेगा, उसका नाम आस्तीक होगा।' वास्तव मे पुत्रवती वह है, जो पुत्र को भगवतभक्त बनाये, गुरु यदि शिष्य का उद्धार न कर सके तो कैसा गुरु है? मनसा देवी ने प्रार्थना की, 'प्रभो ! मैं जब भी स्मरण करूँ, आप अवश्य दर्शन दें, क्योंकि सैकडों पुत्रों से अधिक पति प्रिय होता है।' ऋषि के जाने पर मनसा कैलाश पहुँचीं, वहीं आस्तीक को जन्म दिया। शिवजी ने जातक का नामकरण, वेदाध्ययन कराया। 'हे नारद ! ये आस्तीक ब्रह्मतेजस्वी थे। राजा परिक्षित के पुत्र जनमेजय ने जब सर्पयज्ञ किया, तब सर्पो की रक्षा के लिए वे यज्ञ में आये तथा इस आभिचारिक अमंगल यज्ञ को बंद कराया था। श्रावण शुक्ल पञ्चमी को इनकी पूजा करने से विशेष कृपा प्राप्त होती है। कामधेनु ने, इन्द्र ने माता मनसा की पूजा की। मनसा की पूजा करने से सर्पभय नहीं रहता।

नारदजी ने कहा, 'हे देव ! मैं सुरभि का उपाख्यान सुनना चाहता हूँ।' नारायण ने कहा, 'हे नारद ! एक दिन वृन्दावनबिहारी को विहार करते हुए दूध पीने की इच्छा हुई तो उन्हीं के वामांग से सुरभि प्रकट हो गयी। मनोरथ नामक वत्स था। श्रीदामा ने अमृत तुल्य दूध निकाला, श्रीकृष्ण को पिलाया। पानकाल में पान-पात्र फूटने से ही क्षीर सागर का निर्माण हुआ।

**सरो बभूव पयसां भाण्ड विस्रंनेन च । गोलोकेऽयं प्रसिद्धश्च सोऽपि क्षीरसरोवरः ।।**

(देवीभागवत ०९.४९.०९)

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को (गोवर्धन पूजा) श्रीकृष्ण ने गोवर्धनधारी ने गोवर्धनार्थ सुरभि की पूजा की। तभी से सब गौमाता की पूजा करते है। '**ॐ सुरभ्यै नमः**' - एक लक्ष जप से सिद्ध होता है। इनकी पूजा-कलश में, गौमस्तक पर, गौ के खूँटे पर, शालिग्राम में, जल में या अग्नि में करें। इन सुरभी की पूजा से सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है। साथ ही कृष्णकृपा भी प्राप्त होती है। श्रीनारदजी ने कहा, 'प्रभो ! अब मैं श्रीदुर्गा जी व राधाजी का पूजा-विधान सुनने की इच्छा रखता हूँ। श्रीनारायण ने कहा, 'हे नारदजी ! श्रीकृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा बुद्धयधिष्ठात्री शक्ति श्रीदुर्गा हैं। इनकी कृपा के बिना मुक्ति नहीं मिलती। श्रीराधा का मन्त्र वाञ्छाचिन्तामणि है। '**ॐ ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा**' - सर्वप्रथम इस मन्त्र का जप श्रीकृष्ण ने किया था। 'हे नारद ! राधा की आराधना के बिना श्रीकृष्ण की कृपा नहीं मिलती।

**कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं बिना।**

(देवीभागवत ०९.५०.१६)

इस मन्त्र का ऋषि नारायण, छन्द-गायत्री, राधा देवता तारा बीज, शक्ति बीज है शक्ति (**ह्रीं**)। भगवती राधा का सांगोपांग पूजन कर अंगावरण पूजन करे। सहस्रार्चन करे, मन्त्र का एक हजार जप अवश्य करें। कार्तिक पूर्णिमा को इनकी पूजा अवश्य करें। पश्चात् स्तोत्र का पाठ भी करें।

**नारायण उवाच -**

**नमस्ते परमेशानि रासमण्डल वासिनी । रासेश्वदि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिक प्रिये ।। नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे । ब्रह्मविष्णोवादिभिदैवेः वन्द्यमानपदाम्बुजे ।। नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्री शंकरि । गंगापद्मावतीरूपे**

****************************************************************************************

**षष्ठि मंगल चण्डिके ।। नमस्ते तुलसी रूपे नमो लक्ष्मी स्वरूपिणि । नमो दुर्गे भवावति नमस्ते सर्वरूपिणी ।। मूलप्रकृति रूपां त्वां भजामः करूणार्णवाम् ।संसारसागरादस्मानुद्धराम्व दयां कुरू ।। इदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेद्राधां स्मरेन्नरः । न तस्य दुर्लभं किञ्चित् कदाचिच्च भविष्यति ।। देहान्ते च वसेन्नित्यं गोलोके रास मण्डले । इदं रहस्यं परमं न चारख्येयन्तु कस्यचित् ।।**

'हे नारद ! अब भगवती दुर्गा का आख्यान सुनो – 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ऋषि, गायत्री, उष्णिक, त्रिष्टुप छन्द, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती देवता, रक्त–दन्तिका–भ्रामरी बीजं, नन्दा शाकम्भरी भीमा शक्ति, धर्मार्थकाम मोक्ष प्राप्ति विनियोगः। न्यास ध्यान करके यन्त्रावरण पूजा करे। तदनन्तर राजोपचार से माता की दिव्य–भव्य पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक नवार्णमन्त्र का जप करें। तदनन्तर सप्तशती का पाठ करें क्योकि इससे श्रेष्ठ त्रिभुवन में कोई स्तोत्र ही नहीं है।'

**ततः सप्तशती स्तोत्रं देव्या अग्रे तु सम्पठेत् । नानेन सदृशं स्तोत्रं विद्यते भुवनत्रये ।।**

'भगवती दुर्गा के उपासक को संसार में कोई वस्तु दुर्लभ नही हैं। नवरात्र में तो सप्तशती का पाठ करें ही, किन्तु नित्य भी करे तो माँ की अपार कृपा प्राप्त होती है। मूर्ख विद्वान हो जाता है। दरिद्र सम्राट् बन जाता है अपुत्री पुत्रवान् हो जाती है।'

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं नवमः स्कन्धः ।।*

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। दशमः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### मनु-शतरूपा ने किया तप, विन्ध्याचल-नारद समागम, विन्ध्य ने रोका सूर्यमार्ग, ब्रह्माजी शिव-शरण में, काशी में अगस्त्यजी की प्रार्थना, अगस्त्य-विन्ध्य मिलाप

नारायण कहते हैं, 'हे नारद! अब भगवती के भक्त राजाओं के चरित्र क्रम सुनो। ब्रह्माजी विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न हुए। उन्होंने सृष्टि बढ़ाने के लिए मनु-शतरूपा को प्रकट किया, इनका विवाह हुआ। ये दोनों क्षीरसागर किनारे माता की मृण्मयी मूर्ति बनाकर पूजन तथा '**ऐं**' बीज का जप करने लगे। सौ वर्ष तक निरन्तर निराहार तप किया। भगवती प्रत्यक्ष आ गयी। उन्होंने दो वर माँगे, 'माँ! एक तो सृष्टिप्रक्रिया में विघ्न न हो, हमारे सभी कार्यसिद्ध हों तथा इस मन्त्र का जप सभी को अविलम्ब सफलता प्रदान करें।'

**सर्गकार्ये विघ्नाः नश्यन्तु मे शिवे । वाग्भवमन्त्रोपासकानां सिद्धिर्भवतु सत्वरा ।।**

(देवीभागवत १०.०१.२२)

भगवती ने मनु से कहा, 'वत्स! तुमने अपूर्व तप करके मुझको प्रसन्न कर लिया है। जाओं! तुमको यशस्वी पुत्र और निष्कण्टक राज्य प्राप्त होंगे।' इस प्रकार वरदान देकर विन्ध्यवासिनी माता चली गयी। नारदजी ने पूछा, 'महाराज! ये विन्ध्याचल कौन है? जिसने सूर्य का मार्ग रोक दिया।' नारायण कहते है, 'हे नारद! एक बार की बात है। वीणा बजाते हरिगुण गाते भक्तराज नारदजी विन्ध्याचल के यहाँ पहुँचे। विन्ध्य ने बडा सत्कार किया। इसी बीच अहंकार का अंकुर देख, नारदजी ने बीज बो दिया। बोले, 'अरे विन्ध्य! तुम्हारे-जैसा विशाल कोई नहीं, फिर भी सुमेरू का नाम सबसे आगे रहता है। सूर्य भी उसी की परिक्रमा करते हैं। सुन्दर है, ऊँचा है तो क्या? लाखों जीवों का पालन तो तुम ही करते हो न। वहाँ तो जीवन ही नही हैं। वह सुमेरू स्वयं को पर्वतराज मानता है। चलों! हम तपस्वियों को क्या? इन झंझटों से।' और नारदजी चले गये।

सूतजी कहते हैं, 'ऋषियों! नारदजी के जाने पर विन्ध्याचल विचलित और अशान्त हो गया, 'अरे! मैं विशाल होने पर भी सज्जनता के कारण पिछड़ गया। अब मैं सुमेरू को नीचा दिखाऊँगा। अतः सूर्य का मार्ग रोक लेता हूँ।' और आकाश को छूती हुई

*************************************************************************************

चोटियों से विन्ध्य ने सूर्यमार्ग रोक लिया। प्रातःकाल सूर्य के सारथी अरुण ने कहा, 'महाराज! विन्ध्य ने सुमेरू से स्पर्धा करके मार्ग रोक लिया। अब रथ आगे नहीं जा सकता। राहु के ग्रासकाल में भी आपका कुछ नहीं बिगड़ा। किन्तु यहाँ क्या कर सकते हैं? स्वाहा-स्वधा-विहीन विश्व नष्ट हो जायेगा। पश्चिम-दक्षिण की रात खत्म नहीं हो सकती। पूर्वोत्तर का दिन खत्म नहीं हो सकता। त्रिलोकी में हाहाकार मच गया।'

सूतजी बोले, 'इन्द्रादि देवता ब्रह्माजी को लेकर भगवान् शङ्कर के यहाँ कैलाश पर पहुँचे। विनम्र प्रार्थना करने लगे, 'हे महादेव! संसार पर जब-जब भारी संकट आया, तब आपके अतिरिक्त रक्षा के लिए और कौन हो सकता है? कृपया हमारी रक्षा करें।' शिवजी ने पूछा, 'कहों! क्या करण है?' तब ब्रह्माजी ने कहा, 'देव! सुमेरू से प्रतिद्वन्द्वता के कारण विन्ध्याचल ने सूर्यमार्ग रुद्ध कर दिया है। फलतः दिन-रात का क्रम, स्वाहा-स्वधा का उपक्रम, दिन-मास का व्यवहार, सब नष्ट हो रहा है। आप उसकी बुद्धि को स्तम्भित करें।' शिवजी ने कहा, 'चलो! विष्णु के पास ... ...'। सभी वैकुण्ठ चल दिये। सूतजी कहते हैं, 'हे मुनियों! वैकुण्ठ में भगवान् नारायण की वन्दना करके देवताओं ने उनकी स्तुति की, 'हे प्रभो! विविधावतारी देव! आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम है।

**दशावतारास्ते देवभक्तानां रक्षणाय वै**

'हे दयासागर! हमपर कृपा करके हमारी रक्षा करें।' भगवान् ने कहा, 'देवों! कहो, क्या संकट है? मैं तुम्हारी रक्षा करने के लिए उद्यत हूँ। इस स्तोत्र का पाठ करने वाला दरिद्री नहीं होगा, रोगी नहीं होगा, भक्ति, मुक्ति दोनों का अधिकारी होगा।' सूतजी कहते हैं, 'हे ऋषियों! भगवान् के वचनों से आश्वस्त देवता कहने लगे, 'हे देव! विन्ध्याचल द्वारा सूर्यमार्ग अवरुद्ध होने से दिन-रात की व्यवस्था नष्ट हो गयी है। फलतः स्वाहा, स्वधा, यज्ञादि कर्म नष्ट हो गये हैं। हम क्या करें? कहाँ जायें?'

**अलब्ध भोगभागा हि किं कुर्मः कुत्रयाम हि**

(देवीभागवत १०.०६.०३)

विष्णुजी ने कहा, 'भगवती के उपासक विन्ध्याचल के गुरु अगस्त्यजी वाराणसी में हैं, उनको प्रसन्न करो। विन्ध्याचल उनकी बात मान लेगा।' तभी देवताओं ने काशी में मणिकर्णिकाघाट पर गंगास्नान करके तर्पणादि कर द्विजों को दान दिया। तब वे अहिंसा के धर्मावलम्बी, हिंसक जन्तुओं से भरे, गुरु अगस्त्यजी के आश्रम पर पहुँचे। उनके चरणों में दण्डवत् प्रमाण किया, 'हे वातापीनाशक! हे लोपामुद्रापति! हे विद्यानिधि! सागरमान मर्दक! हे शरणागतवत्सल! प्रसन्न होकर हमारे ऊपर कृपा करें।'

अगस्त्यजी ने कहा, 'देवताओं! कहो, क्या बात है?' देवताओं ने कहा, 'हे महर्षे! विन्ध्याचल ने सूर्य का मार्ग रोक लिया हैं, आप विन्ध्याचल को समझाइए, जिससे सृष्टि में व्यतिक्रम न हो।' अगस्त्यजी कहने लगे, 'मैं ये कार्य अवश्य पूर्ण करूँगा।' सूतजी कहते हैं, 'हे महर्षियों! अगस्त्यजी ने लोपामुद्रा से कहा, 'देवि! काशी मुक्तिदायिनी है, अतः यहाँ रहने में भारी विघ्न आते हैं।'

**अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः । किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति काश्यां निवसतां सताम् ।।**

(देवीभागवत १०.०७.०६)

उन्होंने सपत्नीक मणिकर्णिका में स्नान किया। विश्वनाथ, कालभैरव दर्शन किये। काशी के कोतवाल कालभैरव से प्रार्थना की, 'प्रभो! मुझ निरपराध को काशी से क्यों हटाते हैं? मैं चुगली नहीं करता, निन्दा नहीं करता।' फिर गणेश (साक्षीविनायक) के दर्शन कर दक्षिण की ओर चल दिये। देखा तो विन्ध्याचल खड़ा है, आकाश से भी ऊँचा। जैसे ही गुरु अगस्त्य को देखा, विन्ध्याचल काँप गया। सोचा, 'दाल में काला है।' किन्तु विनम्र होकर प्रणाम किया। दण्डवत् जमीन पर लेट गया। आशीर्वाद देकर महात्मा बोले, वत्स! जबतक मैं लौट कर न आऊँ, तबतक ऐसे ही लेटे रहना; क्योंकि वृद्ध होने से तुम्हारे शिखर पर चढ़ना मेरे लिए कठिन है। इस प्रकार अगस्त्यजी श्रीशैलोपरान्त मलयाचल पर आश्रय बनाकर रहने लगे। लौट कर नहीं आये। फलतः गुरु आज्ञावश आज भी विन्ध्याचल लेटा है। प्रतीक्षा करता है गुरु की। किन्तु गुरुजी न आये, न आएँगे। संसार का संकट टल गया। अभिमान और ईर्ष्या का परिणाम बुरा होता है। सूतजी कहते है, हे शौनकजी! ये विध्याचल में ही माता जगदम्बा का, विन्ध्यवासिनी का निवास स्थान है। जो झुक गया, तो

************************************************************************************

मानो माँ ने उसे अपना घर बना लिया।

## स्वारोचिष ने माँ की पूजा की, मनुओं की दुर्गा-उपासना, ब्रह्माकृत देवीस्तुति, महाकाली-चरित्र, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती चरित्र, भ्रामरी-चरित्र, मनुपुत्रों द्वारा भ्रामरी-पूजा

सूतजी से शौनकजी ने पूछा, 'हे महाराज! स्वायम्भू मन्वन्तर की कथा के बाद शेष मन्वन्तरों की कथा भी कहेंगे?' सूतजी बोले, 'हे शौनकजी! नारायण से यही प्रश्न नारदजी ने किया था। नारायण ने कहा, 'हे नारद! दूसरे मनु (प्रियव्रत पुत्र) स्वारोचिष हुए। इन्होने सूखे पत्ते खाकर यमुना किनारे बारह वर्ष तक तप किया। मृणमयी देवी प्रतिमा बनाकर पूजा करते रहे। फलतः प्रत्यक्ष हो, माता ने इन्हें राजा बना दिया। भगवती का नाम तारा (तारिणी) था। तदनन्तर उत्तम नामक तृतीय मनु हुए। इन्होंने गंगातट पर '**ऐं**' बीज का तीन वर्ष तक तप करके राज्य प्राप्त किया। चौथे मनु तामस हुए इन्होंने नर्मदा किनारे (दक्षिणतट) '**क्लीं**' बीज का जप किया। ये नवरात्रविधि से चैत्र तथा आश्विन में भगवती का आराधन करते थे। फलतः उनकी कृपा से राज्य प्राप्त किया। पंचम मनु दैवतक ने यमुना किनारे '**क्लीं**' बीज का जप किया। फलतः भगवती की कृपा से इन्हें साम्राज्य प्राप्त हुआ।

विष्णुभगवान् कहते हैं, 'हे नारद! षष्ठ मनु हैं (राजा अंग के पुत्र) चाक्षुष। इन्होंने महात्मा पुलह की शरण में जाकर लक्ष्मी-साम्राज्य प्राप्त्यर्थ उपासना विधि पूछी। उन्होंने कहा, 'राजन्! भगवती की कृपा से ही भक्ति और मुक्ति प्राप्त हो सकती है। अतः तुम आज से ही सनातन '**ऐं**' बीज का जप करो। इसी मन्त्र के जप से ब्रह्मा ने सृष्टि, विष्णु ने पालन, शिव ने संहार की सामर्थ्यता प्राप्त की है।' राजा ने पुलह की आज्ञा मानकर विरजा के तट पर उपासना की। प्रथम वर्ष केवल पत्राहार, दूसरे वर्ष जलाहार, तीसरे वर्ष वायु-आहार। इस प्रकार वे बारह वर्ष तक निरन्तर तप करते रहे। फलतः जगदम्बा ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये तथा साम्राज्य प्रदान किया।

श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! सप्तम मनु हैं वैवस्वत (श्राद्धदेव)। ये भी पराशक्ति के उपासक हैं। अष्टम मनु हैं सावर्णि। इन्होंने पूर्वजन्म में माता की मृत्तिका की मूर्ति बनाकर पूजा की थी। नारायण ने कहा, 'हे नारद! स्वारोचिष मन्वन्तर में चैत्रवंशीय एक सुरथ नामक राजा हुए। कोला नामक नगरी में इनका राज्य था। इन धार्मिक राजा को शत्रुओं ने पराजित करके राज्य छीन लिया। मन्त्रियों ने विश्वासघात किया था। अतः खिन्नमना एकाकी मृगया के व्याज से वन में सुमेधा ऋषि के आश्रम पर पहुँच गये। वहाँ के निर्मल वातावरण के प्रभाव से राजा को कुछ शान्ति मिली। वे एक दिन सुमेधा ऋषि के पास जाकर बोले, 'महाराज! मैं सब जानता हूँ कि संसार अनित्य है। मेरे मित्रों ने विश्वासघात किया है। शत्रुओं से मैं पराजित बाद में हूँ, पहले अपनों ने ही लूटा है। फिर भी मोह पीछा नहीं छोड़ता, ममता जलाती रहती है। हे देव! शान्ति का उपाय बताओं! कहा जाऊँ? क्या करूँ?'

दूरदर्शी सूक्ष्मदर्शी ऋषि ने कहा, 'हे राजन् ! तुम भगवती राजराजेश्वरी का आराधन करो। तभी शान्ति मिलेगी। वही महामाया ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि की उत्पादिका हैं। महाराज सुरथ ने पूछा, 'हे गुरो! ये कौन-सी दैवी हैं? कृपया इनका चरित्र विस्तार से बताइए। पुलह (सुमेधा) बोले, 'राजन्! ध्यान से सुनो! क्षीरसागरशायी योगनिद्रा वशीभूत श्रीहरि के कानों के मल से मधु और कैटभ नामक दैत्य उत्पन्न हो गये। उन्होंने कमलासन ब्रह्माजी को मारना चाहा, तो ब्रह्माजी ने महामाया महादेवी निद्रा भगवती का स्तवन किया – 'हे माँ! मेरी रक्षा अब आपकी कृपा पर निर्भर है। आप विष्णु को निद्रा से मुक्त कर इन पापात्माओं को मारने की प्रेरणा दें। आपके वश में सारा विश्व है, जो आपकी कृपा से चलता है। स्पन्दन भी आपकी कृपा का फल है। अद्वितीया होने से आप एक हैं। माया विशिष्ट होने से आप दो हैं।'

'गुणत्रयी-वेदत्रयी-त्रिवर्गधामा होने से आप त्रयी हैं। तुरीय पदात्मिका तुरीयावस्था होने से आप चतुर्थी हैं। पंचमहाभूतों की अधीश्वरी होने से पंचमी हैं, षष्ठेश्वरी होने से आप षष्ठी हैं। अग्नि को सात जीभ देने से, सप्तमातृरूपा, सप्त दिवसा से आप सप्तमी हैं। अष्टवसुरूपा आप अष्टमी हैं। नवग्रहेश्वरी नवनिधिरूपा आप नवमी हैं। दशदिक्रूपा दशदिक्पालपूजा से आप दशमी हैं। एकादश रुद्रपूज्या, एकादशीप्रिया से आप एकादशी हैं। द्वादशभुजा/द्वादशादित्यजननी होने से आप द्वादशी हैं। त्रयोदशत्मिका, विश्वेदेवाधिष्ठत्री,

*************************************************************************************

होने से आप त्रयोदशी हैं। चौदह इन्द्रों की वरदात्री चतुर्दश मनु माता होने से आप चतुर्दशी हैं। पंचदशी या कामराज विद्या द्वारा ज्ञेया पूर्णरूपा होने से आप पूर्णिमा-पंचदशी हैं। षोडश भुजारूपा, भाल पर चन्द्र की सोलहवीं कला हैं। अतः आप षोडषी हैं। हे माँ! कृपा करके मेरी रक्षा करें।' भगवती ने विष्णु को मुक्त कर दिया, किन्तु मधु और कैटभ की बुद्धि को मोहित कर दिया। फलतः वे बोले, 'हे विष्णु! तुमसे हम प्रसन्न हैं, वर माँग लो। भगवान् ने कहा, 'अच्छा तो तुम मेरे हाथों मारे जाओ।'

उन दोनों ने कहा, 'ठीक है पर, जहाँ पृथ्वी पर जल न हो, वहाँ मारो। भगवान् ने जाँघ पर रखकर उनको मार दिया। 'हे राजन्! ये वही महाकाली हैं।' सुमेधा ऋषि ने राजा सुरथ से कहा, 'हे राजन! महिषिपुत्र महिषासुर ने देवताओं को पराजित करके त्रैलोक्य कों अपने वश में कर लिया। देवता रोते-बिलखते पहले ब्रह्माजी के पास, फिर वे सब शिवजी के पास तदनन्तर सभी विष्णु के पास पहुँचे। वहाँ सभी ने अपने तेज को एकत्रित किया। शिवतेज से मुख बना, यमतेज से बाल, विष्णुतेज से भुजाएँ, ब्रह्मतेज से पैर, इत्यादि महिषमर्दिनि भगवती का आविर्भाव हुआ। उन्हें सभी देवताओं ने अपनी अपनी शक्ति, शस्त्र, अलंकरण आदि प्रदान किये। देवताओं ने महामाया से प्रार्थना की, 'हे माँ! पापात्मा महिष को मारो।' माता ने गर्जनापूर्वक प्रतिज्ञा की। फलतः भयंकर संग्राम होने लगा। माता ने ससैन्य महिषासुर को मार दिया। देवताओं ने पुष्पवृष्टि कर भुवनेश्वरी की स्तुति की।

'हे राजन्! एक बार शुम्भ-निशुम्भ ने सकल विश्व को आतंकित किया। जगदम्बा की शरण में देवता गये तथा भावभरी स्तुति करने लगे। तभी भगवती पार्वती के शरीर से 'कौशिकी' प्रकट हो गयी। देवताओं ने उनमें शुम्भ-निशुम्भ वध की प्रार्थना की। भगवती ने सुग्रीवदूत, चण्ड, मुण्ड, धूम्र, रक्तबीजादि सहित उन पापात्मा शुम्भ-निशुम्भ को सेना सहित मार डाला। देवताओं ने माता सरस्वती की स्तुति की, पुष्पवृष्टि हुई। संसार भर में शान्ति की स्थापना हुई।' नारायण ने नारदजी से कहा, 'हे नारद! सुरथ भी सुमेधा ऋषि की बात सुनकर माता की शरण में गये तथा मृण्मय मूर्ति बनाकर निराहार रहकर पूजा करने लगे। पूजा के बाद नित्य स्वरक्त बलि देते थे।

**देवीमूर्तिं मृण्मयीं च पूजयामास भक्तितः । पूजनान्ते बलिं तस्यै निजगात्रासृजं ददत् ।।**

(देवीभागवत १०.१२.८६)

इस प्रकार तीन वर्ष तक तपस्या करने पर भगवती प्रसन्न हो गयी। सुरथ ने वर माँगा, 'हे माँ! मेरा मोह नष्ट हो जाये और निष्कंटक राज्य मिले।' माता ने कहा, 'हे सुरथ (वत्स)! सद्ज्ञानपूर्वक इसी शरीर से राज्य करके जन्मान्तर में सूर्यवंशीय सावर्णि नामक अष्टम मनु बनोगे।'

श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! इस प्रकार तुमको आठवें मनु की जन्मान्तरीयोपासना का वृत्तान्त कहा। अब शेष छः मनुओं* की कथा सुनो। सप्तम मनु (वैवस्वत) के छः पुत्र थे – कुरुष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति और त्रिशंकु। इन छहों ने यमुनातट पर भगवती का बारह वर्ष तक कठोर तप किया। भगवती भुवनेश्वरी ने इन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। मनुपुत्रों ने उनकी स्तुति की, 'हे माँ! सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड आपकी कला से संचालित है। आप **'ऐं'**, **'ह्रीं'**, **'क्लीं'** मन्त्रों की उपास्या हैं।' देवी ने प्रसन्न होकर इन्हें मन्वन्तरों का स्वामी बना दिया। हे नारद! इन मनुपुत्रों ने भ्रामरी की पूजा की थी। हे नारद! ये सभी भगवती भ्रामरी के उपासक थे।' नारदजी ने पूछा, 'ये भ्रामरी देवी कौन है? इनकी उत्पत्ति और उपासना-पद्धति का उपदेश कीजिए।' नारायण बोले, 'पूर्वकाल में अरुण नामक दैत्य ने आभ्यन्तर प्राणायाम से हिमालय पर तप करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया। दस हजार वर्ष तक तामसिक वृत्ति से गायत्री जप किया।'

**गायत्रीजपसंसक्तः सकामस्तमसा युतः**

(देवीभागवत १०.१३.४०)

सूखे पत्ते-गंगाजल-वाताहार आदि द्वारा कठोर व्रत किया गया। इस प्रकार तीस हजार वर्ष तक तप करने से उसके शरीर से अग्नि ज्वाला निकली। तीनों लोकों में हाहाकार मचा, देवता ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी ने कहा, 'कोई बात नहीं, मेरा भक्त है और

--------------------

* ये सभी क्रमशः नौवें, दसवें, ग्यारहवें, बारवें, तेरहवें, चौदहवें सावर्णिमनु हैं – मरूसावर्णि, मेरूसावर्णि, सूर्यसावर्णि, इन्द्रसावर्णि, रूद्रसावर्णि, विष्णुसावर्णि।

*************************************************************************************

गायत्री सहित अरुण के समीप पहुँच गये। अरुण ने प्रणाम करके वर माँगा, 'प्रभों ! मैं अस्त्र, शस्त्र, स्त्री, पुरुष, द्विपद, चतुष्पद में, समर में न मरूँ और देवताओं को जीत सकूँ।' ब्रह्माजी ने कहा, 'तथास्तु'। अरुण अब दैत्येन्द्र हो गये। उन्होंने अमरावती पर अधिकार करके देवताओं को मार भगाया। देवता-ब्रह्मा-विष्णु-महेश सबने चिन्तन किया, किन्तु अरुण का उपाय नहीं मिला। तब आकाशवाणी ने कहा, 'हे देवों ! भुवनेश्वरी की उपासना करो, तो तुम्हारा कार्य बनेगा। ये दानवेन्द्र गायत्री जप करता है। इसे गायत्री जप से हटाओ तो काम बनेगा।'

**मृत्युयोगस्तदा भूयात् यदा गायत्री जपंत्यजेत्**

देवताओं ने बृहस्पति को अरुण के पास भेजा, जिससे वह गायत्री जप त्याग दे और स्वयं मायाबीज '**ह्रीं**' का जप करने लगे। उधर अरुण के पास बृहस्पति पहुँचे तो अरुण चौक गया, 'अरे ! तुम कैसे यहाँ? हम और तुम तो शत्रु हैं।' बृहस्पति ने कहा, 'नहीं-नहीं ! हम-तुम तो एक ही हैं। हमारा बादरायण सम्बन्ध* है। देखों ! तुम जिन भगवती के उपासक हो, उन्हीं के उपासक हम भी हैं। अतः एक ही हुए न।' अरुण तो अभिमान में भरकर बोला, 'अच्छा तो जाओ ! तुम्हारी समानता हमें नहीं चाहिए। आज से भगवती की उपासना ही त्यागता हूँ।' बृहस्पतिजी का तो काम बन गया, वे चले गये। उधर भगवती प्रसन्न हो गयीं। भ्रमरों से आवृत सारे भोरें मधुर तान्त्रिक के प्रणव '**ह्रीं**' का जप करते थे। देवताओं ने भावभरित मन से माँ की स्तुति की। अनेक बार देवताओं ने माँ को प्रणाम किया, 'हे अनन्तकोटिब्रह्माण्डेश्वरी ! जगन्मातः ! हे सुरेश्वरी ! इस पापात्मा अरुण को मारकर धर्मराज्य की स्थापना करें। ब्राह्मणों की, वेदों की दुर्दशा है।' सुनकर भगवती भ्रामरी ने इच्छावेषधारी भ्रमरों की उत्पत्ति करके इन्हें अरुण की ओर भेजा।

**नानारूपधरान् भ्रमरान् प्रेषयामास**

जो जहाँ था, उसको वहीं काटकर मार डाला। सारी राक्षस सेना सहित अरुण को भी भ्रमर-समूह ने काट-काटकर मार डाला; जैसे मधुमक्खियाँ मधुहा प्राणी को मार लेती हैं। न शस्त्रास्त्र, न बातचीत, न बचने का उपाय ही था।

**उपायो न च शस्त्राणां तथास्त्राणां तथाभवत् ।। न युद्धं न च संभाषा केवलं मरणं खलु ।**

(देवीभागवत १०.१३.११३-११४)

संसार ने तो क्षणमात्र में बिना रण के (कारण के) व्रण-ही-व्रण और दैत्यों का मरण देखा। आश्चर्य है ! इतना भारी बलवान् दानव पता ही न चला, क्या हो गया? कहाँ गयी उसकी शक्ति? कैसी माया विचित्र है माँ की?

**आश्चर्यमेतदाश्चर्यम् इति लोकाः समूचिरे । किं चित्रं जगदम्बाया यस्या मायेयमीदृशी ।।**

(देवीभागवत १०.१३.११७)

अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न माँ की जय-जयकार करके देवताओं ने उनका पूजन, स्तुति की तथा वर प्राप्त किये। 'हे नारद मैंने भ्रामरी चरित्र तुम्हें सुना दिया।'

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं दशमः स्कन्धः ।।*

---

* कोई देवदत्त गया शहर में। बिना परिचय के कहां ठहरे, अतः एक घर में घुस गया। वहां बेरी का पेड़ था, बोला हम तुम सम्बन्धी हैं - कैसे? बोला, तुम्हारे घर भी बेरी का पेड़ है, मेरे घर भी बेरी का पेड है; अतः बादरायण सम्बन्ध हैं।

****************************************************************************************

# ॥ श्रीदेवीभागवतपीयूष ॥

## ॥ एकादशः स्कन्धः ॥

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥*

### शास्त्राचारपूर्वक कुण्डलिनी-पूजा, नित्यक्रिया, संध्या-रुद्राक्ष महत्व, रुद्राक्ष-धारण विधान, गुणनिधि रुद्राक्ष के प्रभाव से कैलाश गया, भूशुद्धि, भूतशुद्धि, भस्मोद्धूलन (पाशुपात व्रत), विरजाग्नि-भस्म, भस्मधारण-विधि

श्रीनारदजी ने नारायण से कहा, 'प्रभो ! भगवती के पावन चरित्र सुनने के उपरान्त अब सदाचार नियमों को सुनना चाहता हूँ, जिनसे भगवती प्रसन्न रहती हैं।' श्रीनारदजी से नारायण ने कहा, 'हे नारद ! आत्मोद्धार में माता-पिता, बन्धु-बान्धव नहीं, अपितु धर्म ही सहयोगी होता है।'

**आत्मैव न सहायार्थं पिता माता च तिष्ठति । न पुत्र दारा न ज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलम् ।।**

(देवीभागवत ११.०१.०७)

'आचार पर धर्म टिका है, आचार ही प्राणी के कल्याण का परमधर्म है। इसके बल से जीव यहाँ सुख भोगकर परलोक में भी सुख भोगता है – ये श्रुति स्मृति प्रतिपादित है।'

**आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।**
**आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याण कारकः ।**
**इहलोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम् ।।**

(देवीभागवत ११.०१.११)

आचार ही परम तपस्या है, शास्त्रीयाचार और लौकिकाचार – इन दोनों का पालन करते हुए गुणधर्म, जातिधर्म, देशधर्म, कुलधर्म का भी पालन करें। धर्महीन जीवन निन्दित, पापरूप तथा विनाशकारक होता है। उचितानुचित धर्माधर्म में प्रमाण हैं श्रुति, स्मृति और पुराण इन्हीं के वचनों में सामञ्जस्य करके विद्वानों से निर्णय प्राप्त करें।

***********************************************************************************

**श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम् । एतत्त्रयोक्त एव स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित् ।।**

(देवीभागवत ११.०१.२१)

स्मृति, पुराण प्रतिपादित और लोकशास्त्रानुमोदित धर्म भी तब ही मान्य होगा, प्रमाणित होगा; जब वह वेदमूलक हो। क्योंकि धर्म को जानने के लिए परम प्रमाण श्रुति ही हैं।

**धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः**

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में परमात्मा का ध्यान करे। प्राणायाम करें, '**ॐ**' या '**ह्रीं**' का जप करें। किन्तु अधिकारी हो, तभी '**ॐ**' का जप करें। अनधिकारी को प्रणव का जप करना ठीक नहीं। धीरे-धीरे मूलाधार (गदामूल) में चतुर्दल पद्म, स्वाधिष्ठान (लिंग) में षडदल पद्म, मणिपुर (नाभि) में दशदल पद्म, अनाहत (हृदय) में द्वादश दल पद्म, विशुद्ध (कण्ठ) में षोडशदल पद्म, आज्ञा (भ्रूमध्य) में द्विदल पद्म – इन षट्चक्रों का भेदन कर मूलाधारस्थ कुण्डलिनी का माँ भगवती का ध्यान करें।

**आधारे लिंगनाभिप्रकटितहृदये तालु मूले ललाटे द्वे पत्रे षोडषारे द्विदश-दश-दलद्वादशार्धे चतुष्के ।**
**वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां हं क्षं तत्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ।।**
**अरुणकमलसंस्थातद्रजाः पुञ्जवर्णा हरनियनित चिह्ना पद्मतन्तुस्वरूपा ।**
**रविदुतवहराका नायकास्यतनादया सकृदिपि यदि चित्ते संवसेत्स्यात्समुक्तः ।।**

(देवीभागवत ११.०१.४३-४४)

हम वर्षरूप कुण्डलिनी भगवती राजराजेश्वरी को प्रणाम करते हैं। जिसके हृदयदेश में वे भगवती आकर बैठ जाये, वह निश्चित मुक्त है। इस प्रकार प्रातः गुरु तथा इष्टका ध्यान करें। श्रीनारायण कहते हैं, 'आचारहीन प्राणी को वेद भी पवित्र नही कर सकते।'

**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः**

'मृत्युकाल में वेद आचारहीन को ऐसे ही त्याग देते हैं जैसे पंख निकलने पर पक्षी घोसला त्याग देता है। अतः सदाचारपूर्वक जीवन जीना चाहिए। नित्यक्रिया शास्त्रीय हो। दिन में उत्तर की ओर, रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके मलमूत्र त्यागें। हाथ साफ करने में अपवित्र मिट्टी का प्रयोग न करें। आन्तरिक शुद्धि के लिए बाह्य शौचाचार अत्यन्त आवश्यक है। मूत्र त्यागोपरान्त चार कुल्ला, मलोपरान्त बारह कुल्ला, भोजनोपरान्त सौलह कुल्ला करना आवश्यक है।' श्रीनारायण नारदजी से कहते हैं, 'हे ऋषे ! जलाचमन के अभाव में छींकने, थूकने, असत्य बोलने पर, पतितों से बात करने पर, दाहिने कान को स्पर्श करे। क्योंकि अग्नि, जल, वेद, चन्द्रादि का वास दक्षिण कर्ण में होता है। हे नारद ! जो प्राणी निरन्तर सात दिन तक स्नान नहीं करता, तीन दिन तक संध्या नहीं करता, बारह दिन तक हवन नहीं करता। वह शूद्रतुल्य हो जाता है।'

**सप्ताहं प्रातरस्नायी सन्ध्या हीन स्त्रिभिर्दिनैः । द्वादशाहमनग्निः सन् द्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात् ।।**

(देवीभागवत ११.०३.१०)

गायत्री जप जैसा कर्म ब्राह्मण के लिए दूसरा नहीं हैं। जप करने वाले की रक्षा करने के कारण ही ये गायत्री कही जाती है।

**गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च। गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीत्यभिधीयते ।।**

(देवीभागवत ११.०३.११)

स्नानांग तर्पण करके रुद्राक्ष धारण करें। एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करने वाला शिवरूप हो जाता है। रुद्राक्ष धारण करने का अधिकार सभी वर्णो को है। ब्राह्मण मन्त्रपूर्वक तथा शूद्रादि बिना मन्त्र के धारण करें।

**सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां धारणम् । कर्तव्यं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्य वर्णिनाम् ।।**

(देवीभागवत ११.०३.२३)

रुद्राक्ष धारण करके प्राणी रुद्र ही हो जाता है। उसने भोजन किया तो मानो शिव ने भोजन किया। रुद्राक्षधारी को दान देने पर

सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। रुद्राक्ष की महिमा कह पाना कठिन है।

**अहो रूद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते**

'हे नारद! अब तुम रुद्राक्ष की उत्पत्ति तथा भेद भी सुनो। शंकरजी ने स्कन्द से कहा था, 'हे स्कन्द! त्रिपुरासुर दुर्जेय था, उसे मारने के लिए मैंने अघोरास्त्र का आविष्कार किया। तब सहस्त्र वर्ष पर्यन्त मैंने आँखें खोले रखी। फलतः आँखो से आँसू गिरे। उनसे महावृक्ष उत्पन्न हुए वही रुद्राक्ष हैं।

**दिव्यवर्षसहस्त्रन्तु चक्षूरून्मीलितं मया । पश्चान्ममा कुलाक्षिभ्यः पतिता जलविन्दवः ।**
**तत्राश्रुविन्दुतो जाता महारुद्राक्ष वृक्षकाः ।।**

(देवीभागवत ११.०४.०८)

अड़तीस प्रकार के रुद्राक्ष हैं – १. सूर्य नेत्र (दक्षिण) से बारह प्रकार के पीले और लाल; २. चन्द्र नेत्र से सोलह प्रकार के श्वेत; ३. अग्नि नेत्र से दस प्रकार के काले। श्वेत रुद्राक्ष ब्राह्मणों के लिए होता है। लाल रुद्राक्ष क्षत्रियों के लिए होता है। पीला रुद्राक्ष वैश्यों के लिए होता है। काला रुद्राक्ष शूद्रों के लिए होता है।

एकमुखी रुद्राक्ष (शिवस्वरूप) ब्रह्महत्यादि पापनाशक होता है। दो मुखी रुद्राक्ष (शिव-शिवारूप) पापनाशक होता है। तीन मुखी रुद्राक्ष (अग्निरूप) नारीवध-पाप को नष्ट करने वाला है। चार मुखी रुद्राक्ष (ब्रह्मारूप) नर-वध-जनित पापनाशक होता है। पाँचमुखी रुद्राक्ष (कालाग्निरुद्ररूप) भक्ष्याभक्ष्यादि पापनाशक होता है। छःमुखी रुद्राक्ष (कार्तिकेयरूप) दाहिने हाथ में धारण करने से शत्रुनाश करने वाला होता है। सातमुखी रुद्राक्ष (कामदेवरूप) स्वर्ण चोरी पाप से मुक्ति देता है। आठमुखी रुद्राक्ष (गणपतिरूप) से अन्न-वस्त्र-स्वर्ण की ढेरी लगती है। नौमुखी रुद्राक्ष (भैरवस्वरूप) भुक्ति-मुक्तिदाता है, भ्रूणहत्यादि पाप नष्ट करता है। दसमुखी रुद्राक्ष (विष्णुरूप) भूत-प्रेत बाधा शान्ति के लिए है। ग्यारहमुखी रुद्राक्ष (एकादशरुद्र) सैकडों अश्वमेध यज्ञों का फल शिखा में धारण करने से मिलता है। बारहमुखी रुद्राक्ष (द्वादशादित्य) कान में धारण करने से द्वादशादित्य प्रसन्न होते है। आधिव्याधिशामक हिंसक-जन्तु भी पालतु बन जाते है। तेरहमुखी रुद्राक्ष (कार्तिकेयरूप) अष्टसिद्धि, रस-रसायन, सिद्धि सर्वबाधा दोष की शान्ति के लिए होता है। चौदहमुखी रुद्राक्ष (शिवरूप) सिर में धारण करें। संक्षेप में कह सकते हैं – जैसे भी हो सके, रुद्राक्ष अवश्य धारण करें।

शिवजी कहते हैं, 'हे स्कन्द! रुद्राक्ष का मुख ब्रह्माबिन्दु, ऊपरी भाग शिव तथा नीचे का भाग विष्णु है। गोपुच्छ के समान माला को गूँधकर उसे गंगाजल से स्नान कराएँ। '**सद्योजातादि०**' मन्त्र से एक सौ आठ बार प्रोक्षण करें। रुद्राक्ष के बिना किया गया कर्म व्यर्थ जाता है, कर्ता नरक को जाता है।'

**अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम् । कुर्वन् विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवम् ।।**

(देवीभागवत ११.०५.१४)

'दूसरे का पहना रुद्राक्ष न पहने (**नान्यैर्धृतम्**), अपवित्रावस्था में न धारण करे (**नाशुचिर्धारयेत्**), रुद्राक्ष का दर्शन पुण्यप्रद है (**फलस्य दर्शने पुण्यम्**), स्पर्श में करोड़ गुना फल है (**स्पर्शात्कोटि गुणभवेत्**), धारण करने पर सैकडों करोड़ गुना फल होता है (**धारणात् शत कोटिगुणपुण्यं लभेत्**), रुद्राक्ष माला से जप करने पर अक्षय फल मिलता है।'

'हे स्कन्द! रुद्राक्ष की माला सभी मालाओं में श्रेष्ठ है। विप्र होकर भी जो शिवपूजा न करे, रुद्राक्ष न धारण करे, भस्म न लगाये, वे तो चाण्डाल जैसे-ही हैं। रुद्राक्ष धारण की महिमा अपार है। रुद्राक्ष धारण करने वाला चाहे जो भी हो, शिवलोक प्राप्त कर लेता है। हे स्कन्द! प्राचीन काल में विन्ध्याचल पर एक गधा था। वह व्यापारी का बोझा ढोता था। बोझा था – 'रुद्राक्ष'। एक दिन भारवश गधा मर गया। फलतः शिवलोक प्राप्त किया। हे स्कन्द! अयोध्या में गिरिनाथ नामक ब्राह्मण था। इसका पुत्र का गुणनिधि अत्यन्त सुन्दर था। इसकी सुंदरता पर उसके गुरु सुधीषम की पत्नी मुक्तावली मोहित थी। अतः इसने उससे भोग करके और गुरु को जहर देकर मार दिया। अब तो वह परमस्वतन्त्र हो गया। चोरी करने लगा, मदिरा पीता, राहजनी करता, मुक्तावली के साथ रहता था।

*******************************************************************************************

जब वह मरा तो यमदूत तथा शिवदूत – दोनों आये; किन्तु शिवदूत ही उसे ले गये क्योंकि जहाँ यह मरा था, वहीं जमीन में रुद्राक्ष था। हे स्कन्द! भद्राक्ष न ले। रुद्राक्ष ही ले ले। रेशमी धागें में पिरो लें। रुद्राक्ष की मुख्य विशेषता का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। नारायण ने कहा, 'हे नारद! स्नान करके आसन पर बैठे, भस्म और रुद्राक्ष धारण करे, भूशुद्धि व भूतशुद्धि कर लें।'

**भूतशुद्धि प्रकारञ्च कथयामि महामुने । मूलाधारात्समुत्थाया कुण्डली पर देवताम् ।।**
**सुषुम्णा मार्गमाश्रित्य ब्रह्मरन्ध्रगतां स्मरेत् । जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमात्रेण साधकः ।।**

(देवीभागवत ११.०८.०१-०२)

'मूलाधार से प्राणायाम व ध्यानविधि द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत् कर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक, षट्चक्र भेदन करके ले जायें, हंस मन्त्र का जप करे – '**सोऽहं हंसः**'। पैर से घुटने तक पृथ्वी स्थान चौकोर सवज्रक पीतवर्ण '**लं**' बीज; घुटनों से नाभि तक जल मण्डल अर्धचन्द्रकार ममलद्वय श्वेत वर्ण '**वै**' बीज; नाभि से हृदय तक अग्नि मण्डलत्रिकोण स्वास्तिक चिह्न लाल वर्ण '**रं**' बीज; हृदय से भ्रूमध्य वायु मण्डलवृत्त छः बिन्दु धूम्र वर्ण '**यं**' बीज; भ्रू से ब्रह्मरन्ध्र तक आकाश मण्डलवृत्त श्वेत वर्ण '**हं**' बीज लिखा है।'

'इस प्रकार देह को चक्रमय जानकर प्रत्येक महाभूत को अपने कारण में लीन करें। जैसे पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहंकार में, अहंकार को महत्तत्व में, महत्तत्व को प्रकृति में, प्रकृति को परमात्मा में लीन करें। ज्ञानसम्पन्न होकर पाप पुरुष का चिन्तन करे। अंगुष्ठमात्र बायीं कोख में कृष्णवर्ण का है – उसे '**यं**' वायु बीज से सुखाये, '**रं**' वह्नि बीज से जलायें, पुनः '**यं**' बीज से उड़ाकर उस भस्म को बाहर निकाल दें। तदनन्तर स्वभस्म को '**वं**' अमृत बीज से आप्लावित करे, '**लं**' बीज से पिण्ड बनाएँ। '**हं**' बीज से विकसित करे। तदनन्तर उसमें जीवाधान करें। संहार क्रम को पलट दें। सृष्टिक्रम का प्रयोग करे। तदनन्तर पुनः कुण्डली देवी का ध्यान करें।'

**रक्ताम्भोधिस्थ पोतोल्लसदरुण सरोजाधिरूढाकराब्जैः**
**शूलं कोदण्डमिक्षुद् भवमणिगुणमप्यं कुशं पंचवाणान् ।**
**विभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षो रुहादया**
**देवी वालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ।।**

श्रीनारायण कहते हैं, 'नारद! सदा भस्मत्रिपुण्ड धारण करना चाहिए। ये ' शिवोव्रत' है, सभी देवता इसका पालन करते हैं, ये व्रत पापारण्य के लिए दावाग्नि समान है।'

**शिरोव्रतमिदं कार्यं पापकान्तार दाहकम्**

(देवीभागवत ११.०९.१०)

'भस्मधारण करते समय '**अग्निरिति भस्म०**' छः मन्त्र पढ़े, सर्वाङ्ग में लेपन करें। यही शिरोव्रत हैं। प्रातःकालीन संध्या में तबतक इस व्रत को करे, जब तक आत्मज्ञान न हो जाये। किन्तु इस व्रत को नियम संकल्पपूर्वक बारह वर्ष, मास, पक्ष, सप्ताह या बारह दिन तक अवश्य पूर्ण करे। शिरोव्रत के स्नातक ही ब्रह्मज्ञान के अधिकारी हैं। यही शिवव्रत-पाशुपत व्रत है। इस व्रत से नर पशु का पशुत्व नष्ट हो जाता है। त्रिपुण्ड्र का भस्म पवित्र होता है, पापनाशक होता है, जाबालोपनिषत् में इसकी महिमा है। ललाट, कण्ठ, हृदय, भुजाएँ; इन स्थानों पर, भस्म धारण करें। द्विजजाति सेवारत शूद्र भी '**शिवाय नमः**' कहकर भस्म लगा सकता है।

**नमोन्तेन शिवेनैव शूद्रः शुश्रूषते रतः।। अन्येषामपि सर्वेषां बिना मन्त्रेण सुव्रत ।**

(देवीभागवत ११.०९.३३-३४)

शेष प्राणीमात्र बिना मन्त्र के भस्म लगा सकता है। ये पावनतम व्रत प्राणी के चित्त में परमात्मा के चरित्र की अनुरक्ति उत्पन्न कराता है। नारद! पाशुपतव्रत में अग्निहोत्रभस्म, विरजाग्निभस्म, स्मार्ताग्निभस्म, दावाग्निभस्म, समिधाग्निभस्म पाकशालाग्निभस्म

***************************************************************************************

हैं। इनमें से द्विजों के लिए अग्निहोत्राग्निभस्म तथा विरजाग्निभस्म ही श्रेष्ठ हैं। अन्य सभी के लिए शेष भस्म ग्राह्य हैं। विरजाग्निभस्म क्या है? जब साधक संकल्प मन में कर ले कि मुझे पाशुपत व्रत करना ही है, तब चित्रा नक्षत्र (चैत्री पूर्णिमा) को यथासुलभ पवित्र स्थान पर बैठकर महादेव-महादेवी का मनन करता हुआ आत्मनिवेदन करे। कब तक? बारह वर्ष, बारह मास, बारह पक्ष, बारह सप्ताह या बारह दिन तक या दिन मात्र भी ये व्रत करूँगा' - संकल्प करें। तब गुरुपूजन कर विरजा मन्त्रों से होम करें। जिससे शरीर के पचास तत्वों का शोधन होंगे। जैसे - **'पृथ्वी तत्वं मे शुद्धयतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भयासं स्वाहा'** एक-एक तत्व को शोधित करें। ५ महाभूत, ५ तन्मात्रा, १० इन्द्रियाँ, ५ प्राण, ७ धातुऐं (रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, वीर्य) ४ अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार), ३ गुण (सत्, रज, तम), २ (प्रकृति पुरुष), १० राग (राग, विद्या, कला, भाग्य, काल, माया, शुद्ध, विद्या, महेश्वर, शक्ति, शिवतत्व) कुल ५१ ।

इस प्रकार होम करने से साधक शुद्ध हो जाता है विरज रज रहित हो जाता है। उसी अग्नि में गोबर के पिण्डों की भस्म बना ले। उसे सुरक्षित रखें, नित्य मन्त्रपूर्वक शरीर पर उसका लेपन करे। भस्मोद्धलन करके शिव बम-बम-महादेव के जयघोष कर स्वयं शिवत्वम् की भावना करके लोक मंगलार्थ कृत्य करे।

**सर्वाङ्गोद्धलनं कुर्यात प्रणवेन शिवेन वा। ततश्च पुण्डं रचयेत् त्रियागुण समाद्वयम् ।।**
**भुक्ति मुक्ति प्रदश्चैव पशुत्वं विनिवर्तयेत् । तत्पभुत्वं परित्यज्य कृत्वां पाशुपतं व्रतम् ।।**
**भस्मस्नानं महापुण्यं सर्व सौख्यकरं परम्। रक्षार्थ मंगलार्थ च सर्व सम्पत्समृद्वये ।।**

श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! सद्योजात गोमय को सद्यः **'सद्योजात०'** मन्त्रों द्वारा भस्म कर लें; ये भस्म शान्तिक होगी। गोबर भूमि पर न आ पावे, अविलम्ब षडक्षर मन्त्र से भस्म बना ले; वह पौष्टिक भस्म हो होगी। गोमय को **'हौं'** मन्त्र से भस्म बनाये; वह कामद होती है। सूर्य किरणों से सुखाकर धान की भूसी में जलाकर भस्म कर लें। उसमें इत्र, केवडा, खश, आदि मिलाकर सद्योजातादि मन्त्रों से भस्म लेपन करें। दोपहर पहले भस्म जल मिश्रित हो। दोपहर बाद सूखी भस्म लगावे।

**मध्याह्णात् प्राक् जलैर्युक्तं परतोजल वर्जितम्**

इस प्रकार पाँच अंगुलियों से मूर्धा पर **'हौं'** मन्त्र से; तर्जनी-मध्यमा-अनामिका से भाल पर **'स्वाहा'** मन्त्र से; तर्जनी-मध्यमा-अनामिका से दक्षिण कर्ण पर **'सद्योजातं०'** से; तर्जनी-मध्यमा-अनामिका से वाम कर्ण पर **'वामदेवाय०'** से; तर्जनी-मध्यमा-अनामिका से कण्ठ पर मध्य भाग में अघोर मन्त्र से; तर्जनी-मध्यमा-अनामिका से हृदय देश पर **'नमः'** मन्त्र से; तर्जनी-मध्यमा-अनामिका से दाहिनी भुजा **'वषट्'** से; तर्जनी-मध्यमा-अनामिका से वायीं भुजा **'कवचाय हुं'**; तर्जनी-मध्यमा-अनामिका से नाभिक (मध्यमा) ईशान मन्त्र से भस्म लगावें।

## भस्मशून्य भाल अमांगलिक है, त्रिपुण्ड-भस्म धारण की महिमा, भस्मभेद (वर्णभेद), संध्याविधि, गायत्री मन्त्र स्वरूप, वृहद्रथ राजर्षि कथा, पंचविध यज्ञ, प्रायश्चित्त चित्तशोधक व्रतादि, विविध समिधाओं का होम

'हे नारद! कपिला गौ के शुद्ध ताजा गोबर को शिवाग्नि में भस्म करके उसे पवित्र पात्र में रखें। अपवित्र व्यक्ति को न भस्म दे, न उससे ले। पूज्यभाव से उसका प्रयोग करे। वैदिकों की भस्म का प्रयोग कोई भी कर सकता है किन्तु कापालिकों, तान्त्रिकों की भस्म को वैदिक प्रयोग न करे। भस्म के तिरस्कार से प्राणी पतित हो जाता है। भस्मरहित भाल को धिक्कार है, शिवमन्दिर रहित ग्राम को धिक्कार है। शिव की अर्चना न करने वाला धिक्कार का पात्र है। भस्म त्रिपुण्ड्र की निन्दा करने वाले की विद्या को धिक्कार है।

**धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम् । धिगनीशार्चनं जन्म धिगविद्यामशिवाश्रयाम् ।।**

************************************************************************************

**त्रिपुण्डं ये विनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते ।।**

'बिना त्रिपुण्ड के सभी श्रौत-स्मार्त कर्म व्यर्थ ही हैं। भस्म-त्रिपुण्ड बिना तो शिवार्चन का अधिकार ही नहीं हैं।' श्रीनारायण कहते है, 'नारद! त्रिपुण्डधारण करना मानवमात्र का परमधर्म है - ये जाबालोपनिषद में लिखा है। भस्मत्रिपुण्ड लगने से संन्यासी, ब्रह्मज्ञानी, वानप्रस्थी, विरक्त, गृहस्थी, धर्मशील, ब्रह्मचारी, वेदवेत्ता हो जाता है; शूद्र के पुण्य बढते हैं; अन्त्यज के पातक शान्त होते हैं। शिव, विष्णु, ब्रह्मा, उमा, लक्ष्मी, यक्ष, राक्षस, दैत्य, सर्प, गन्धर्व - सभी ने भस्म त्रिपुण्ड लगाया है।'

**शिवेन विष्णुना चैव ब्रह्मणा वज्रिणं तथा । उमा देव्या च लक्ष्म्या च वाचा चान्याभिरास्तिकैः ।।**

(१३.१२.०९)

'परिहास में भी कोई त्रिपुण्ड भस्म धारण कर ले, तो अक्षयपुण्य का भागी होता हैं। हे नारद! शिवमन्त्र से बड़ा मन्त्र नहीं, शिव समान देवता नहीं, शिवार्चन से बड़ा पुण्य नहीं, भस्म से बड़ा तीर्थ नहीं हैं।'

**शिवमन्त्रात्परो मन्त्रो नास्ति तुल्यं शिवात्परम् । शिवार्चनात्परं पुण्यं न हि तीर्थञ्च भस्मना ।।**

(देवीभागवत ११.१३.३२)

शिवाङ्ग से स्पर्शपतित भस्म ललाटपर्दोल्लिखित दौर्भाग्य को मिटा देता है।

**एतानि पञ्चशिव मन्त्र पवित्रितानि । भस्मानि काम दहनापिङ्ग विभूषितानि ।।**

**त्रैपुण्ड्रकाणि रचितानि ललाट पट्टे। लुम्पेन्ति दैव लिखितानि दुरक्षराणि ।।**

'हे नारद! श्रुति, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र सभी भस्म की महत्ता सिद्ध करते हैं। अतः द्विजों का परमधर्म है - 'भस्म धारण करें ही इससे पातक नष्ट होते हैं।'

**श्रुतयः स्मृतयः सर्वाः पुराणान्यखिलान्यपि । वदन्ति भूति माहात्म्यं तत्तस्मात् धारयद् द्विजः ।।**

(देवीभागवत ११.१४.०२)

चाहे जैसे पात, कोप, पातक हो, वे सब भस्मस्नान से नष्ट हो जाते हैं।

**भस्मस्नाने तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम्**

(देवीभागवत ११.१४.०७)

'हे नारद! इस भस्म स्नान से वायुकारक पीडा, ज्वरादि रोग-भूत-प्रेत जन्य समस्त अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं। शीतल जल में मिलाकर भस्म लगाना रुद्राग्निवीर्यभस्म लगाना है। जिस अंग पर लगायेगें, तज्जनित प्रत्यवाय नष्ट हो जायेगें। ललाट, कण्ठ, हृदय, नाभि, शिश्न, गुदा, भुजाएँ तथा बगल, पार्श्वभाग में, बगलों में भस्म लगाने से परस्त्रीगमन का पाप तक नष्ट हो जाता है।'

**पार्श्वयोधरिणात् ब्रह्मन् पर स्त्रीलिंगनादिकम्**

(देवीभागवत ११.१४.२६)

पापभस्म करने से ये भस्म कहाती है। अष्टसिद्धि देने से ये विभूति कहाती है। सोमवती अमावस्या के दिन भस्मस्नान करके शिवपूजन दर्शन करे, तो सकल पातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जलस्नान तो केवल बाह्यशुद्धि करता है, किन्तु भस्मस्नान से आन्तरिक शुद्धि हो जाती है।

श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! वैदिक भस्म द्विजमात्र को लगानी चाहिए। जिसका (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का ) उपवीत संस्कार है, वही द्विज है।

**यस्योपनयनं ब्रह्मन् स वै द्विज उच्यते। ब्रह्म क्षत्रिय वैश्याश्च ऐते सर्वे द्विजाः स्मृताः।।**

(देवीभागवत ११.१५.०२)

'हे नारद! गायत्री मन्त्रोपदेश-जप बिना भस्म सम्भव नही है। यथा बिना जनेऊ के संध्या नहीं होती, वैसे ही बिना भस्म के भी

***********************************************************************************

संध्या नहीं हो सकती। जैसी भी हो वैसी ही भस्म अवश्य लगावे, अन्यथा प्रत्य्थवाय लगता है।'

'एक बार दुर्वासाजी सम्पूर्ण शरीर में पवित्र भस्म लगाये पितृलोक गये। भगवान शिव-शिवा की कीर्तन उनके मुख पर था। उन्हें देखते ही सभी देवता खड़े हो गये। स्वागत-सत्कार, प्रणामादि किया। तभी संयमनीपुरी से दोषी जीवों के क्रन्दन की ध्वनि सुनकर वे करुणापरायण हो गये। कुम्भीपाक नरक के दीन जीवों को देखने के लिए जैसे ही गये, उन्हें देखकर उनके अंग पर लगी भस्म के स्पर्श से गयी वायु का स्पर्श पाकर उन्हें अपार सुख मिला। सूचना मिलते ही यम, इन्द्र, ब्रह्मादि सभी आ गये। सबको आश्चर्य है! पापकुण्ड में सुख - ये बात क्या है? सभी कैलाश गये। शिवजी ने कुण्ड को देखने के लिए जैसे-ही मुख नीचे किया। वैसे ही उनके मुखमण्डल के भस्मकण कुण्ड में गिर गये। फलत: वहाँ पाप व पापी दोनों ही नहीं हैं। ये तो भस्म के कारण है। अब कुम्भीपाक नरक पितृतीर्थ हो गया। वहाँ महादेव की प्रतिष्ठा कर दी गयी। वहाँ के पापी प्राणी पवित्र होकर विमानों द्वारा कैलाश में रहने लगे। हे नारद! अब ऊर्ध्वपुण्ड्र के विषय में सुनो। पर्वतशिख या तुलसी मूल की मिट्टी लेकर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये। काली मिट्टी शान्ति, पीली मिट्टी धन, श्वेत मिट्टी धर्मरुचि करती है। अंगुष्ठ से शरीर पुष्ट, मध्यमा से आयुवृद्धि, अनामिका से स्वादुभोजन, तर्जनी से मुक्ति होती है।'

'ऊर्ध्वपुण्ड्र बारह स्थानों पर भगवान के बारह नामों से इस प्रकार करें। ललाट पर केशव, उदर पर नारायण, हृदय पर माधव, कण्ठ पर गोविन्द, दाहिनी कोख पर विष्णु, बाहु पर मधुसूदन, दाहिने कान पर त्रिविक्रम, वाम कुक्ष पर वामन, बायी भुजा पर श्रीधर, वाम कर्ण पर हृषीकेश, पीठ पर पद्मनाभ, कन्धे पर दामोदर। इस प्रकार ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने से पुण्य वृद्धि होती है व वैकुण्ठ प्राप्त होता है। वैदिक मार्गावलम्बी ब्राह्मणादि को वैदिक भस्म द्वारा त्रिपुण्ड्र ही श्रेष्ठ है।' नारायण कहते हैं, 'हे नारद! प्रात:कालीन संध्या सतारका सूर्योदयात् पूर्व, मध्याह्नकाल की संध्या मध्याह्न में दोपहर बारह बजे, सायंकालीन संध्या सूर्यास्त पूर्व। सन्ध्या भी त्रिविध हैं - १. उत्तमा सन्ध्या, २. मध्यमा सन्ध्या, ३. अधमा सन्ध्या। प्रात: काल की सन्ध्या,

**उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्त तारकः । अधमा सूर्यसहिता प्रातः सन्ध्या त्रिधामता ।।**

सनक्षत्र संध्या उत्तमा सन्ध्या; लुप्त नक्षत्र मध्यमा सन्ध्या; सूर्योदयानन्तर अधमा सन्ध्या कहलाती है। सायंकाल की सन्ध्या,

**उत्तमा सूर्य सहिता मध्यमास्त मिते रवौ । अधमा तारकोपेता सायं सन्ध्या त्रिधामता ।।**

(देवीभागवत ११.१६.०५)

सूर्यसहिता उत्तमा सन्ध्या, लुप्तभास्करा मध्यमा सन्ध्या, तारक सहिता अधमा सन्ध्या कहलाती है। ब्राह्मणरूपी वृक्ष की जड़ है सन्ध्या, शाखाएँ हैं वेद, धर्म-कर्म ही पत्र हैं। मूल यत्नपूर्वक की रक्षा करे। क्योंकि बिना जड़ के कुछ भी नहीं बचेगा।

**विप्रोवृक्षः मूलकान्यत्र संन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ।**
**तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा ।।**
**संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनानुपासिता । जीव मानो भवेत् शूद्रो मृतश्वा चैव जायते ।।**

(देवीभागवत ११.१६.०६-०७)

संध्याहीन विप्र जीवित शूद्र है, मरने पर श्वान (कुत्ता) बनता है। उनके लिए किसी भी वैदिक कर्म में अधिकार ही नहीं है। संध्याकाल बीतने पर संध्या में चार बार सूर्यार्ध्य दें या संध्या से पूर्व ही १०८ बार गायत्री जप ले।

**कालातिक्रमणे जाते चतुर्थार्ध्य प्रदापयेत् । अथवाष्टशत दैवीं जपवादौ ता समाचरेत् ।।**

घर की अपेक्षा गौशाला श्रेष्ठ, उसकी अपेक्षा देवी मन्दिर, उसकी अपेक्षा नदीतट है। उसकी अपेक्षा शिवालय फलप्रद होता है। ब्रह्मादि देवता भी सन्ध्याकाल में उन्हीं की उपासना करते हैं।

**ब्रह्मादयोपि संध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च**

(देवीभागवत ११.१६.०६)

पूर्व में सभी शाक्त थे, भगवती वेदमाता की उपासना करते थे।

*************************************************************************************

**तस्मात् सर्वे द्विजाः शाक्ताः व शैवा न च वैष्णवाः । आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्री वेदमातरम् ।।**

(देवीभागवत ११.१६.१७)

हे नारद! संध्यारम्भ करने से पूर्व ही विष्णु के चौबीस नाम लेना चाहिए। तदनन्तर आचमन करें व प्राणायाम करे। बायें नासाछिद्र से पूरक, फिर धारण करे कुम्भक दाये छिद्र से निकाले। ये रेचक होता है। प्राणायाम में तर्जनी मध्यमा का प्रयोग निषिद्ध है। कनिष्ठका अनामिका से प्राणायाम करें। प्राणायाम काल में पूरक करते हुए नाभिदेश में विष्णु का ध्यान करें। कुम्भककाल में विष्णु नाभिकमल से निकले ब्रह्माजी का ध्यान करें। रेचक करते हुए शिवजी का ध्यान भाल में करे। पूरक से विष्णु पद, कुम्भक से ब्रह्मलोक, रेचक से महेश्वर पद प्राप्त करते हैं। प्रातःकाल, मध्याह्न व सायंकालीन आचमन करके मार्जन मन्त्रों द्वारा वर्षकृत पापों का मार्जन करें। तदनन्तर बायीं कोख में स्थित पाप पुरुष को नष्ट करने के लिए दाहिने हाथ में जल ले। नासिका के दक्षिण छिद्र पर स्वांस के माध्यम से जल अन्दर ले जाकर पाप पुरुष को बाहर निकाल रहा है– उस जल को, बायीं ओर बिना देखे फेंक दे। तदनन्तर खड़े होकर अर्ध्य दे। दोनों पैर सटे रहे। रक्तपुष्प से तर्जनी अंगुली अलग रखे अर्घ्य दें। प्रातःकाल–मध्याह्न में खड़े होकर, सायंकाल में बैठकर जलार्घ्य दे। मन्देह राक्षसों को अर्घ्य का जल वज्रसम चोट पहुँचाता है। वे सूर्य को खाने आते हैं और डरकर भाग जाते है।'

**त्रिंशत्कोट महावीरा मन्देहा नाम राक्षसा । कृतघ्ना दारूणा घोराः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।।**
**दह्यन्ते तेन दैत्यास्ते वज्रीभूतेन वारिणा ।।**

(देवीभागवत ११.१६.५५)

'भगवती गायत्री का आवाहन अर्घ्यजल न्यास से करे। वे सूर्यमण्डल से सूर्यार्घ्य जलमार्ग से मेरे हृदय में आ जाये। हे नारद! सिद्धासन जैसा आसन नहीं, कुम्भक–सा प्राणायम नहीं खेचरी सी मुद्रा नहीं।' तदनन्तर गायत्रीं को प्रयोग करें। शापविमोचन करें, न्यास करे, शताक्षरा गायत्री का पाठ करके चौबीस मुद्राएँ करे। हे नारद! भिन्नपादा, अभिन्नपादा, गायत्री द्विविध होती है। भिन्नपादा गायत्री जप से ब्रह्महत्या जन्म दोष कटता है, अभिन्नपादा जपने से ब्रह्महत्या सम पाप लगता है।'

**भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनि । अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्याप्रयच्छति ।।**

(देवीभागवत ११.१७.०१)

'जिसे मोक्ष चाहिए वह ब्रह्मचारी अथवा गृहस्थी तुरीयपादा (चतुष्पदा) गायत्री जपे। कुछ आचार्य कहते हैं, गायत्री का जप जल में रहकर न करें क्योंकि ये अग्निमुखा है; किन्तु ये सर्वमान्य नहीं है।'

**न गायत्रीं जपेत् विद्वान् जलमध्ये कथञ्चन् । यतः साग्निमुखी प्रोक्तेत्याहुः केचिन्महर्षयः ।।**

(देवीभागवत ११.१७.१७)

'क्षमाप्रार्थनापूर्वक महामुद्राएं और विसर्जन करना चाहिए। फिर तर्पण करें, अनन्तर अग्निहोत्र करें। पञ्चदेवोपासना देवी पञ्चायतन में करें। गुग्गल की धूप–तिल का तेल माँ को अत्यन्त प्रिय है। हे नारद! भगवती की समर्चा में न्यास करके पात्रासादन करें। गुरु–आज्ञा से पीठपूजा करे। लाल गन्ने के रस से अधिकाधिक स्नान कराने से मुक्ति, आम या ईख का रस अभिषेकार्थ या अंगूर या मुनक्का का रस हो। उनके यहाँ विद्यावैभव कभी कम नहीं होते। विल्वपत्र पर '**ह्रीं**' मन्त्र लिख कर चढ़ाये तो (**ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः**) ब्रह्माण्डाधिपति तक बन सकता है। जपाकुसुम (गुड़हल), बन्धूक (दुपहरिया), दाड़िम (अनार) – ये पुष्प माँ को विशेष प्रिय हैं। काला अगरू, कर्पूर, चन्दन, सिन्हक, लोहबान, घी, गुग्गुल की धूप माँ को विशेष प्रिय है।'

'हे नारद! वृहद्रथ नामक राजर्षि का प्रसंग सुनो। हिमालय पर एक चक्रवाक रहता था। संयोग से वह काशी अन्नपूर्णा में पहुँचा। उसने मन्दिर की एक प्रदक्षिणा कर ली। फलतः वह काशी छोड़कर नहीं गया। वहीं से स्वर्गवास पा लिया। अनन्तर बृहद्रथ नामक त्यागी वीर सम्राट् बना। उसे पूर्वजन्म की पूरी कथा स्मरण थी। महात्माओं के पूछने पर राजाओं ने बताया कि मैं जब चक्रवाक था, तभी मन्दिर की प्रदक्षिणा करने का ये फल है।

*****************************************************************************************

श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! मध्याह्न संध्या में युवास्वरूप में भगवती का ध्यान करें। अर्घ्य में विल्पपत्र व पुष्प लें, '**आकृष्णेन रजसा०**' मन्त्र से अर्घ्य दे। गायत्री मन्त्र से नहीं, निषेध है। तदपि गुरुपरम्परानुसार करना ही श्रेयकर होगा।

**मध्याह्ने केचिदिच्छन्ति सावित्रीन्तुतदित्पृचम् । असम्प्रदायं तत्कर्म कार्य हानिस्तु जायते।।**

(१९.१२.०७)

मन्देह नामक दैत्य तो प्रातः-सायं आते हैं, मध्याह्न में नहीं। सूर्योपस्थान करे, हाथ ऊपर करके तर्पण करे। तदनन्तर गायत्री जप करे। एक सहस्र गायत्री जपने से गोवध, पितृवध, मातृवध, भ्रूणहत्या, सुरापान, गुरुतल्पगमन आदि भारी से भारी पाप भी नष्ट हो जाते हैं।

**स गायत्र्या सहस्रेण पूतोभवति मानवः। गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः ।।**

(१९.१२.२२)

'हे नारद! मध्याह्न संध्या के अनन्तर ब्रह्मयज्ञ करे। सभी वेदों, वेदांगों, पुराणों, स्मृतियों, दर्शनों के प्रथम-प्रथम मन्त्र श्लोकों का पाठ करके सभी देवताओं का तर्पण करें। फिर ऋषितर्पण करे। जनेऊ को कण्ठी कर ले। दो-दो अंजली ऋषितीर्थ से दे। पितरों का तर्पण करें तीन-तीन अंजली दे। जनेऊ को दक्षिण कंधे पर कर ले। फिर बलिवैश्वदेव करे, अतिथिपूजन करके, गोग्रास दे। तदनन्तर भोजन करें। सायंकालीन सन्ध्यावन्दन करें, सायंकालीन अर्घ्य जल में न दे।

**अर्घ्यंदद्यास्तु यो नीरे मूढात्या ज्ञानवर्जितः**

(१९.१२.४४)

'तर्पणादि भी प्रातःकाल के समान ही करे। हे नारद! अब गायत्री के पुरश्चरण की विधि सुनो। नदी तट, पर्वत शिखर, विल्ववृक्ष, पीपल, गोशाला, देवालय में या तीर्थ में करें। किसी भी पुरश्चरण से पूर्व आत्मशोधनार्थ दस सहस्र गायत्री का जप कर लें। जो भी मन्त्र हो (भैरव, नृसिंह, सूर्य, वराह) या फिर चान्द्रायण व्रतादि द्वारा शरीर को शोधे। पवित्र अन्न के लिए अयाचित वृत्ति, उच्छ वृत्ति, शुल्क वृत्ति, भिक्षावृत्ति - भिक्षान्न के चार भाग करें। एक भाग ब्राह्मण का, दूसरा गौ का, तीसरा अतिथि, चौथा सपरिवार अपना, गोमूत्र प्रोक्षण करके पवित्र भाव से भोजन को मन्त्राक्षर संख्या चौबीस के अनुसार चौबीस लाख में पुरश्चरण माना गया है। विश्वामित्र ने बत्तीस लाख माना है, किन्तु चौबीस का ही प्रशस्त है। काशी, केदार, महाकाल, नासिक - ये सिद्ध क्षेत्र हैं। प्रातःकाल से मध्याह्न तक जप स्वस्थ चित्त से करे। भगवती का ध्यान करें। अनन्तर दशांश होम-तर्पण-मार्जन भोजन कराये। एक लक्ष घृताक्त कमल पुष्पों से हवन करने से अभीष्ट कार्य सम्वत्सर भर में सिद्ध हो जाता है। गायत्री जपकर्ता एक दिन पंचगव्य, एक दिन केवल वायुभक्षण, एक दिन ब्रह्मणान्त - इस प्रकार षण्मास तक जप करने पर सिद्धि मिल जाती हैं। गंगादि में सौ बार जप कर लेने पर समग्र पाप नष्ट हा जाते हैं।

**स्नात्वागंगादि तीर्थेषु शतमन्त जले जपेत् । शतेनापस्ततः पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।**

(देवीभागवत ११.२१.५०)

'हे नारद! पाँच यज्ञ नित्य होने ही चाहिए - १. देवयज्ञ, २. ब्रह्मयज्ञ ३. भूतयज्ञ ४. पितृयज्ञ, ५. मनुष्ययज्ञ। इन्हीं का नाम है - बलिवैश्वदैव। चूल्हे, लोहे के बर्तन में, पृथ्वी, मृत्भाण्ड, कुण्ड या वेदी पर बलिवैश्वदैव नहीं करे। अग्नि जलाते समय, हाथ, कपड़ा, सूप या मृगचर्म का प्रयोग अनुचित है। अग्नि को मुख से फूंक मारकर प्रज्वलित न करें।

**मुखेनोपधमे दग्निं मुखादेव व्याजायत्**

(१९.२२.०५)

वस्त्र से व्याधि, सूप से धननाश, हाथ से मृत्यु, तैल तथा लवण मिश्रित पदार्थ से बलिवैश्वदेव नहीं होता। संन्यासी ब्रह्मचारी पके अन्न के स्वामी है, इन्हें खिलाकर ही खाना चाहिए। याचक को वैश्वदेव से पहले भी खिलाया जा सकता है। गोग्रास निकाले। अतिथि निराश न लौटे क्योंकि निराश अतिथि पुण्य लेकर पाप देकर जाता है।

*************************************************************************************

**अतिथि र्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति निवर्तते । सतस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।**

(देवीभागवत ११.२२.१९)

भवसागर से पार जाने का प्राणाग्नि होम भी श्रेष्ठ उपाय है। नारायण कहते हैं, 'नारद! भोजनोपरान्त '**अमृतापिधानमसि०**' मन्त्र से आचमन करें। शेषान्न उच्छिष्टभोजी पितरों को अर्पित कर दें। शेष जल भी रौरवादि नरकस्थ पितरों को प्राप्त हो। हे नारद! त्रिकाल सन्ध्याओं में नित्य जप, होम, तर्पण, ब्राह्मण-भोजन, अतिथि सत्कार करता है; ये भी पंचांग पुरश्चरण ही हैं। त्रिविध ऋण के उपरान्त ही संन्यास लेना उचित है, पूर्व नहीं। कृच्छ्र चान्द्रायण-व्रत करने वाला लवण, अम्ल, गाजर, कांस्यपात्र भोजन, पान, दोनों समय भोजन, श्रुतिस्मृतिविरुद्धाचार त्यागकर; सत्कर्मो में शिष्टानुमोदित कर्मों मे ब्रह्मचर्यपूर्वक भूशय्या व त्रिकाल संध्या करें। नारद! अब कुछ नियम बताते हैं, जिन्हें ध्यान से सुनो।'

'**प्राजापत्य व्रत –** सविधि क्षौर करावे, नखकर्तन करे, पवित्र चरण करें। पवित्र मन्त्रों का जप करे। ॐ व्याहृतियों सहित दस हजार गायत्री जप करे। ऋषियों व छन्दों को जलतर्पण करे। अनपेक्षित अनाचारी से सम्भाषण न करें। किसीं का अपमान भी न करें। प्राजापत्य, सान्तपन, पराक, कृच्छ्र, चान्द्रायण – इन व्रतों की विधि सुनो। इनके करने से पञ्चमहापाप नष्ट हो जाते हैं। तप्तकृच्छ्र से तो तत्काल ही पाप भस्म हो जाते है। तीन चन्द्रायण से पवित्र प्राणी ब्रह्मलोक पाता है। आठ चान्द्रायण से देवताओं के साक्षात्कार की पात्रता पा लेता हैं। व्रतारम्भ में तीन दिन केवल प्रातः, तीन दिन केवल सायं, तीन दिन अयाचित जो मिले, एक समय भोजन, तदनन्तर तीन दिन उपवास करें। इस प्रकार द्वादश दिवसीय ये प्राजापत्य व्रत है। **सान्तपन –** प्रथम दिन पञ्चगव्य (देसी गौ मूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक) दूसरे दिन अखण्डोपवास। ये दो रात्रि का कृच्छ्रसान्तपन व्रत है। **अतिकृच्छ –** पहले तीन दिन एक ग्रास, फिर तीन दिन तक दो-दो ग्रास, फिर तीन दिन तक तीन-तीन ग्रास, फिर तीन दिन तक अखण्डोपवास। यही अति कृच्छव्रत है। इन्हीं नियमों को तिगुना करें, तो महासान्तपन व्रत होती हैं। **तप्तकृच्छ्र –** तीन दिन दूध पहले, तीन दिन गरम जल, तीन दिन घृत, तीन दिन वायु, जल गरम ही पीये। एक/तीन स्नान करें। तप्तकृच्छ्र द्वादश दिवसीय है।'

**तप्तकृच्छ्रं चरनविप्रो जलक्षीरघृतानिलाम् । प्रतित्र्यहं पिबेत् उष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः ।।**

(देवीभागवत ११.२३.४७)

'बारह दिन तक केवल जल ही ले ये पराक व्रत है। चान्द्रायण – कृष्णपक्ष में एक-एक ग्रास कम करे, शुक्ल पक्ष में चन्द्रकला तिथि क्रम से बढावें। अमावस्या को कुछ न ले, त्रिकाल सन्ध्या स्नान करें। प्रातः-सायं चार-चार ग्रास लेवे, तो शिशु चान्द्रायण होगा। मध्याह्न में नित्य केवल एक बार आठ ग्रास हविष्यान्न ले तो अति चान्द्रायण होता है। इन व्रतों द्वारा शुद्ध तन-मन से ही पुरश्चरण में लगे तो फल प्राप्त होगा।' नारायण कहते हैं, 'हे नारद! एक हजार गायत्री होम शमी की समिधाओं से (दुग्धयुक्त) करें, तो रोगादि प्रेतबाधादि शान्त होते हैं। अथवा क्षीर वाले वृक्षों की समिधायें हों। भूमि पर चतुष्कोण मण्डल बनाकर गायत्री मन्त्र से मध्यभाग में त्रिशूल गाढ़े, तो प्रेतबाधा नष्ट हो जाती हैं। शनिवार को पीपल के नीचे सौ बार गायत्री जपने से उसे भौतिक क्लेश नहीं होते। गुरुच को दूध में भिगोकर हवन करने से मृत्युञ्जय होम होता है। अपामार्ग के बीजों से होम करने पर मिर्गी रोग ठीक होता है। राष्ट्रीय आपदा की आशंका में जंगली वेत की समिधा से सप्ताहभर होम करने पर शान्ति होती है। गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल-भस्म सर्वोत्तिम-औषधि है सर्परोग की। लालकमल से, जूही के पुष्प से, साठी के चावल से, विल्वसमिधा से, विल्वफलों से, विल्व पत्रों से, पुष्पों को घी में भिगोकर हवन करने से महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है। हे नारद! विल्ववृक्ष की जड़ के खण्ड़, खीर व घृत के साथ सप्ताहभर सौ-सौ वार हवन करने से निश्चित प्रचुर लक्ष्मी प्राप्त होगीं।'

'दूर्वा, दूध, मधु या घी से होम करने पर अकाल मृत्यु कट जाती है। विल्व वृक्ष के नीचे गायत्री जपे तो सम्पत्ति मिलती है। मन्दार की समिधा का होम सर्वत्र विजय देता है। वेंत की समिधा दूध, पत्र, पुष्प, खीर की आहुति देने से सप्ताह भर में वर्षा होती हैं। जल में खडे, होकर सप्ताह भर जप करें तो वृष्टि होवे। जल में भस्म की सौ आहुति दे तो वर्षा बन्द होवे। एक पैर पर खड़े होकर हाथ

*****************************************************************************************

ऊपर तीन सौ मन्त्र रोज मासभर जपें, तो इष्ट फल पाता है। तेरह सौ मन्त्र नित्य एक पैर से खड़े हो जप करे, रात में खीर खाये तो व्याधि रहित होता है। प्रतिदिन तीन सहस्त्र गायत्री जपने से सर्वविध पाप नष्ट हो जाते है। चौबीस सहस्त्र जप – कृच्छ्रव्रत, चौसठ सहस्त्र करे– चान्द्रयण व्रत जैसा है। हे नारद ! सदाचार सबसे पहले हैं। इसके बिना कुछ नही है।

× * × * × * × * ×

*।। समाप्तोऽयं एकादशः स्कन्धः ।।*

# ।। कालिकाष्टकम् ।।

कपालमालधारिणी समस्तक्लेशहारिणी विचित्रवेषचारिणी भवेशवंशतारिणी ।
सदैवसौख्यसाधिनी समुज्ज्वले स्वयंप्रभे नगाधिराजबालिके नमामि देवि कालिके ।।१।।
मृगेन्द्रसूनुवाहिनी मयंकभालशोभिनी प्रचण्डचण्डमुण्डदैत्यवंशमूलमर्दिनी ।
अनीतिभीतिनाशिनी सुपद्मपुष्पमालिके नगाधिराजबालिके नमामि देवि कालिके ।।२।।
महासुरासुरेन्द्रयक्षकिन्नरैःसुपूजिते महेशदेवतेशकेशनिर्निमेषवीक्षिते ।
महादयोदयोज्ज्वले समग्रजीवपालिके नगाधिराजबालिके नमामि देवि कालिके ।।३।।
निराकृतःसुरैरहं समागतस्त्वदन्तिके सकामकोपलोभमोहमत्सरैः प्रदूषितः ।
विशोध्य बालकं प्रदेहि शं सुरेन्द्रलालिके नगाधिराजबालिके नमामि देवि कालिके ।।४।।
विरक्तबीजसदृशाःहि दानवाः दलन्ति मे निशुम्भशुम्भकम्पिताः चलन्ति भूधराः शिवे ।
न सन्ति सक्षमाः सुराः सुरक्षणे सनातनं स्वयं करोतु रक्षणं समन्ततः सुमालिके ।। ५।।
सुपंचचामरे शुभे विलक्षणे विलिख्य वै स्तुतिं शुभां मनोरमां समस्तसिद्धिदायिकाम् ।
सुभावसंयुतामिमांकृपाकटाक्षहेतवे समपर्यामि सादरं भवानिपादपद्मयोः ।। ६।।

षड्विकारप्रणाशाय षडैश्वर्यसुलब्धये ।
करोति त्र्यम्बकःप्रीत्यापद्यैःषड्भिःस्तुतिं शुभाम् ।। ७ ।।

# ।। श्रीदेवीभागवतपीयूष ।।

## ।। द्वादशः स्कन्धः ।।

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।*

### प्रत्यक्षर गायत्री मन्त्र स्वरूप शक्ति, प्रत्यक्षर गायत्रीमन्त्र स्वरूपशक्ति, गायत्री कवच, न्यास-ध्यान, पिण्ड ब्रह्माण्ड की एकता, गायत्रीस्तोत्र, गायत्री-सहस्रनाम, होमविधि

नारदजी ने पूछा, 'हे प्रभो! आपके द्वारा प्रतिपादित सदाचारोपदेश तो कठिन जान पड़ता है। आप सरलोपाय से सिद्धि प्राप्ति का उपाय बताइए। श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! गायत्रीनिष्ठ ब्राह्मण कृतकृत्य हैं। तीन हजार गायत्री का जप करने वाला १ ब्राह्मण तो सर्वपूज्य हो जाता हैं।

**गायत्री मात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद्द्विजः ।।**

**सन्ध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च । सहस्त्रत्रितयं कुर्वन्सुरैः पूज्यो भवेन्मुने ।।**

(१२.०१.०८-०९)

| अक्षर | ऋषि | छन्द | देवता | देवता | शक्ति | रूप | तत्व | मुद्राएँ | अंगन्यास |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तत् | वामदेव | गायत्री | अग्नि | अग्नि | शिवा | चम्पा | पृथ्वी | सुमुख | पादांगुष्ठ |
| स | अत्रि | उष्णिक् | प्रजापति | वायु | सत्या | अलसी | जल | सम्पुट | गुल्फद्वय |
| वि | वशिष्ठ | अनुष्टुप् | चन्द्र | रवि | विश्वा | मूंगा | तेज | वितत | पिडलियाँ |
| तुः | शुक्र | वृहती | ईशान | विद्युत | भद्रविलासिनी | स्फटिक | वायु | विस्तृत | घुटने |
| व | कण्व | पंक्ति | सूर्य | यम | प्रभावती | कमल | आकाश | द्विमुख | जाघें |
| रे | पराशर | त्रिष्टुप् | सूर्य | जलपति | जया | तरुणसूर्य | गन्ध | त्रिमुख | उपस्थ |
| णि | विश्वामित्र | जगती | बृहस्पति | गुरु | शान्ता | शंख | रस | चतुर्मुख | वृषण |
| यम् | कपिल | अतिजगती | मित्रावरुण | पर्जन्य | कान्ता | रक्पोत्पल | रूप | पञ्चमुख | कटि |

| अक्षर | ऋषि | छन्द | देवता | देवता | शक्ति | रूप | तत्व | मुद्राएँ | अंगन्यास |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| भ | शौनक | शक्बरी | भग | इन्द्र | दुर्गा | पद्मराग | स्पर्श | सष्मुख | नाभि |
| र्गो | याज्ञवल्क्य | अतिशक्बरी | ईश्वर | गन्धर्व | सरस्वती | इन्द्र नीलमणि | शब्द | अधोमुख | उदर |
| दे | भरद्वाज | धृति | गणेश | पूजा | विद्रुमा | मोती | उपस्थ | व्यायकाञ्जलि | स्तनभाग |
| व | जमदग्नि | अतिधृति | त्वष्टा | मित्र | विशालेशा | कुकुम | पाद | शकट | हृदय |
| स्य | गौतम | विराट | पूषा | वरुण | व्यापिनी | काजल | वायु | यमपाश | ग्रीवा |
| धी | मुद्गल | प्रस्तार | इन्द्र | त्वष्टा | विमला | रक्तचन्दन | हस्त | गथित | निचला होठ |
| म | व्यास | पंक्ति | वायु | वसुगण | तमोपहारिणी | वैदूर्यमणि | वाग् | उन्मुखोन्मुख | तालु |
| हि | लोमश | प्रकृति | वामदेव | मरुद्गण | सूक्ष्मा | मधु | नाक | प्रलम्ब | नासिका |
| धि | अगस्त्य | आकृति | मैत्रावरुणि | चन्द्र | विश्वयोनि | हल्दी | जीव | मुष्टिक | नेत्रद्वय |
| यो | कौशिक | विकृति | विश्वदेव | अंगिरा | जया | मकोई के फूल | चक्षु | मत्स्य | ललाट |
| यो | वत्स | संकृति | मातृक | विश्वदेव | वशा | दूध | श्रोत्र | कुर्म | भ्रूमध्य |
| नः | पुलस्य | अक्षरपंक्ति | विष्णु | अश्वनीकुमार | पद्मालया | सूर्यकान्मणि | प्राण | वराह | उत्तरोष्ठ |
| प्र | माण्डूक | भूः | वसु | सप्रजापतिदेव | पर | सुग्गे के पंख | अपान | सिंहाकान्त | दक्षिणपार्श्व |
| चो | दुर्वासा | भुवः | रुद्र | रुद्र | शोभा | केतकी | व्यान | महाकान्त | उत्तरपार्श्व |
| द | नारद | स्वः | कुबेर | ब्रह्मा | भद्रा | मल्लिका | उदान | मुकुट | सिर |
| यात् | कश्यप | ज्योतिष्मति | अश्विनी | विष्णु | त्रिपदा | कनेर | समान | पल्लव | मुखमण्डल |

त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अम्बुज, चौथेपाद की मुद्राएँ ।

श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! गायत्रीकवच से प्राणी सकल पापों से मुक्त हो जाता है। गायत्री कवच के ऋषि ब्रह्मा, विष्णु, महेश; ऋक्, यजु, साम, अथर्व छन्द; परमब्रह्म-परमात्मा देवता; शक्ति-जगदम्बा बीज; सूर्य कीलक; बुद्धि-मोक्ष प्राप्ति करने में विनियोग – प्रथम चार वर्णों से हृदय, अगले तीन वर्णों से मस्तक, उनसे अगले चार वर्णों से शिखा, उनसे अगले तीन वर्णों से कवच, उनसे अगले चार वर्णों से नेत्र, उनसे अगले चार वर्णों से शेषांग।' ध्यान –

**मुक्ता विद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दुनिवद्धरत्नमुकुटां तत्वार्थ वर्णात्मिकाम् ।**
**गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं श खं चक्रमथारविन्द युगलं हस्तैर्वहन्तीम्भजे ।।**

(१२.०३.१०)

'तदनन्तर कवच का पाठ करें। ये कवच चौसठ कलाओं से सम्पन्न करके साधक को मुक्त कर देता है।' श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! अब गायत्रीहृदय सुनो। जैसे पिण्ड और ब्रह्माण्ड में ऐक्य है, वैसे ही स्वशरीर व भगवती के स्वरूप में ऐक्य मानना चाहिए क्योंकि बिना देवता बने देवता की अर्चना नहीं की जा सकती।

**पिण्ड ब्रह्माण्डयोरैक्यांद् भावयेत् स्वतनौ तथा । देवीरूपे निजे देहे तन्मयत्वाय साधकः ।।**
**नाऽदेवोभ्यर्चयेत् देवं इति वेदविदो विदुः ।**

(१२.०४.०५-०६)

भगवती गायत्री का ध्यान करके एकाग्रचित्त से अखिल ब्रह्माण्डमयी माँ का अनुभव प्राप्त करने का प्रयत्न करे। इस हृदय पाठ से सकल पाप नष्ट हो जाते हैं। गायत्रीहृदय पाठ से साठ हजार गायत्री जप का फल होता है।

**षष्टिशतसहस्त्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवन्ति**

***********************************************************************************

नारदजी के पूछने पर श्रीनारायण भगवान ने गायत्रीस्तोत्र सुनाया,

**आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि ते । सर्वत्र व्यापिकेऽनन्ते श्रीसन्ध्ये ते नमोस्तु वै ।।**

(१२.०५.०२)

'हे आदिशक्ति! हे जगन्माता! हे भक्तानुग्रहकारिणी, सर्वव्यापिके! हे सन्ध्यारूपा माँ! आपको नमन है। प्रातःबालरूपा, हंसवाहना, रक्तवर्णीया, ब्राह्मीशक्ति को प्रणाम है। मध्याह्न, यौवना, गरुडवाहना, श्वेतवर्णा, वैष्णवीशक्ति को प्रणाम है। सायं वृद्धा बृषारूढा, कृष्णवर्णा, शैवी शक्ति को प्रणाम है। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति आप ही हैं। सम्पूर्ण नाड़ियाँ, नदियाँ आपका ही रूप हैं। अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति के लिए सन्ध्या काल में इस स्तोत्र का पाठ अवश्य करना चाहिए। स्नानकाल में स्तोत्र पाठ से त्रिकाल सन्ध्या का फल मिलता है। हे नारद! भगवती गायत्री के सहस्रनाम स्तोत्र के पाठ से मोक्ष भी दूर नहीं रह पाता। है। इस स्तोत्र के ऋषि ब्रह्माजी, छन्द अनुष्टुप हैं, गायत्री देवता हैं, व्यंजन बीज है, अच्-वर्ण (स्वर) शक्ति है, मातृका मन्त्र के छः अक्षर ही अंग करन्यास हैं। अब इसका ध्यान सुनो –

**रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां रक्तारक्तनवस्त्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम् ।**
**गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां पद्माक्षीञ्चवरस्त्रजञ्च दधतीं हंसाधिरूढां भजे ।।**

'जो माता रक्त, श्वेत, नील, पीत स्वच्छ पंचमुखसम्पन्न है, त्रिनेत्रा है, रक्तवर्णीय मुख को रक्तोत्पलों की माला से सजाने वाली या कमण्डलु व कमल धारण करने वाली कमलासना माँ और हाथों में माला धारण करने वाली तथा अभयमुद्रा वाली, हंसवाहिनी माँ गायत्री की मैं उपासना करता हूँ।'

इस प्रकार अचिन्त्य लक्षणा से श्रीगायत्री के अष्टोत्तरसहस्रनामों का पाठ पातकोपपातक, महापातक, प्रत्यवायों को नाश करके घर में सुख-शान्ति, स्थिर सम्पत्ति, प्रदान करता है और मोक्ष देता है।

**ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः**

(१२.०६.१६५)

श्रीनारायण कहते हैं, 'हे नारद! जो दिव्य ज्ञान प्रदान करके सकल पापों को क्षीर्ण करे। वह है – दीक्षा।

**दिव्यं ज्ञानं हि या दद्यात्कुर्यात् पापक्षयं तु या । सैव दीक्षेति सम्प्रोक्ता वेदतन्त्रविशारदैः ।।**

(१२.०७.०५)

गुरुपूजा सामग्री का '**ॐ फट्**' मंत्र से सात बार शोधन करे। तीन बार पादाघात से अन्तरिक्ष व भूतल के विघ्नों को नष्ट करे। बायीं शाखा का स्पर्श करते हुए दक्षिण पाद से मण्डप में प्रवेश करे। '**ॐ फट्**' मूलमन्त्र है, शरमन्त्र है। पुण्याहवाचन करे। गुरु को उत्तरमुख और स्वयं को पूर्वमुख करके बैठे। दीक्षा में जो मन्त्र देना है – मस्तक में ऋषि का, मुख में छन्द का, हृदय में देवता का, गुह्य में बीज का, पैरों में शक्ति का न्यास करके तीन बार ताली बजाये। तीन बार चुटकी बजाकर दिग्बन्ध करे। '**ॐ नमः, ॐ स्वाहा, ॐ बषट्, ॐ हुम्, ॐ वोषट्, ॐ फट्**' इनसे षड्ङ्गन्यास करे। शंख स्थापित करे। पात्रासादन करे। सर्वतोभद्र का प्रतिष्ठापूर्वक पूजन करे। अंग पूजा, आवरण पूजा करे। दक्षिण में वेदी बनाकर अग्निस्थापन संस्कार कुशकण्डिका करे। अग्निपूजा में भगवती के मन्त्रों से होम करे। '**ॐ चितपिंगल हन् हन् दह दह पच पच सर्वज्ञ आज्ञापय अज्ञापय**' से अग्नि की सात जिह्वाओं क्रमशः हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा, अतिरिक्ता का पूजन करे। आठ अग्नियों की मूर्तिपूजा क्रमशः जातवेदा, सप्तजिह्वा, हव्यवाहन, अश्वोदजार, वैश्वानर, कौमारतेजा, विश्वमुख, देवमुख इन नामों से करे। इन नामों का '**ॐ जातवेदसे स्वाहा**' इस प्रकार प्रयोग करे।

इस प्रकार होम सम्पन्न करके गुरु शिष्य को समीप बुलाए तथा शिष्य शरीर में, पैरों में, कालाध्वा, लिंग में तत्वाध्वा, नाभि में भुवनाध्वा, हृदय में वर्णाध्वा, ललाट में पदाध्वा, मस्तक में मंत्राध्वा का चिन्तन करे। कुशोदक से पवित्र करके होम करे तथा भावना द्वारा शिष्य के घहोध्वा ब्रह्म में लीन करे। '**ॐ वौषट्**' करके शिष्य के नेत्र बन्द करे। फिर गुरु तथा भगवती के चरणों में पुष्पांजलि

************************************************************************************

दिलवाकर नेत्र खोले तथा गुरु शिष्य को समीप बैठाकर संकल्प करे कि भगवती शिवा मेरे हृदय से शिष्य के हृदय में प्रवेश कर रही हैं। तदनन्तर शिष्य के सिर पर हाथ रखकर उसके कान में मन्त्र को तीन बार उपदेश करे। शिष्य मन्त्र का पाठ एक सौ आठ बार करे तथा गुरु को परमात्मा मानकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। यही भावना जीवन-पर्यन्त रखे। गुरु मन्त्र का नित्य जप करे। उन्हें सर्वस्व सौंप दे। इस प्रकार धर्मपुत्र नारायण मौन हो गये। नारदजी उन्हें प्रणाम करके भगवती के दर्शनार्थ चले गये।

## यक्ष ने किया देवों का गर्वनाश, गौतमऋषि का तप, मणिद्वीप

जनमेजय ने व्यासजी से पूछा, 'हे गुरुदेव! विभिन्न मतों में दीक्षित प्राणी अनिष्ट नहीं चाहता, किन्तु वेद पर विश्वास भी नहीं करता ऐसा क्यों है? साथ ही आप मणिद्वीप का वास्तविक स्वरूप बताइए।' व्यासजी बोले, 'राजन्! पहले दैत्यों ने देवताओं से युद्ध किया। सामर्थ्यवान् शक्ति के अभिमानी दैत्य भगवती कृपा प्राप्त देवताओं से पराजित हो गये। देवता विजयी तो हुए, किन्तु विजयाभिमान कीट ने उन्हें अन्धा कर दिया। अपने पौरुष का बखान करते जाते। तभी भगवती ने यक्ष रूप बनाकर देवताओं को विस्मित किया। देवताओं ने अग्नि को भेजा, 'पता लगाओं! ये कौन है?' अग्नि गये तो प्रकाशपुंज ने पूछा, 'तुम कौन हों? क्या शक्ति है तुममें?' अग्नि ने कहा, 'मैं अग्नि हूँ। सबको जलाने की शक्ति रखता हूँ।' यक्ष ने एक तृण को जलाने के लिए कहा, किन्तु न जला सके तो शर्मसार होकर लौट गये।

**तदैनं यदि ते शक्तिः विश्वस्य दहनेऽस्ति हि ..... न शशाक तृणं दग्धुं लज्जितोऽगात्सुरान्प्रति**

(१२.०८.२७ व ३०)

तदनन्तर वायु गये उनसे भी परिचय पूछा और कहा, 'तृण को उडाओ।' किन्तु उड़ाना, तो अलग वे हिला तक न सके। शर्म में मारे चुप लौट गये। स्वयं इन्द्र आये, तो वह तेजःपुज्ज लुप्त हो गया। इन्द्र को भारी लज्जा आये; बात करना तो अलग ... दर्शन तक न हो सके इन्द्र को। इस अपयश से तो मरना ही ठीक है, क्योंकि महान् पुरुषों का अपमान मरणतुल्य होता है।

**देहत्यागो वरस्तस्मान्मानों हि महतां धनम् । माने नष्टे जीवितन्तु मृतिलतुल्यं न संशयः ।।**

(१२.०८.४७)

अहंकार त्यागकर इन्द्र '**ह्रीं**' बीज का जप करने लगे। आकाशवाणी के निर्देश पर भगवती का ध्यान किया। लाखों वर्षों तक तप किया। एक दिन सहसा चैत्र शुक्लपक्ष नवमी को मध्याह्न में भगवती प्रकट हो गयीं। इन्द्र गद्‌गद् वाणी से उनका स्तवन करके प्रेमाश्रुभरित नेत्रों से अपलक निहारने लगे। माँ ने कहा, 'सुरेन्द्र! '**ह्रीं**' व '**ॐ**' - दोंनों ही मेरा स्वरूप हैं। मैं ही आदिशक्ति हूँ, त्रिगुणात्मक देव मेरे ही रूप हैं, संसार की व्यवस्था नियमित मेरे प्रभाव से ही है। मेरी ही कृपा से तुम्हें संग्राम में विजय मिली। तुम्हारें अभिमान को चूर करने के लिए मैं ही यक्ष रूप में प्रकट हुई थी'। तब देवताओं ने गर्वशून्य हो भगवती का समाराधन किया। भगवती अन्तर्धान हो गयी। हे जनमेजय! अतः सभी अधिकारियों का धर्म है कि वे गायत्री का जप करें। विशेषकर ब्राह्मण का तो परमधर्म है।'

व्यासजी कहते हैं, 'हे जनमेजय! पूर्वकाल में इन्द्र ने पन्द्रह वर्ष तक अकालयोग बनाया, अनावृष्टि से प्रजा में महाविनाश होने लगा। फलतः जीवित प्राणी मृत को या जीवित को भी खाकर भूख मिटाते थे। विषम महाविनाश के बीच भी गौतमजी की तपस्या का प्रभाव था। माता गायत्री की कृपा से वे अन्न वस्त्रावरण देकर सबकी रक्षा करते थे।

**युष्माकं एतत्सदनं भवद्दासोऽस्मि सर्वथा । का चिन्ता भवतां विप्रा मयि दासे विराजति ।।**

(१२.०९.१२)

भगवती गायत्री ने गौतम ऋषि को पूर्णपात्र दिया तथा कहा, 'ऋषे! इस पात्र से तुम सबकी सब इच्छाएँ पूर्ण कर सकोंगे।'

**पूर्णपात्रं ददौ तस्मै येन स्यात् सर्व पोषणम् ..... तस्य पूर्तिकरं पात्रं मया दत्तं भविष्यति**

(१२.०९.२२-२३)

*******************************************************************************

गौतमजी ने उसी पात्र से यज्ञपात्र, सम्भार, भोजन व्यवस्था, हवि आदि अन्न-वस्त्र की पूर्ति कर दी। भारी यज्ञ चलने लगा। बारह वर्ष तक गौतमजी ने सबका पालन किया। स्वर्गसभा में इन्द्र ने कहा, 'ये गौतम तो कल्पवृक्ष हैं, अन्यथा भुखमरी में हमें हवि नहीं मिल सकती थी।'

**सभायां वृत्रहा भूयो जगौ श्लोकं महायशाः ।**
**अहो अयं नः किल कल्पपादपो मनोरथान्पूरयति प्रतिष्ठितः ।**
**नोचेत् अकाण्डे क्व हविर्वपा वा सुदुर्लभा यत्र तु जीवनाशा ।।**

(१२.०९.३५-३६)

गौतमजी ने एक भव्य मन्दिर माँ भगवती का बनवा दिया। एक दिन सहसा नारदजी आये। माता के दर्शन कर गौतमजी की भारी प्रशंसा की, जिससे कुछ कृतघ्न ब्राह्मण जल उठे। उन्होंने मिलकर माया की गौ बनाई। गौतमजी यज्ञशाला मे थे, गौ को उन्होंने अन्दर आने से रोकने के लिए हुं-हुं किया, तो वह मर गयी। अब क्या था? उन ब्राह्मणों ने शोर मचा दिया, 'अरे इस पापी गौतम को देखो, इसने गाय मार दी।' गौतमजी ने समाधि से जान लिया तथा क्रोधवश उन ब्राह्मणों को पतित होने का शाप दिया – 'तुम्हें गायत्री का अधिकार नही रहेगा। तुम्हारा मन उपासना में नही लगेगा।' कृतघ्न ब्राह्मणों की विद्या-विस्मृत हो गयी। वे हीनताग्रस्त हो उठे। फलतः उन्होंने गौतमजी के चरणों में गिरकर क्षमा प्रार्थना करते हुए अनेकशः प्रणाम किये। गौतमजी करुणार्द्र हो उठे तथा बोले, 'अब तुम्हारा जन्म कलियुग में होगा। अपनी दुर्गति से बचने का उपाय है – 'भगवती गायत्री की उपासना को दृढ़ता से पकड़े रखो।'

**तर्हि सेव्यं सदा सर्वैगायत्रीपादपंकजम्**

(१२.०९.९०)

व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! पूर्व में गौतम के द्वारा शापदग्ध ब्राह्मण ही कलियुग में संध्यावन्दनहीन, शौचाचार-शून्य, पाखण्ड, मतानुपायी, तर्पण, श्राद्धविहीन उत्पन्न हो गये हैं; जो गायत्री की उपेक्षा करके अन्य मतों में पड़े हैं। भगवती की उपासना ही नित्य है, अन्य सब अनित्य है।

वेदव्यासजी कहते हैं, 'हे राजेन्द्र! श्रेष्ठलोक है – ब्रह्मलोक। उससे ऊपर सर्वलोक और यही मणिद्वीप है। यहीं भुवनेश्वरी देवी विराजती हैं। क्षीरसागर के बीच ये पावनतम द्वीप है। समग्रविश्व का प्राकृतिक सौन्दर्य यहाँ की रमणीयता का अंशाश भर भी नहीं हैं। पुष्प-फलादि से सज्जित महावन यहाँ की शोभा बढाते हैं। विभिन्न मृगों के झुण्ड, पक्षियों के कलरव से शृंगारित उपवन हैं। यहाँ ऋतुराज वसन्त ही सदा रहता है। मणिद्वीप के चारों ओर लौहमयी दीवार है – सात योजन ऊँची। चार द्वारों पर सैकड़ों सैनिक हैं। कांस्यमयी दीवार है, इसके अन्दर एक छाट है; किन्तु वृक्षावली सघन है। तांबे की चाहर दीवार सात योजन ऊंची। यहाँ वसन्त मधुश्री व माधवश्री के साथ सदा रमण करता है। सीसे का परकोटा है। मणिद्वीप से पूर्व में अमरावती है। मणिद्वीप से अग्नि कोण में वह्निपुरी है। मणिद्वीप से दक्षिणकोण में यमपुरी है। मणिद्वीप से नैर्ऋत्य में राक्षसपुरी है। मणिद्वीप से पश्चिम में वारूणी वरूण का वाहन मत्स्य है। मणिद्वीप से वायव्य में वायुपुरी वायु का वाहन मृग है। मणिद्वीप से उत्तर में कुबेरी है। मणिद्वीप से ईशान में रुद्रलोक है। इस प्रकार मणिद्वीप की शोभा अपार है।'

वेदव्यासजी कहते हैं, 'हे राजेन्द्र! पुखराजमणि रचित दीवार के आगे पद्मरागमणि का परकोट है यहाँ चौसठ कलाएँ विराजती हैं। इनके नाम हैं – ०१. पिंगलाक्षी, ०२. विशालाक्षी, ०३. समृद्धि, ०४. वृद्धि, ०५. श्रद्धा, ०६. स्वाहा, ०७. स्वधा, ०८. माया, ०९. वसुन्धरा, १०. त्रिलोकधात्री, ११. सावित्री, १२. गायत्री, १३. त्रिदशेश्वरी, १४. सुरूपा, १५. बहुरूपा, १६. स्कन्दमाता, १७. अच्युतप्रिया, १८. विमला, १९. अमला, २०. अरुणी, २१. आरुणी, २२. प्रकृति, २३. विकृति, २४. सृष्टि, २५. स्थिति, २६. संहति, २७. संध्या, २८. माता, २९. सती, ३०. हंसी, ३१. मर्दिका, ३२. वज्रिका, ३३. परा, ३४. देवमाता, ३५. भगवती, ३६. देवकी, ३७. कमलासना, ३८. त्रिमुखी, ३९. सप्तमुखी, ४०. सुरासुरविमाडिनी, ४१. लम्बोष्ठी, ४२. उर्ध्वकेशी, ४३. बहुशीर्षा, ४४. वृकोदरी,

४५. रथरेखा, ४६. शशिरेखा, ४७. गगनवेगा, ४८. पवनवेगा, ४९. भुवनपाला, ५०. मदनातुरा, ५१. अनंगा, ५२. अनंगमथना, ५३. अनंगमेखला, ५४. अनंगकुसुमा, ५५. विश्वरूपा, ५६. सुरादिका, ५७. क्षयंकरी, ५८. शक्ति, ५९. अक्षोभ्या, ६०. सत्यवादिनी, ६१. बहुरूपा, ६२. शुचिव्रता, ६३. उदारा, ६४. वागीशी।'

'तदनन्तर गोमेदमणि की दीवार है। यहाँ बत्तीस देवियाँ रहती हैं – ०१. विद्या, ०२. ह्रीं, ०३. पुष्टि, ०४. प्रज्ञा, ०५. सिनीवाली, ०६. कुहु, ०७. रूद्रा, ०८. वीर्या, ०९. प्रभा, १०. आनन्दा, ११. पाषिणी, १२. ऋद्धिदा, १३. शुभा, १४. कालरात्रि, १५. भद्रकाली, १६. कपर्दिनी, १७. विकृति, १८. दण्डिनी, १९. मुण्डनी, २०. सेन्दुखंण्डा, २१. शिखण्डिनी, २२. निशुम्भ, २३. शुम्भमथिनी, २४. महिषासुरमर्दनी, २५. इन्द्राणी, २६. रुद्राणी, २७. शंकाराद्धांगी, २८. नारायणी, २९. त्रिशूलनी, ३०. पालिनी, ३१. अम्बिका, ३२. आल्हादिनी। वज्रमणि (हीरा) की दीवार है यहीं भगवती भुवनेश्वरी रहती हैं। वैदुर्यमणि की दीवार, यहाँ सप्तमातृका रहती हैं। इन्द्रकीलमणि परकोटा यहाँ षोडशदलपद्म पर षोडशभावकायें हैं। मुक्तामणि रचित विश्वप्रभासिका पर अष्टदेवियाँ रहती है। महामरकतमणि रचित यहाँ सभी यन्त्रस्थदेवता रहते हैं। यहाँ षटकोण में पूर्व में ब्रह्मा गायत्री सहित श्रुति-स्मृति हैं। नैर्ऋत्य में सावित्री व विष्णु है। वायुकोण में शिव और शिवा हैं। अग्निकोण में कुबेर हैं। वायव्य में रति और कामदेव हैं। ईशान में गणेशजी हैं। प्रवाल मणिरचित पञ्चभूतेश्वरी देवियाँ, नवरत्नरचित महासाल भगवती के सभी अवतार यहाँ है।'

'इसके बाद है चिन्तामणि रचित मन्दिर। इसमें भगवती रहती है। हे राजन्! इस चिन्तामणि रचित मन्दिर में चार विशाल मण्डप हैं – १. श्रृंगारमण्डप, २. मुक्तिमण्डप, ३. ज्ञानमण्डप व ४. एकान्तमण्डप। कश्मीर वाटिका, मल्लिका, कुन्द, पद्मवाटिका है। श्रृंगार मण्डप में बैठकर जगदम्बा श्रृंगार करके संगीत सुनाती है। मुक्ति मण्डप में से मुक्ति बाटती है। ज्ञान मण्डप में से ज्ञानोपरभ करती है। एकान्त मण्डप में जगत् रक्षार्थ उपाय सोचती है। शक्तितत्व रूपी सोपानों के ऊपर महामंच है। इसके चार स्तम्भ हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव इस मंच पर भुवनेश्वर सदशिव हैं। यही भगवती शिवशक्ति रूप में रहती हैं। अभेद भाव से यहाँ माँ ही रहती है। यहाँ शिव काम के दर्प का दलन करने के भाव से सौलह वर्ष के हो जाते हैं। उनके वाम भाग में भुवनेश्वरी रहती है। विभिन्न देवियाँ-शक्तियाँ माँ की सेवा में रहती हैं। भगवती के उपासक यहाँ आते हैं। यहाँ आधि, व्याधि, शोक, सन्ताप, जरा, रोग नहीं। इस धाम की महिमा निराली हैं। यहाँ पातकी का प्रवेश संभव नहीं है।'

व्यासजी ने जनमेजय को, नारायण ने नारद को, सूतजी ने शौनकादि ऋषियों को कथा सुना रहे हैं। भगवती के चरित्र को सुनने वाला सौभाग्यशाली है। व्यासजी कहते हैं, 'हे राजन्! तुम अपने माता-पिता की अकालमृत्यु के कारण शोकाकुल हो। अतः शक्तियज्ञ करके उनके उद्धार को मार्ग प्रशस्त करो।' फिर व्यासजी ने राजा को दीक्षा दी। नवरात्र में धौम्यादि ऋषियों को बुलाकर यज्ञ कराया। नवाह्न देवीभागवत का पारायण कराया। नारदजी ने आकर राजा से कहा, 'राजन्! आज तुम्हारे पिता को मुक्ति प्राप्त हो गयी है। वे विमान से मणिद्वीप जा रहे हैं। हे राजन्! ये देवीयज्ञ और देवीमहापुराण का परिणाम है। जनमेजय ने नारदजी सहित सभी ऋषियों-ब्राह्मणों को प्रणाम किया। व्यासजी ने कहा, 'हे राजन्! अब तुम भगवती के चरणों में शेष जीवन लगा दो, उनके हो जाओ।' जनमेजय भी निरन्तर देवी भागवत का पाठ करने लगे। सूतजी कहते हैं, 'हे शौनकजी! माताजी की ये स्वीकारोक्ति –

**सर्वं खल्विदम् एवाऽहं नान्यदस्ति कदाचन**

– यही संक्षिप्त अर्धश्लोकात्मक देवीभागवत है। यही सूत्र बालरूप वटपत्रशायी मुकुन्द को माँ ने दिया था। विष्णु से ब्रह्मा को, इसी को ब्रह्मा ने शतकोटिप्रविस्तर शास्त्र बनाया। व्यासजी ने शुकदेवजी को दिया। उसमें द्वादश स्कन्ध और तीन सौ अठारह अध्याय हैं। इसको लिखना, लिखवाना, दान करना अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म है। नवरात्र में, भाद्रपद पूर्णिमा में अथवा कथासमाप्ति पर इसका दान उत्कृष्ट फलदायक है। तीन सौ अठारह ब्राह्मणों को भोजन कराये। नित्य भागवत का पारायण करने वाला विपुल सम्पदा भोगकर मणिद्वीप प्राप्त करता है। जहाँ देवीभागवत रहेगी, वहाँ लक्ष्मी और सरस्वती अवश्य रहेगी। भूत, प्रेतादि बाधा नहीं आ सकतीं। इसका पारायण यद्यपि सदा हो, तथापि शारदीय-वासन्तिक नवरात्रों में तो अवश्य ही करे। गुप्तनवरात्र (आषाढ और माघ) में भी भगवती की

**************************************************************************************

आराधनापूर्वक पारायण करना चाहिए। शूद्रों और स्त्रियों को इसका श्रवण ब्राह्मण के मुख से ही करना चाहिए।

**स्त्रीशूद्रो न पठेत् एतत्कदापि च विमोहितः ।। शृणुयात् विप्रवक्त्रात्तु नित्यमेवेति च स्थिति ।**

(१२.१४.२४-२५)

'हे ऋषियों ! हम '**ह्रीं**' मन्त्रमयी जगदम्बा को बारम्बार प्रणाम करते हैं।' इस प्रकार प्रवक्ता सूतजी का बार-बार जयकार करके उनको प्रसन्न किया ।।

× * × * × * × * ×

।। श्रीशिवार्पणमस्तु ।।

× * × * × * × * ×

## *।। समाप्तोऽयं द्वादशः स्कन्धः ।।*

# श्रीदेवीभागवत की आरती

**आरती जगपावन पुराण की । मातृ चरित्र विचित्र खान की ।।**
**देवी भागवत अतिशय सुन्दर । परमहंस मुनि जन मन सुखकर ।**
**विमल ज्ञान रवि मोह तिमिर हर । परम मधुर सुषमा विहान की ।।**
**आरती जगपावन ... ।।**
**कलि कल्मष विष विषम निवारिणि । युगपद भोग सुयोग प्रसारिणि ।**
**परमानन्द सुधा विस्तारिणि । सुश्रद्धा औषध अज्ञान हानि की ।।**
**आरती जगपावन ... ।।**
**सतत सकल सुमंगलदायिनि । सन्मति सद्गति मुक्ति प्रदायिनि ।**
**नूतन नित्य विभूति विधायिनि । परमप्रभा पर तत्व ज्ञान की ।।**
**आरती जगपावन ... ।।**
**आर्ति अशान्ति भ्रान्ति भय भञ्जनि । पाप ताप माया मद गञ्जनि ।**
**शुचि सेवकगण मानस रञ्जनि । लीला रस मधुमय निधान की ।।**
**आरती जगपावन ... ।।**

जुगल शाह (गीताप्रेस, स्वर्गाश्रम)

*************************************************************************************
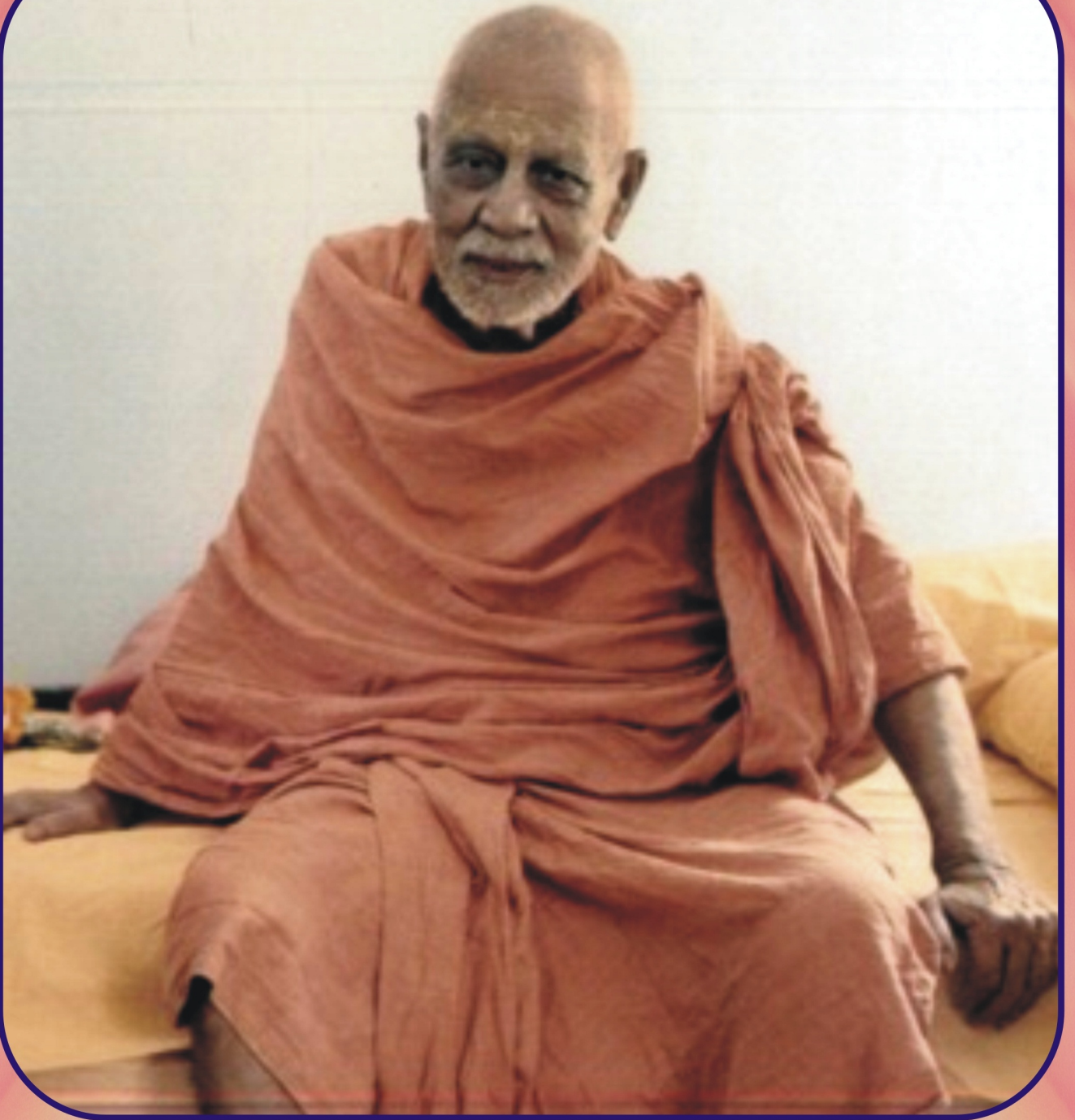
श्रीमद्भागवत के मूर्तिमान् विग्रह परमवीतराग विरक्तशिरोमणि सद्गुरुवर्य
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य अनन्तश्री विभूषित श्रीस्वामी विष्णुआश्रमजी महाराज

# त्र्यम्बकेश्वरश्चैतन्यः

## : महाराजश्री का साहित्य :

- प्रकाशित -

चिन्तामणि (२ भाग), श्रीरामायणपीयूष, तत्त्वबोधटीका, श्रीदेवीभागवतपीयूष, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्, भृगुक्षेत्रस्मारिका, लिङ्गपुराण (गीताप्रेस)

- प्रकाश्यमान -

शङ्कराचार्यग्रन्थावलिः (२० भाग), जीवन दर्शन पीयूष, भागवतपीयूष (१२ भाग) शत-कविता-कलिका, सनत्सुजातीय पीयूष, तर्कसंग्रह-टीका, धर्मसंघ दिग्दर्शिका, भगवद्गीता पीयूष, शिवपुराणपीयूष तथा अन्य

SDSPBooks - 01
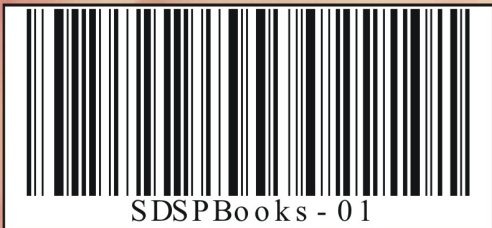
## : जीवन जाह्नवी :

**शैक्षणिक उपलब्धियाँ : -**

एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी), व्याकरणाचार्य (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी), शिक्षाशास्त्री (श्रीलालबहादुर राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली), NET

**शिक्षागुरु : -**

श्रीमद्भागवत के मूर्तिमान् विग्रह परमवीतराग श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य अनन्तश्री विभूषित श्रीस्वामी विष्णुआश्रमजी महाराज

**दीक्षागुरु : -**

यज्ञसम्राट् वीरव्रती परमपूज्य श्रीप्रबलजी महाराज

२००३ में नासिक (त्र्यम्बकेश्वर) कुम्भ में माँ गोदावरी की सन्निधि में नैष्ठिक ब्रह्मचर्य दीक्षा सम्पन्न हुई तथा आपको 'त्र्यम्बकेश्वर चैतन्य' नाम प्राप्त हुआ। दीक्षोपरान्त साधनापक्ष पर विशेष बल देते हुए आपने माँ नर्मदा व वेदगर्भा गायत्री की विशिष्ट कृपा तपपूर्वक प्राप्त की। शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करते हुए आप पुराणोपनिषदादि पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य के अनुरूप प्रवचन करते हैं। आप वर्णाश्रमधर्म के संरक्षण-संवर्धन में जनजागृति अभियान चलाते हुए साधु-गो-विप्रसेवा में सदैव तत्पर रहते हैं। आपके तत्त्वावधान में कई वेद-वेदांग विद्यालयों का संचालन सम्प्रतिकाल में हो रहा है ।।

**Twitter : trymbkeshwra,**
**Email: trymbakesh@gmail.com**
**Facebook : SamarthShree,**
**Blog : shreesamarth.blogspot.in/**